रूस में छियालीस दिन

यशपाल जैन

सत्साहित्य-प्रकाशन

रूस में छियालीस दिन

—रूस की यात्रा का रोचक और ज्ञानवर्द्धक सचित्र वृत्तान्त—

यशपाल जैन

●

१९६०

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली-१

पहली बार : १९६०
पुस्तकालय-संस्करण
मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली

उन सदाशयी भाई-बहनों को

जिनके

सद्भाव और सहयोग से

यह प्रवास

इतना सुखद और स्मरणीय बना।

—यशपाल जैन

प्रकाशकीय

हिन्दी में यात्रा-साहित्य का बड़ा अभाव रहा है। जितनी पुस्तकें अबतक निकली हैं, उनमें निस्संदेह कुछ उच्चकोटि की हैं, लेकिन ऐसी पुस्तकें बहुत थोड़ी हैं, जिन्हें पढ़कर पाठक अनुभव करें कि घर-बैठे उन्होंने स्वयं यात्रा कर ली।

इस कमी को ध्यान में रखकर 'मण्डल' ने कई यात्रा-पुस्तकें निकाली हैं। ये सभी पुस्तकें उन व्यक्तियों द्वारा लिखी गई हैं, जिन्होंने स्वयं यात्रा की है। इस कारण स्वाभाविक रूप से उनके विवरण ज्ञान-वर्द्धक होने के साथ-साथ बड़े ही सजीव, रोचक तथा निजी अनुभूतियों से युक्त बन पड़े हैं। उनके पढ़ने में पाठकों को कहानी-उपन्यास-जैसा आनंद आता है।

हमारे यात्रा-साहित्य में वैचित्र्य खूब रक्खा गया है। 'जय अमरनाथ!' में पाठक काश्मीर और अमरनाथ की यात्रा करते हैं तो 'हिमालय की गोद में' गंगोत्री-यमुनोत्री की; 'लद्दाख-यात्रा की डायरी' में लद्दाख के दुर्गम प्रदेश की सैर करते हैं तो 'उत्तराखण्ड के पथ पर' में बदरी-केदार की तीर्थ-यात्रा का आनंद लेते हैं।

अन्य देशों की यात्रा पर भी 'मण्डल' ने कुछ पुस्तकें निकाली हैं। 'जापान की सैर' में पाठक सूर्योदय के देश का प्रवास करते हैं और 'दुनिया की सैर : अस्सी दिन में' उन्हें कई देशों में घुमा देती है।

हमें हर्ष है कि रूस के प्रवास पर यह पुस्तक पाठकों के हाथों में पहुंच रही है। रूस संसार के उन देशों में से है, जिनकी जानकारी पाने के लिए सभी रुचियों के पाठक लालायित रहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में पाठकों को एक शक्तिशाली देश को विभिन्न पहलुओं से देखने का अवसर मिलेगा। लेखक ने स्वयं वहां की यात्रा करके उसके कई नगरों में बहुत-सा समय व्यतीत किया और अपने निवास-काल में उन्होंने काफ़ी घूमकर वहां के दर्शनीय स्थल, वहां की भौतिक प्रगति, वहां का लोक-जीवन आदि-आदि को नजदीक से देखने का प्रयास किया। उनके अनुभव एक ओर पाठकों को बहुत-सी ज्ञातव्य बातों से परिचित कराते हैं तो दूसरी ओर वे अनेक घटनाओं एवं संस्मरणों के द्वारा पाठकों को रोचक, मनोरंजक तथा भावपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं।

हमें आशा है कि यह पुस्तक एक रोचक प्रवास-वृत्तान्त के साथ-साथ संसार के एक बड़े देश के अध्ययन में सहायक होगी। इस कृति की व्यापक उपयोगिता को देखते यह भी विश्वास होता है कि अन्य भाषाओं में इसके अनुवाद होंगे।

विदेश-यात्रा-संबंधी लेखक की दूसरी पुस्तक 'यूरोप की परिक्रमा' भी पाठकों को जल्दी सुलभ हो, ऐसा प्रयत्न है।

इस पुस्तक को पाठकों के लिए अधिक रुचिकर बनाने की दृष्टि से इसमें अनेक चित्र दिये गए हैं। मूल्य भी कम रक्खा गया है।

—मंत्री

दो शब्द

रूस तथा यूरोप के अन्य देशों में घूमकर स्वदेश लौटने पर मैंने एक लेख-माला लिखी थी, जो दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के दिल्ली तथा बंबई संस्करणों के रविवारीय अंकों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई थी। उसमें सारे प्रवास का क्रमबद्ध वर्णन आ गया था। पाठकों को वे लेख बहुत अच्छे लगे और उन्होंने आग्रह किया कि उनका पुस्तकाकार प्रकाशन होना चाहिए। यह पुस्तक उसी आग्रह का परिणाम है।

जिस समय यह प्रवास-वर्णन लिखा गया था, उस समय पत्र में स्थान की मर्यादा के कारण मुझे बहुत-से रोचक तथा महत्वपूर्ण विवरण अनिच्छा-पूर्वक छोड़ देने पड़े थे। इस पुस्तक में उन्हें पूरा कर दिया गया है। कुछ नये अध्याय भी जोड़ दिये गए हैं। इस प्रकार इस पुस्तक में अब बहुत-सी ऐसी सामग्री का समावेश हो गया है, जो पहले लेखों में नहीं आई थी।

अपने प्रवास में मैं रूस को सम्मिलित करके दस देशों में गया था। लेख-माला में सारे देशों का हाल आ गया था। चूंकि रूस में मैं सबसे अधिक रहा था, इसलिए स्वाभाविक रूप से आधी के लगभग सामग्री उसी देश से संबंधित थी। मित्रों ने सलाह दी कि उस सामग्री को एक अलग पुस्तक में देना अधिक अच्छा होगा। उससे एक तो पुस्तक का आकार सुविधाजनक और मूल्य कम रहेगा; दूसरे, सामग्री के बीच ठीक संतुलन हो जायगा, यानी पाठकों को यह नहीं लगेगा कि एक देश के बारे में तो इतना अधिक लिखा गया है, अन्य देशों के बारे में थोड़ा। मुझे उनकी राय उचित लगी। फलत: मैंने सारी सामग्री को दो भागों में बांट दिया। पहली पुस्तक पाठकों के हाथों में पहुंच रही है। शेष देशों की यात्रा का वृत्तान्त उन्हें दूसरी पुस्तक 'यूरोप की परिक्रमा' में पढ़ने को मिलेगा।

इस पुस्तक के विषय में मैं क्या कहूं! मैं चाहता हूं कि पाठक इसे पढ़ें और स्वयं निर्णय करें कि यह कैसी बन पड़ी है। फिर भी पृष्ठभूमि के रूप में दो शब्द कह देना आवश्यक है। अन्य देशों की भांति रूस में मुझे घूमने तथा विभिन्न क्षेत्रों के लोगों से मिलने-जुलने की पूरी सुविधा रही और रूसी भाई-बहनों तथा वहां भारतीय

मित्रों के सहयोग से, जो वहां बहुत दिनों से रह रहे हैं, मुझे बहुत-कुछ असली रूप में देखने का अवसर मिला। जो देखा, उसीको मैंने दिखाने का प्रयास किया है। हो सकता है कि पाठकों को लगे कि मैंने जितना प्रकाश उजले पक्ष पर डाला है, उतना दूसरे पहलू पर नहीं। यदि ऐसा है तो इसके पीछे मेरे पक्षपात का हाथ हो सकता है। मैं मानता हूं कि हम सबको, विशेषकर भ्रमणार्थियों को, ऐसी मनोभूमिका रखनी चाहिए कि जहां भी कोई अच्छी चीज हो, उसे देखलें और उत्साहपूर्वक दूसरों को दिखा दें; लेकिन यदि बुराई सामने आवे तो ईमानदारी के नाते उसे देख तो लें, किन्तु उसके प्रदर्शन में उतनी उदार दृष्टि न रक्खें।

संसार के प्रत्येक देश में अच्छाइयां और बुराइयां दोनों हैं और कोई भी देश, उसकी विचार-धारा कुछ भी हो, आदर्श स्थिति तक नहीं पहुंचा है। वस्तुतः हम सब अपूर्ण हैं। ऐसी दशा में हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि कमजोरियों को देखते हुए भी हम पारस्परिक सद्भाव बढ़ाने पर जोर दें।

मुझे विश्वास है कि यदि पाठक इस बुनियादी बात को ध्यान में रखकर पुस्तक को पढ़ेंगे तो उसके साथ अधिक न्याय कर सकेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि रूस आज संसार के शक्तिशाली राष्ट्रों में से है। कुछ ही वर्षों में उसने अपनी नींव को कितना मजबूत बना लिया है और विभिन्न क्षेत्रों में कितनी प्रगति कर ली है, यह वास्तव में सराहनीय और प्रेरणादायक है। विज्ञान के क्षेत्र में तो उसकी उपलब्धियां बेजोड़ हैं। विचार-धारा और कार्य-पद्धति की मर्यादाएं होते हुए भी वह अन्य देशों के निकट पहुंचने और उन्हें अपने पास लाने के लिए सचेष्ट है।

जहांतक उसकी कमियों का संबंध है, वे किसीसे छिपी नहीं हैं। खास बात यह है कि वहां के शासक और वहां की जनता स्वयं उन्हें जानते हैं और उन्हें दूर करने के लिए कुछ हद तक प्रयत्न भी कर रहे हैं।

ऐसे शक्तिशाली राष्ट्र को ठीक से समझने में यह पुस्तक सहायक हो सकी तो मुझे प्रसन्नता होगी।

इस पुस्तक की तैयारी में और उसे मौजूदा रूप देने में जिन बंधुओं ने मेरा हाथ बंटाया है, उन्हें शब्दों द्वारा धन्यवाद देना धृष्टता होगी।

७/८, दरियागंज,
दिल्ली।
१ फरवरी १९६०

यशपाल जैन

विषय-सूची

रूस में छियालीस दिन

: १ :

यात्रा की योजना और प्रस्थान

विधना का विधान बड़ा विचित्र है ! आदमी सोचता कुछ है, हो कुछ और ही जाता है। चीन जाने की मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी। उसके लिए उत्सुक भी था, लेकिन स्वप्न में भी कल्पना न की थी कि बैठे-बिठाए अकस्मात रूस और यूरोप के अन्य देश घूमने का सुयोग जुट जायगा। एक दिन रात को जब सोने जा रहा था, अचानक मेरे एक स्नेही मित्र का फोन आया, "रूस चलोगे ? आप चलो तो मैं भी चलूं।" मैंने समझा कि बात मजाक में हो रही है और मजाक में ही मैंने उसे टाल देने की कोशिश की। लेकिन अगले दिन सवेरे ही उनका फिर फोन आया तो मैंने गंभीरता से सोचा। उनके इस आग्रह ने कि मैं जाऊंगा तभी वह जायंगे, मेरे मन पर जोर डाला। उनके साथ के प्रलोभन ने भी मुझे सोचने के लिए उत्साहित किया। अंततोगत्वा जाने की बात तय हो गई। निश्चय हो जाने के उपरांत पासपोर्ट के लिए भाग-दौड़ की गई और वह समय पर मिल गया। अन्य चीजों की भी व्यवस्था हो गई। ऐसा प्रतीत होता है, मानों इस सारी योजना के पीछे कोई अदृश्य शक्ति कार्य कर रही थी। उसीने मित्र द्वारा जाने की प्रेरणा दिलवाई और उसीने आवश्यक चीजों की व्यवस्था भी करा दी।

जाने की पूरी तैयारी हो जाने पर अचानक एक नई परिस्थिति पैदा हो गई। मित्र अस्वस्थ हो गए और कुछ समय द्विविधा में रहने के बाद विवश होकर उन्हें अपना कार्यक्रम स्थगित कर देना पड़ा। पर उन्होंने आग्रह किया कि मैं जरूर जाऊं। मैं तो उनका साथ मिलने के लालच से तैयार हुआ था। अकेले कहां जाऊंगा ? मेरा मन उखड़ गया। पर मित्र ने बहुत जोर डाला। कुटुम्बी-जनों और साथियों ने भी बार-बार कहा। नतीजा यह हुआ कि मुझे अकेले ही जाने को बाध्य होना पड़ा। विमान में स्थान की सुविधा के कारण ७ अगस्त का दिन प्रस्थान के लिए तय हुआ।

पाठक जानते हैं कि अपने देश से बाहर जाने के लिए भारत-सरकार से पास-

पोर्ट प्राप्त करना होता है और जिन देशों में जाना हो, उन देशों का वीसा भी लेना होता है। मुझे रूस जाना था, इसलिए दिल्ली-स्थित सोवियत दूतावास से रूस का वीसा लिया। बीच में थोड़ी देर काबुल रुकना था, इसलिए अफगान दूतावास से वहां का वीसा लिया। पासपोर्ट और वीसा के अतिरिक्त दो और चीजें जरूरी होती हैं, जिनके बिना सामान्यतया कोई भी व्यक्ति विदेश नहीं जा सकता। एक तो स्वास्थ्य का प्रमाण-पत्र और दूसरा, आयकर की सफाई का प्रमाण-पत्र। ये दोनों मैंने पहले ही ले लिये थे।

६ अगस्त की शाम को जरूरी सामान खरीदा। इस बीच लोगों में मेरे जाने की खबर फैल गई। नाते-रिश्तेदार और मिलनेवाले आने लगे। सोचा था कि सामान ठीक करके जल्दी ही सो जाऊंगा, क्योंकि विमान सवेरे ७ बजे छूटता था और मुझे कम-से-कम एक घंटे पहले सफदरजंग हवाई अड्डे पर पहुंच जाना था। लेकिन लोगों से बातचीत करने और सामान जमाने में रात का १ बज गया। बिस्तर पर लेटा, पर नींद नहीं आई। तरह-तरह के विचार मन में उठते रहे। अपने देश में मैं काफी घूमा हूं, अनेक बार विमान से भी सफर किया है, इसलिए यात्रा-संबंधी तो कोई परेशानी न थी, पर बार-बार ध्यान आता था कि परदेश जा रहा हूं और अकेला हूं। बहुत-सी असंभावित बातें दिमाग में उठती थीं। विचारों के उस भंवर में रात के शेष घंटे पलकों पर निकल गये। तीन बजे उठ बैठा। रात को जो तैयारी बाकी रह गई थी, वह निबटाई, तैयार हुआ और ५।। बजे कुटुम्बी-जनों के साथ हवाई अड्डे के लिए रवाना हो गया।

सफदरजंग हवाई अड्डे पर पहुंचने पर पासपोर्ट, वीसा, स्वास्थ्य और आयकर के प्रमाण-पत्र जांचे गये; सामान देखा गया कि कहीं कोई चुंगी की या गैर-कानूनी चीज तो साथ नहीं जा रही है। सरकार ने यह भी पाबंदी लगा रखी थी कि काबुल के लिए ५०) और अन्य देशों के लिए २७०) से अधिक बिना सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त किये नहीं ले जाये जा सकते। अब तो ये राशियां और भी घटा दी गई हैं। २७०) की जगह केवल ७५) ले जाये जा सकते हैं। इसकी कड़ाई से देखभाल होती है। इन सबकी जांच-पड़ताल के लिए पुलिस तथा चुंगी-विभागों में जाना पड़ा, जो हवाई अड्डे पर ही हैं। सामान तुला, एक फार्म भरना पड़ा, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ पूरे सामान का आनुमानिक मूल्य घोषित करना पड़ा। घड़ी, कैमरा, फाउंटेनपेन आदि की जानकारी देनी पड़ी।

इन सब औपचारिक विधियों से छुट्टी पाई तबतक जहाज के छूटने का समय हो चुका था। घोषणा हुई कि काबुल जानेवाले यात्री अमुक विमान में जाकर बैठें। मैंने परिवार के लोगों, मित्रों तथा साथियों से विदा ली और भारी मन से दूसरे यात्रियों के साथ विमान की ओर बढ़ गया।

विमान में घुसते ही देखता क्या हूं कि हम चार-पांच यात्रियों के लिए चार-पांच सीटें छोड़कर शेष सब सीटें सामान से अटी पड़ी हैं! सामान भी मामूली नहीं, लकड़ी की बड़ी-बड़ी पेटियां और बड़े-बड़े पैकिट! यह सब नज्जारा देखकर बड़ा अजीब-सा लगा, हँसी भी आई। विमान आर्याना अफगान एयर लाइन्स का था, जो अफगान सरकार की एक कंपनी है। मैंने विनोद में विमान के परिचारक (स्टुअर्ड) से पूछा, "क्यों भाई, यह मुसाफिरों को ले जानेवाला जहाज है या सामान ढोने का?" अफगानी युवक ने कोई जवाब नहीं दिया। वह या तो मेरी बात समझ नहीं पाया, या जवाब देने को उसके पास कुछ था नहीं।

मैं चुपचाप एक ऐसी सीट पर जा बैठा, जहां से विदा देने के लिए आये लोगों को देख सकता था। मेरे बराबर की सीट पर एक बंगाली भाई आ बैठे।

यात्रियों के अंदर आते ही विमान का द्वार बंद हो गया और इंजन की धड़-धड़ाहट शुरू हो गई, जो उत्तरोत्तर बढ़ती गई। विमान ने हलचल की, धरती पर चला, फिर आगे जाकर रुक गया। अंत में ७ बजकर १० मिनट पर वह गन्तव्य स्थान की ओर उड़ चला। ऊपर जाकर जब वह सम-भाव और सम-गति से उड़ने लगा तो हम लोगों ने कमर से पेटियां खोल दीं। ये पेटियां कुर्सी के साथ लगी रहती हैं। जब विमान ऊपर उठता है या नीचे उतरता है अथवा जब मौसम खराब होता है, उस समय यात्रियों के सीट पर से उछलने की आशंका रहती है। इसलिए चालक के कक्ष के बाहर बिजली के अक्षरों में सूचना दे दी जाती है—पेटियां बांध लीजिये। जब जरूरत नहीं रहती तब वह सूचना हट जाती है। पेटियों के खुलने पर हम लोग आपस में बातें करने लगे।

मैंने पास बैठे बंगाली युवक से उसका परिचय पूछा तो उसने बताया कि वह कलकत्ता से आ रहा है और वहां के बंगला पत्र 'लोक सेवक' का प्रतिनिधि होकर मास्को जा रहा है। यह सुनकर मुझे बड़ा अच्छा लगा। सोचा, चलो, एक से दो हुए। शेष यात्रियों का तो काबुल तक का ही साथ था।

मारा पहला पड़ाव था अमृतसर। ९ बजे वहां पहुंच गये। वहां का हवाई

अड्डा काफी बड़ा और अच्छा है। विमान के रुकते ही हमें नाश्ता कराने के लि खाने के कमरे में ले गये। दूसरे यात्रियों की भांति मेरे सामने जब सामिष चीजें आई तो मैंने यह कहकर खाने से इन्कार कर दिया कि मैं तो शाकाहारी हूं। बंगाली भाई खाने लगे। हवाई अड्डे के अधिकारी ने मेरे लिए फौरन पूड़ियां और साग मंगवाया और मेरे सामने परोसवाते हुए विनोद में मुस्कराकर बोले, "आप गोश्त नहीं खाते तभी आपके चेहरे पर सात्विकता दीख पड़ती है।"

मैं इसका कुछ जवाब दूं कि उससे पहले ही बंगालीबाबू तेज हो गये। बोले "क्या मतलब है आपका ? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मैं गोश्त खाता हूं तो मेरे चेहरे पर असात्विकता है ?"

आवेश में कही गई उस बात को सुनकर अधिकारी बेचारे सकपका गये। बात उन्होंने मजाक में कही थी, किसीपर आक्षेप करने का उनका तनिक भी इरादा न था। संभलने पर उन्होंने सफाई में कुछ कहा, पर बंगालीभाई भला क्यों सुनने लगे ! खाते-खाते बहुत देर तक बड़बड़ाते रहे।

इस घटना ने मेरा माथा ठनका दिया। अभी तो यात्रा का आरंभ ही था। मैंने सोचा कि इन हजरत का अभी से यह हाल है तो आगे चलकर जाने क्या होगा !

चालीस मिनट तक रुककर विमान आगे बढ़ा। कुछ दूर जाने पर एक यात्री ने बताया कि अब हम पाकिस्तान पर उड़ रहे हैं और कुछ ही मिनटों में लाहौर आ रहा है। हमारे देखते-देखते रावी नदी आई, फिर लाहौर आया, अनंतर मुलतान, डेरा इस्माइलखां और सिन्धु नद। कोई डेढ़ घंटे तक हम लोग पश्चिमी पाकिस्तान पर उड़ते रहे।

जहाज आमतौर पर ८-८।। हजार फुट की ऊंचाई पर जा रहा था। अन्य कंपनियों के जहाजों में चालक एक कागज पर यात्रियों को सूचना देता रहता है कि जहाज इतनी ऊंचाई पर है, उसकी रफ्तार यह है और उसके दांये-बांये अमुक नगर, अमुक पर्वत अथवा अमुक नदी इतने समय पर आवेंगे। पर इस आयरिना जहाज में ऐसी कोई सुविधा नहीं थी। परिचारक से जब-तब पूछना पड़ता था कि अब हम कहां हैं। गुसलखाना बहुत ही गंदा था। अमृतसर पर मैंने कह दिया था कि सफाई करा दें, पर किसीने उस ओर ध्यान न दिया। सभी हवाई कम्पनियां स्वच्छता का बड़ा ध्यान रखती हैं, पर जाते समय और आते समय भी इस कंपनी का अनुभव कुछ अजीब-सा रहा।

आगे चलकर जब सुलेमान पर्वत-मालाएं आईं तो विमान १२-१३ हजार फुट की ऊंचाई पर चला गया। नीचे पर्वत, ऊपर रुई के फाये जैसे बादल, विमान उनके भी ऊपर। अबतक मैदान देखने में आये थे। उनपर कहीं-कहीं हरे-भरे वृक्ष, छोटे-छोटे घर, नदियों की पतली-सी धाराएं, आदि को देखकर ऐसा लगता था, मानों धरती पर किसी ने कोई चित्र अंकित कर दिया हो। पर्वतों के आने पर दृश्य बदल गया। कोहरे तथा बादलों के मेल से जो दृश्य बना, वह बड़ा ही विचित्र था। उसे शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। आगे चलकर 'तख्ते-सुलेमान' आया। यह सुलेमान पर्वत की बहुत ही ऊंची चोटी है और जब विमान उसे पार कर लेता है तो माना जाता है कि 'तख्ते-सुलेमान' जीत लिया। बात यह है कि एक तो यहां विमान को बहुत ऊंचाई पर उड़ना पड़ता है, दूसरे सवेरे ९-१० बजे के बाद वहांपर इतना घना कोहरा और बादल-से हो जाते हैं कि कुछ दीखता ही नहीं। चालक को बड़ी सावधानी से यह स्थान पार करना पड़ता है। कभी-कभी तो मौसम की खराबी से जहाज को वापस ले जाना पड़ता है।

पहाड़ पार करते समय, ऊंचाई के कारण, यात्रियों को असुविधा न हो, इसलिए विमान या तो 'प्रैशराइज्ड' होते हैं या उनमें आक्सीजन की व्यवस्था होती है। लेकिन इस विमान में वैसी कोई सहूलियत नहीं थी। हां, एक व्यवस्था थी और वह थी जहाज को गर्म करने की। जब हम लोग सुलेमान को पार कर रहे थे, हीटर खोल दिया गया। नतीजा यह हुआ कि तेज लू-सी चलने लगी और गर्मी के मारे सिर फटने लगा। स्टुअर्ड से कहकर बड़ी मुश्किल से उसकी तेजी कम कराई। तब कहीं जान-में-जान आई।

'तख्ते-सुलेमान' फतह कर लेने के बाद मौसम में परिवर्तन हो गया। धुंध और बादल बहुत-कुछ साफ हो गये और नीचे पर्वत-मालाएं दीख पड़ने लगीं। पहाड़ों के बीच में यत्र-तत्र बसी हुई बस्तियां, बहती हुई नदियां और नदियों के किनारे की हरियाली बड़ी अच्छी लगती थी। शुरू में पहाड़ों पर काफी पेड़ दिखाई दिये, लेकिन आगे चलकर ऐसा लगने लगा, मानो पहाड़ मिट्टी या राख के हों। उनपर पेड़ों का नामो-निशान भी नहीं था। फिर भी उन रूखे-सूखे पहाड़ों की अपनी महिमा थी। ऊपर आकाश में थोड़े-बहुत मेघ-खण्ड विचरण कर रहे थे। इससे वृक्ष-विहीन पर्वतों को एक अनोखा आकर्षण प्राप्त हो गया था।

विज्ञान ने कैसा करिश्मा कर दिखाया है! आसमान में जब बादल होते हैं

तो विमान प्रायः बादलों के ऊपर चला जाता है। उस समय नीचे सफेद सागर जैसा लहराता दीखता है। ऊपर निगाह जाती है तो नीला निरभ्र आकाश दिखाई देता है और उसमें पूर्ण प्रखरता के साथ चमकता हुआ सूर्य। बिना स्वयं देखे ऐसे अद्भुत दृश्य की कल्पना करना कठिन है।

बलूचिस्तान के कुछ भाग पर से उड़ने के पश्चात विमान कुछ नीचे आया और किसी नगर पर उसने चक्कर लगाया। पूछने से मालूम हुआ कि काबुल आ गया। हमारी घड़ी के हिसाब से उस समय दो बजे थे। वहां की घड़ी में एक बजा था यानी, भारत से वहां का समय एक घंटा पीछे है।

काबुल का हवाई अड्डा कच्चा है। जब कोई विमान उतरता है तो धूल का तूफान-सा आ जाता है। कई देशों के जहाज यहां आते-जाते हैं। आर्याना कम्पनी के जहाज भी कई देशों को जाते रहते हैं, फिर भी यहां का अड्डा बड़ी गई-बीती हालत में है। उसे ठीक करने के लिए कुछ योजनाएं बनाई गई हैं, पर देखना है कि उसका भाग्य कब फिरता है!

विमान के रुकने पर हम लोग उतरे और सबसे पहले चुंगी के दफ्तर में पहुंचे। थोड़ी देर राह देखने पर हमारा सामान भी आ गया। चुंगी-विभाग के अधिकारियों ने उसे खुलवाकर देखा। पासपोर्ट तथा अफगान वीसे की जांच हुई। एक सज्जन बिना वीसा के आ गये थे। उनके साथ अधिकारियों की काफी झिक-झिक हुई, पर अन्त में विवश होकर उन्हें अनुमति देनी पड़ी!

दिल्ली में किसीने बताया था कि काबुल पहुंचते ही मास्को जानेवाला विमान मिल जायगा। लेकिन जब पता लगाया तो मालूम हुआ कि वह ९ अगस्त को, यानी तीसरे दिन सवेरे मिलेगा। हमें मास्को पहुंचने की बड़ी जल्दी थी। पर हो क्या सकता था। मन मारकर रह गये और हवाई अड्डे की बस में सामान रखकर तीन बजते-बजते 'काबुल होटल' जा पहुंचे।

अक्सर यात्रियों को इसी होटल में ठहराया जाता है। उसकी दुमंजिला इमारत अच्छी-खासी है। काफी बड़ी, देखने में साफ-सुथरी। बंगालीभाई के और मेरे लिए ऊपर की मंजिल के एक ही कमरे में ठहरने की व्यवस्था की गई। कमरा औसत आकार का था, न बड़ा, न छोटा। थोड़ी देर के बाद एक सिख और उसीमें आ गए। बड़े तपाक से मिले। बहुत खुले दिल के आदमी लगे। मैंने सोचा, अच्छा हुआ, साथ-साथ घूमने में मजा आवेगा।

: २ :

काबुल में

कमरे में सामान रखकर नीचे भोजन करने गये तो एक मजेदार घटना हो गई। भोजनालय में मेज पर बैठकर मैंने बैरे को अपने लिए निरामिष और बंगालीभाई के लिए सामिष खाना लाने को कहा। थोड़ी देर में खाना आया तो दोनों के लिए शाकाहारी। देखते ही बंगाली-भाई ने त्यौरी चढ़ाकर कहा, "मुझे तो मीट (मांस) चाहिए। तुमने किस तरह आर्डर दिया? (बैरे से) देखो, हमारे लिए मीट लायगा, मीट। समझा? (फिर मुझे संबोधन करके) आगे से तुम अपने लिए खाना मंगायगा, हम अपने लिए मंगायगा।" मैंने मजाक में कहा, "भाईमेरे, मुंह क्यों चढ़ाते हो! तुम्हें तो दोहरा फायदा हो गया। शाकाहारी खाने का भी आनंद लोगे। मांस तो उड़ाओगे ही।"

असल में यह मुसीबत इसलिए हुई कि होटल के बैरे या तो पश्तो जानते थे, या फारसी। दो-एक को टूटी-फूटी अंग्रेजी आती थी। इसीसे उन्हें बात समझाने और उनकी बात समझने में दिक्कत होती थी।

खा-पीकर हम लोगों ने थोड़ी देर विश्राम किया। फिर घूमने निकले। मौसम अच्छा था। छः हजार फुट की ऊंचाई पर बसे होने पर भी नगर में सर्दी अधिक न थी, बल्कि दिन में तो कुछ गर्मी ही मालूम हुई। लोगों ने बताया कि असली मजा तो यहां जाड़ों में आता है। कड़ाके की ठंड पड़ती है। चारों ओर बर्फ जम जाती है। अफगानिस्तान में एक कहावत है कि वहां के निवासी सोने के बिना रह सकते हैं, बर्फ के बिना नहीं। इसका मतलब यह है कि उन्हें बहुत-सा पानी बर्फ के पिघलने से प्राप्त होता है। इसलिए कुछ महीनों में अच्छी फसल के लिए उन्हें बर्फ पर निर्भर करना पड़ता है।

काबुल अफगानिस्तान की राजधानी है। बड़ा नगर है, बस्ती दूर-दूर तक फैली है, लेकिन देखने में वह एक देहाती कस्बे जैसा लगता है। सूखे पहाड़ों पर से

दिनभर धूल उड़ती रहती है और कभी-कभी तो ऐसा बवंडर आता है कि खुले रास्ते पर चलना मुश्किल हो जाता है। मकानों, बाजारों तथा लोगों के रहन-सहन और कपड़े-लत्ते आदि को देखकर ऐसा नहीं लगता कि हम किसी देश की राजधानी में हैं। शहर का कुछ भाग पुराना है, कुछ नया बसा है। नई बस्ती को 'शोरे नो' यानी नया शहर कहते हैं। उसमें पुरानी बस्ती की अपेक्षा हरियाली अधिक है और मकान भी बड़े और अच्छी बनावट के हैं। पुरानी बस्ती बहुत घिरी हुई है। लेकिन नगर का तेजी से विकास हो रहा है। नई सड़कें बन रही हैं, पुरानी चौड़ी की जा रही हैं। नये घर बन रहे हैं, बिजली-पानी की समुचित व्यवस्था की जा रही है।

लोगों ने बताया कि रूस और भारत दोनों ही प्रयत्नशील हैं कि वहां की गरीबी और गुरबत दूर हो और वहां के निवासियों के रहन-सहन का मानदंड ऊंचा हो। वहां के पर्वतों में खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। फल भी खूब होते हैं। अन्य देशों का माल वहां बहुत बड़े परिमाण में आता है। सूती और ऊनी वस्त्रों का अच्छा उत्पादन होता है। फिर भी वहां बेहद गरीबी है। जगह-जगह भिखारी पीछा करते हैं। पार्वत्य प्रदेशों में गरीबी के साथ-साथ गंदगी का गठबंधन अक्सर देखने में आता है। काबुल इसका अपवाद नहीं है। वहां अधिकांश लोग बड़े ही गंदे हैं। काबुल नदी कुछ महीनों को छोड़कर शेष महीनों में सूखी पड़ी रहती है। जहां-तहां जो पानी रह जाता है, उसका किस प्रकार उपयोग होता है, देखकर तबीयत घबराती है।

इतना होने पर भी लोगों का स्वास्थ्य बड़ा अच्छा है। ऊंचा कद, शरीर हृष्ट-पुष्ट। बच्चों और युवकों को अंग्रेजी कपड़े पहना दीजिये, फिर यह पता चलाना कठिन हो जायगा कि वे अफगानी हैं। इतने सुन्दर हैं वे! उनका रूप-रंग बड़ा ही आकर्षक है।

काबुल की आबादी लगभग दो लाख है, जिसमें पांच हजार के करीब हिन्दू हैं। उनमें से बहुत-से वहां छोटे-बड़े धन्धे करते हैं; पर उन्हें वे सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं, जो वहां के बाशिन्दों को हैं। बड़ी अजीब-सी बात है कि पुश्तों से रहनेवाले बाहर के लोगों को वहां के नागरिकों के अधिकार प्राप्त न हों, वे अपने घर न बनवा सकें, अपनी मोटर न रख सकें!

हम लोग सबसे पहले शोरे नो, यानी नई बस्ती में घूमने गये, बाद में कोची की बस्ती देखी। वह काबुल नदी के किनारे बसी है और दूसरे भागों की बनि-

स्वत अधिक साफ-सुथरी है। वहां का बाजार काफी बड़ा है।

फल काबुल में खूब मिलते हैं और बहुत ही सस्ते। अंगूर आठ-दस आने सेर, किशमिश रुपये सेर। खूबानी, आड़ू आदि भी बहुतायत से बाजार में आते हैं। वहां का सरदा तो दूर-दूर तक मशहूर है। साग-भाजी में अन्य चीजों के साथ टमाटरों की अच्छी पैदावार होती है। दुकान-दुकान पर उनके ढेर लगे दिखाई देते हैं।

शहर में घूमते समय अनेक विदेशी लोग दिखाई दिये। पूछने पर पता चला कि उनमें से कुछ तो पर्यटक हैं, कुछ वहीं के रहनेवाले। पिछड़ा हुआ होने पर भी काबुल व्यापार की दृष्टि से अपना महत्व रखता है। इसी प्रलोभन से खिंच-कर बहुत-से देशों के लोग वहां आते रहते हैं।

यात्रियों की सुविधा के लिए होटल में 'पश्तानी तिजारती बैंक' है। वहां से हमने कुछ रुपये भुनाकर अफ़गानी ले लिये। अफ़गानिस्तान का सिक्का 'अफ़गानी' कहलाता है। एक रुपये में बैंक ने तो शायद नौ अफ़गानी दिये, पर परिचित दुकान-दार दस दे देते हैं। नोट २,५,१०, २० और ५० के होते हैं। सिक्के 'पूल' कहलाते हैं। आजकल ५० तथा २५ के सिक्के मिलते हैं। ५० का सिक्का 'नीम अफ़गानी' यानी अफ़गानी का आधा, कहलाता है।

अफ़गानिस्तान की भाषा मुख्यतः पश्तो और फ़ारसी है, लेकिन वहां के स्कूलों में फ्रेंच, अमरीकी तथा रूसी भाषाएं भी पढ़ाई जाती हैं। अन्य भाषाओं की अपेक्षा फ्रेंच पर अधिक जोर दिया जाता है।

शहर में पांच सिनेमाघर हैं, जिनमें अक्सर हिन्दी की फिल्में दिखाई जाती हैं। कई दुकानों पर हमने हिन्दी के गीतों के रिकार्ड बजते सुने। अंग्रेजी का प्रचलन बहुत कम है। बड़े-से-बड़े अधिकारी तथा शिक्षित लोग भी गलत और टूटी-फूटी अंग्रेजी बोलते थे। उच्चारण भी उनके शुद्ध नहीं होते। एक कालेज के प्रोफेसर कहीं रास्ते में मिल गये। उनके अंग्रेजी के उच्चारण पर हँसी रोकना मुश्किल हो गया।

काबुल में एक विश्वविद्यालय है और चार कालेज—गजनी, हबीबिया, निजात और इस्तकलाल। वहां की सारी फैकल्टियां, साइंस फैकल्टी आदि-आदि, यूनिवर्सिटी कहलाती हैं। इस प्रकार सुनने में ऐसा मालूम होता है, मानों वहां यूनिवर्सिटियों की भरमार है।

पर्दे का चलन वहां खूब है। शहर में सभी धर्मों की स्त्रियां बुर्का ओढ़कर

निकलती हैं। दुकानों पर सामान खरीदती हैं तब भी उनके मुंह ढंके रहते हैं। बड़ा अजीब लगता है जब बुर्का ओढ़े स्त्री खूब जोर-जोर से दुकानदार से बातें करती है और चीजों के दामों के लिए झगड़ती है।

शाम तक हम लोग शहर में चक्कर लगाते रहे। सात-आठ बजे लौटे, भोजन किया और फिर निकल गये। होटल से कुछ दूर पर एक बड़ी-सी इमारत थी। उसके सामने हम यह सोचकर रुक गये कि कोई उधर आवे तो उसके बारे में पूछ-ताछ करें। इतने में दो व्यक्ति आये। वर्दी से अंदाज हुआ कि वे पुलिस के अधिकारी हैं। उनसे कुछ पूछने के लिए हम जरा आगे बढ़े और मुंह खोला कि उन्होंने धारा-प्रवाह पश्तों में जाने क्या-क्या कहना शुरू कर दिया। हम कुछ भी नहीं समझ पाये, लेकिन उनके हाव-भाव तथा संकेतों से अनुमान हुआ कि वे जानना चाहते हैं कि हम कौन हैं और इतनी रात गये वहां क्या कर रहे हैं! उन्हें समझाने के लिए पहले तो हमने उर्दू मिली हिन्दी बोली, फिर अंग्रेजी का सहारा लिया, पर वे कुछ न समझे। तब लाचार होकर हमने वहां से जाना चाहा, लेकिन जायं तो जायं कैसे? उनकी बातों का सिलसिला खत्म हो तब न! काफी देर हो गई। हम लोग बड़े पशोपेश में पड़े। इतने में हठात एक सज्जन आये, जो हिन्दी जानते थे। पुलिस-अधिकारियों से हमें उलझा देखकर वह हमारे पास आये। उन्होंने बताया कि वह दिल्ली-निवासी हैं और बरसों से वहां रहते हैं। उन्होंने दुभाषिये का काम किया। उन्होंने कहा कि वह बड़ी इमारत शाही महल है और वहां हमारा यों घूमना उचित नहीं है। उन सज्जन ने पुलिस-अधिकारियों को समझा-बुझाकर शांत किया। तब कहीं छुट्टी मिली। अच्छा हुआ कि हमारा पिण्ड छूट गया, अन्यथा पता नहीं, क्या होता। आज के जमाने में भी वहां के कानून-कायदे अपने ढंग के निराले हैं।

रात काफी हो गई थी। होटल लौटे और सो गये। अगले दिन सवेरे जल्दी उठकर तैयार हुए और एक टैक्सी लेकर पगमान देखने गये। संयोग से साथ में गलेरा मर्सर नाम की एक कैनेडियन महिला भी हो गईं, जो उसी होटल में ठहरी थीं। पगमान काबुल से १५-१६ किलोमीटर पर बड़ा ही सुन्दर स्थान है। यहां के लोग कहते हैं कि जिस प्रकार काश्मीर में गुलमर्ग है, उसी प्रकार काबुल में पगमान है। पर जो बात गुलमर्ग में है, वह यहां कहां! फिर भी पिकनिक की दृष्टि से वह बड़ी अच्छी जगह है। वहां अमानुल्ला की सुन्दर कोठी है और उसके पास ही उसके

भाई की। और भी इमारतें हैं। तन्दुरुस्ती के लिहाज से वह बढ़िया जगह मानी जाती है। पानी बहुत ही स्वास्थ्यवर्द्धक है। इसलिए पैसेवालों ने वहां अपनी-अपनी कोठियां बना ली हैं। सबसे ऊंची जगह पर जो कोठी है, वह बोलोबो कहलाती है। चिनार और चर्मारा के पेड़ों की वहां बहुतायत है और उन्हींके कारण उस स्थान की शोभा है।

लौटते में हम 'तपी पगमान' गये, जहां बादशाह का बड़ा शानदार उद्यान है। उसमें फव्वारे चल रहे थे और नाना रंगों के फूल खिले थे। अफगानिस्तान के वर्तमान बादशाह जाहिरशाह वहां आये हुए थे। उद्यान बहुत ही सुरुचिपूर्ण था, साफ-सुथरा। वह विशेष रूप से पसंद आया।

लौटकर टैक्सीवाले का हिसाब किया तो उसने प्रति मील २॥ अफगानी मांगा, जबकि तय दो अफगानी हुआ था। बात को खत्म करने के विचार से उसे २॥ के हिसाब से दे दिया। लेकिन इतने से उसे संतोष कहां होना था! बोला, "रुकने का एक घंटे का और लाओ।" यह पहले ही तय हो गया था कि वह रुकने का कुछ नहीं लेगा। बड़ी झुंझलाहट हुई। मैंने कहा, "अब मैं एक कौड़ी भी अधिक नहीं दूंगा।" इसपर उसने सारे नोट और सिक्के धरती पर फेंक दिये और कमरे से बाहर जाने लगा। यह सब हुआ आरियाना के दफ्तर में। वहां के बाबू ने ही वह टैक्सी तय की थी। झगड़ा उसीके सामने हुआ। बेचारे बाबू ने ड्राइवर को हरचंद समझाने की कोशिश की, लेकिन ड्राइवर ने उसकी एक न सुनी। वह तो चाहता था कि हम अजनबियों से अधिक-से-अधिक पैसे निकलवा लें। बंगालीभाई और कैनेडियन महिला वहां से पहले ही चले गये थे। मैं भी चल दिया। ड्राइवर ने देखा कि उसके नाटक का अब कुछ नतीजा निकलनेवाला नहीं है तो झख मारकर आया और जमीन पर बिखरे अफगानी नोटों और सिक्कों को बटोरकर ले गया।

दोपहर बाद दारुलअमान गये। वहां अमानुल्ला की विशाल कोठी है। बड़ी शानदार। अब उसमें कोई मंत्रालय है। उसीके निकट संग्रहालय है। कोठी देखकर संग्रहालय गये। उसमें विभिन्न वस्तुओं का अद्वितीय संग्रह है। भगवान बुद्ध की मूर्तियां, काठ और संगमरमर के द्वार, पूर्वी अफगानिस्तान के हाडा स्थान से प्राप्त स्तूप का माडल, पोशाकें, चित्रकारी, बुखारा के पर्दे, धौतोरक की मूर्तियां आदि विशेष रूप से पसंद आयें। एक बड़ी असुविधा अनुभव हुई। वहां की सारी वस्तुओं के परिचय या तो पश्तो में लिखे थे, या फ्रेंच में। अंग्रेजी में बहुत कम थे।

हमें जो सज्जन संग्रहालय दिखा रहे थे, वे नये-नये आये थे और सारी चीजों से परिचित नहीं थे। फिर भी कुल मिलाकर संग्रहालय बहुत बढ़िया लगा।

इतिहास के पाठक बाबर के नाम से भली-भांति परिचित हैं। शहर से चार मील पर उसकी कब्र है। वह भी बड़ी शानदार जगह है।

अफगानिस्तान की उस राजधानी में घूमते हुए मेरा ध्यान बार-बार अफगानिस्तान के प्राचीन इतिहास पर जाता था। भारत के साथ उसका कितना पुराना और निकट का संबंध रहा है, आज भी है। ऐतिहासिक तथा भौगोलिक दोनों दृष्टियों से इस देश का महत्व है। एशिया का वह केन्द्र-स्थान है। उत्तर में रूस है, पूर्व में एक छोटा-सा भूखंड उसे चीन के साथ जोड़ देता है। भारत और उसकी सीमा पर पख्तूनिस्तान है और पश्चिम में फारस। मध्य एशिया से आर्य लोग खैबर तथा अन्य दर्रों के रास्ते इधर आकर विभिन्न स्थानों में फैले थे। कितनी उथल-पुथल हुई है इस अफगानिस्तान में! बहुत-से राजवंश उठे और गिरे, बादशाह आये और गये, देश की तकदीर जाने किस-किस के हाथों में खेलती रही! अब उसे विकास का अवसर मिला है। पर यह विकास तब स्थायी होगा और उसके लिए वरदान बनेगा, जबकि वहां के लोगों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न होगी—वह चेतना, जो कि किसी भी देश की नींव को मजबूत बनाती है। अफगान शरीर से बड़े ही तगड़े हैं और बहादुरी में तो उनका मुकाबला कम ही लोग कर सकते हैं। यदि उनके जीवन का सर्वांगीण विकास हो जाय तो उनके उस देश का, जिसे किसी जमाने में 'आर्याना' (आर्यों का देश) की संज्ञा से विभूषित किया गया था, भाग्य बदलते देर नहीं लगेगी।

: ३ :

मास्को पहुंचा

रात को नींद नहीं आई। जलवायु के परिवर्तन से या धूल से गले में खराश हो गई थी। सिर बड़ा भारी था। फिर भी जल्दी उठना पड़ा। ७ बजे जहाज छूटने-वाला था। हमें तैयार होकर ६ बजे हवाई अड्डे के लिए रवाना होने की सूचना थी। ५ बजे उठे। निवृत्त हुए। इतना बड़ा होटल होने पर भी स्नान के लिए गरम पानी एक भी दिन न मिला। ठंडे पानी से ही काम चलाना पड़ा। हालांकि सर्दी अधिक नहीं थी, फिर भी नहाते समय कंपकंपी आ जाती थी।

तैयार होकर सामान नीचे भिजवाया। उसे उठाकर हवाई अड्डे की बस में रखने के लिए ले जाने लगे तो होटलवालों ने कहा, "बिल के पैसे लाओ।" दिल्ली की एजेंसी ने जब टिकट की व्यवस्था की थी तो उसके अधिकारी ने कहा था कि अगर काबुल में जहाज न मिलने से दो-एक दिन ठहरना पड़े तो खर्चा आर्यानावाले देंगे। मुझे नहीं देना पड़ेगा। यही बात मैंने होटलवालों से कही, लेकिन वे नहीं माने। समझाते-समझाते हार गया तो लाचार होकर आर्याना के दफ्तर में गया। पास ही था। वहां जो आदमी मिला वह अंग्रेजी नहीं जानता था। बस छूटने का समय हो रहा था। मैंने झटपट सामान बस पर चढ़ाया। होटलवाला बार-बार कहता था कि समान नहीं ले जाने दूंगा। वह बस पर चढ़ आया। मैंने बंगालीबाबू से कहा, "मैं सामान लेकर जाता हूं। तुम इन लोगों से निबटकर दूसरी बस से आओ। मैं तबतक सामान की जांच करा लूंगा।" बस रवाना हुई। हवाई अड्डे पर पहुंचने के कुछ देर बाद बंगालीबाबू लौटे और बताया कि दोनों आदमियों के होटलवालों ने ६५) झटक लिये। मैंने हवाई अड्डे के अधिकारी का ध्यान इस ओर खींचा तो उन्होंने कहा, "अभी तो बड़ी जल्दी है। आप जब लौटकर आयेंगे तब देख लेंगे।" यह तो बहलाने की बात थी। बाद में भला क्या होना-जाना था!

सामने मैदान में हमें ले जानेवाला विमान खड़ा था। उसके आगे के हिस्से

पर एक ओर को हंसिया-हथौड़ा बना देखकर यह समझते देर न लगी कि यह रूसी विमान है। हंसिया-हथौड़ा के पास ही रूसी भाषा में 'एरोफ्लोट' लिखा था। उसीकी बगल में आर्याना का जहाज खड़ा था। बाहर से ही दोनों यानों का अन्तर साफ दिखाई देता था।

हवाई अड्डे पर पहुंचते ही मैंने चुंगी-विभाग में सामान की जांच करा ली थी। सामान विमान पर चढ़ा दिया गया। घोषणा होने पर हम लोग भी एरोफ्लोट में सवार हो गये। ठीक ७ बजे विमान तरमेज के लिए रवाना हुआ। सवेरे का सुहावना समय था। चारों ओर पर्वत मौन भाव से खड़े चिंतन में लीन जान पड़ते थे।

विमान बहुत ही अच्छा और साफ था। सीटें गुदगुदी थीं और उनपर स्वच्छ कपड़ा लगा था। जरा-सा जोर लगाने पर वे इतनी फैल जाती थीं कि आराम से लेटा जा सकता था। हर यात्री के लिए आक्सीजन लेने की व्यवस्था थी। परिचारिका बड़ी स्वस्थ और भली रूसी लड़की थी। शरीर से कुछ भारी होने पर भी काम में बड़ी फुर्तीली थी। अंग्रेजी मजे में बोल लेती थी।

थोड़ी देर तक उड़ने के बाद विमान एकदम ऊपर उठने लगा। नीचे देखा तो मालूम हुआ कि पहाड़ शुरू हो रहे हैं। परिचारिका ने सबके पास जा-जाकर संकेत किया कि आक्सीजन मास्क पहन लो। जो स्वयं नहीं पहन सके, या जिन्हें पहनने में कठिनाई हुई उनकी उसने मदद कर दी। रूस और अफगानिस्तान के बीच हिन्दूकुश पर्वत-मालाएं हैं। इस पर्वत के महत्व के कारण ही अनेक लेखकों ने अफगानिस्तान को 'हिन्दूकुश की भूमि' कहा है। इस पर्वत-माला की लम्बाई कोई ३७५ मील है। पामीर से शुरू होकर वह बामियन दर्रे पर समाप्त होती है। उसकी कुछ चोटियां तो बहुत ही ऊंची हैं। तिरिचमीर की ऊंचाई २५४२६ फुट बताई जाती है। अनेक दर्रे हैं इन पहाड़ों में। प्राचीन काल में बहुत-से आक्रांता, व्यापारी तथा यात्री इन्हीं दर्रों से होकर अफगानिस्तान तथा अन्य स्थानों में आया-जाया करते थे। आज भी बहुत-सा व्यापार इन्हीं दर्रों में होकर होता है।

पर्वत-मालाओं के आरंभ होने के कुछ ही मिनट बाद एक साथ विमान दाईं ओर को घूमा। पूछने पर परिचारिका ने बताया कि सामने बहुत ऊंची चोटी है, जिसे बचाने के लिए विमान ने दिशा बदली है। इधर के पहाड़ अधिकांशतः सूखे थे। बादल होने के कारण दृश्य साफ दिखाई नहीं देते थे, लेकिन कहीं-कहीं बादल

ऊपर जाते थे तो ऐसा लगता था, मानों विमान पहाड़ों की चोटियों का स्पर्श करता हुआ उड़ रहा है। जगह-जगह पर बर्फ फैली हुई थी। हम लोग कोई १६-१७ हजार फुट की ऊंचाई पर उड़ रहे थे।

कुछ दूर तक यही सिलसिला चला। पर विमान प्रैशराइज्ड तथा आरामदेह होने के कारण पता भी न चला कि हम लोग इतनी ऊंचाई पर हैं। आगे चलकर जब कुछ निचाई पर आये तो परिचारिका के संकेत पर हमने आक्सीजन मास्क उतार दिये।

विमान में ज्यादातर रूसी यात्री थे। उनमें काबुल-स्थित सोवियत दूतावास के एक अधिकारी भी थे। वे कुछ-कुछ अंग्रेजी बोल लेते थे। उनसे बातें होती रहीं। उन्होंने रूस की कुछ जानकारी दी। बातचीत में बंगालीबाबू ने उनसे कहा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर रूस गये थे। उसपर वह अधिकारी बोले, "कौन रवीन्द्रनाथ ठाकुर?" इस प्रश्न पर बंगालीबाबू तेज हो उठे। बोले, "आप अधिकारी आदमी होकर भी इतनी जानकारी नहीं रखता! रवीन्द्रबाबू को कौन नहीं जानता!" बेचारे अधिकारी सहम गये।

करीब डेढ़ घंटे तक पहाड़ों पर उड़ते रहे। बीच-बीच में छोटी-बड़ी बस्तियां और नदियां आती थीं तो दृश्य बदल जाता था। बस्तियों को देखकर मैं सोचता था, कि मानव की शक्ति कितनी अद्भुत है! इन दुर्गम पर्वतों में से मार्ग निकालकर लोग कैसे-कैसे निर्जन स्थानों में बस गये हैं और जाने किस प्रेरणा के सहारे हजारों वर्षों से उनका जीवन चल रहा है! प्रकृति उनकी कड़ी परीक्षा लेती है। जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें बहुत ही परिश्रम करना पड़ता है। पर उनके दुर्दमनीय उत्साह को क्या कभी कोई भंग कर पाया है? जाने कितनी पीढ़ियां गुजर चुकी हैं, जाने कितनी आगे गुजरेंगी, पर प्रकृति-माता की गोद इन पर्वत-पुत्रों और पुत्रियों से सदा हरी-भरी बनी रहेगी।

८॥ बजे से कुछ पहले परिचारिका ने बताया कि अब अफगानिस्तान की सरहद समाप्त हो रही है। एक ओर को पानी की पतली-सी धारा की ओर इशारा करके उसने कहा, "वह देखो आमू दरिया। उसकी आधी धारा अफगानिस्तान में है, आधी रूस में। इसीसे दोनों देशों की सीमा बनती है।" उसके इतना कहते-कहते विमान नदी के ऊपर पहुंच गया।

अब हम रूस में थे—उस देश में, जिसकी भूमि 'लाल' कही जाती है। मेरी

आंखें उस रंग को देखने के लिए लालायित हो उठीं। पर कहां थी लालिमा ? कहां था उस भूमि से अंतर, जो एक क्षण पहले हमसे छूटी थी ! सारी भूमि एक-सी। सारे दृश्य एक-से। दरिया का पानी भी ठीक दूसरे दरियाओं का जैसा।

निमिष-मात्र में ये विचार मन में बिजली की भांति कौंध गये, लेकिन तभी विमान नीचे उतरने लगा। विचारों का तांता टूट गया।

ठीक साढ़े आठ बजे तरमेज पहुंचे। बड़ा छोटा-सा हवाई अड्डा है तरमेज का। बस्ती भी अधिक नहीं है। मुश्किल से दो हजार की आबादी होगी। लेकिन सरहद पर होने के कारण उसका बड़ा महत्व है। यहां से उजबिकिस्तान शुरू हो जाता है। रूस में छोटे-बड़े पन्द्रह राज्य हैं, जिनमें एक उजबिकिस्तान है। ताशकन्द उसकी राजधानी है।

विमान के उतरने पर परिचारिका हमें एक कमरे में ले गई, जहां हमारे पासपोर्ट, वीसा आदि देखे गये। फिर भोजन के कमरे में गये। काबुल से चलते समय झगड़े में वक्त बरबाद हो जाने के कारण नाश्ता नहीं कर सके थे। भूख लगी थी। मेज पर बैठे तो देखा कि सारी आमिष वस्तुएं सामने हैं। मेरे शाकाहारी चीजों की इच्छा व्यक्त करते ही थोड़ी देर में टमाटर, आलू, डबल रोटी, मक्खन आदि मेज पर रख दिये गए। पानी की जगह जिंजर मिला। नाश्ता करानेवाली बहन हम लोगों के लिए शराब लाई। बंगालीबाबू तथा दो रूसी भाइयों ने चढ़ा ली। मेरे इन्कार करने पर दूतावास के अधिकारी के द्वारा उस बहन ने कहलवाया कि हम लोगों के स्वास्थ्य की कामना की दृष्टि से थोड़ी-सी पी लो। मैंने कहा, "मैंने अपने जीवन में शराब कभी नहीं पी। पर आप चिन्ता न करें। मैं एक गिलास जल के साथ आप सबके स्वास्थ्य की कामना करूंगा।" इसके बाद हमारे अन्य तीन साथियों ने जहां शराब के पैग उठाकर और एक-दूसरे से टकराकर, रूस और भारत की मैत्री की कामना की, वहां मैंने जिंजर के गिलास से उनका साथ दिया। मैंने अनुभव किया कि अगर किसीका अपना मन कमजोर न हो तो मांस-मदिरा से मजे में बचा जा सकता है और उसके बिना काम बखूबी चल सकता है। नाश्ते में चाय बिना दूध के मिली, पर अच्छी थी।

तरमेज में बड़ी गर्मी थी। नाश्ता करके मैं पहले उठ आया और इधर-उधर चक्कर लगाने लगा। मेरी इच्छा थी कि वहां के कुछ चित्र लूं। चित्र लेने आगे बढ़ा, तो वहां के कर्मचारी ने रोक दिया। बोला, "चित्र लेने की मनाही है।"

यहांपर कई उजबेग स्त्री-पुरुष-बच्चे मिले। उनका रंग अफगानियों से मिलता-जुलता था, शरीर भी वैसा ही पुष्ट था, पर पोशाक भिन्न थी। वे हमें घूर-घूरकर देखते थे, विशेषकर कुरते-धोती के मेरे लिबास को।

विमान में सवार होने से पहले अंग्रेजी जाननेवाले एक दुभाषिये युवक से बात होती रही। चर्चा में गांधीजी का नाम आया तो उसने कहा, "गांधी महापुरुष थे।" मैंने कहा, "हां, क्योंकि उन्होंने आदमी-आदमी के बीच कभी भेद नहीं किया। वह विश्व में प्रेम और शांति चाहते थे और इसीके लिए उन्होंने सारी जिंदगी काम किया।"

उन सज्जन ने सहमति प्रकट करते हुए कहा, "आप ठीक कहते हैं। हम लोगों की भी उनके बारे में यही राय है।"

जो विमान हमें यहां लाया था, वही ताशकंद जा रहा था। इसलिए हम अपना सारा सामान उसीमें छोड़ गये थे। घोषणा होने पर विमान में चढ़ आये। मैंने देखा कि सबके पासपोर्ट वापस मिल गये, पर मेरा नहीं मिला। जब दरवाजा बंद होने लगा तो मैं अपनी सीट से उठकर परिचारिका के पास गया और पासपोर्ट के बारे में पूछा। उसने कहा—घबराओ नहीं, अभी मिल जायगा। फिर भी मैं खड़ा रहा। परिचारिका ने दरवाजा खोला। एक सज्जन ऊपर आये। उनके हाथ में मेरा पासपोर्ट था। देकर चले गये।

६.४० पर तरमेज से रवाना हुए। थोड़ी दूर तक मैदान पर उड़े, फिर पहाड़ आ गये। काबुल से तरमेज तक का डेढ़ घंटे का सफर मजे में हुआ था। लेकिन इधर एयर पाकेट अधिक होने के कारण जहाज बार-बार नीचे-ऊपर होता था। इससे कुछ परेशानी हुई। पर पार्वत्य दृश्यों का आनंद लेते हुए कोई १२ बजे ताशकंद जा पहुंचे। उस समय वहां की घड़ी में १ बजकर २० मिनट हुए थे। जहाज से उतरते ही अलीम नाम के एक उजबेग सज्जन तथा माशा नाम की बहन ने हमारा स्वागत किया, कुशल-क्षेम पूछी और हवाई अड्डे के मुसाफिरखाने में ले गये। बातचीत में उन्होंने कहा कि जल्दी नहीं है। आप लोग आराम से भोजन कर लें। पौने तीन बजे हमारा विमान छूटेगा। तबतक आप चाहें तो खाना खाकर इधर-उधर घूम भी सकते हैं।

मुसाफिरखाने के भीतर भोजन का कमरा था। उसमें जाकर भोजन किया। राइसा नाम की बहन ने बड़े प्रेम और आत्मीयता से खाना खिलाया।

भोजन करके बाहर आये। यहां का हवाई अड्डा बहुत बड़ा और शानदार है। नगर की भांति यहां भी खूब हरियाली थी। उद्यान के बीच लेनिन की विशाल प्रतिमा है।

यहां के समय से २.४५ पर विमान चला। यहां से दूसरा विमान मिला, पर था वह भी एरोफ्लोट ही। सवेरे के चले-चले थक गये थे। विमान के रवाना होने पर हम लोग कुछ देर तक बात करते रहे। फिर झपकी आ गई।

६। बजे आशकाबाद पहुंचे। कच्चा हवाई अड्डा। धूल का अंबार। पर अंदर उतना ही शानदार। सामने फव्वारे चल रहे थे, जिसके ऊपर जाल पर अंगूर की बेलें फैली थीं और उनपर अंगूर के गुच्छे लटक रहे थे। इधर-उधर बगीचों में गेंदा, सूरजमुखी, गुलाब आदि के फूल खिले थे। सदाबहार अपनी बहार दिखा रही थी।

वहां से ७.२० पर चलकर ८ बजते-बजते फिर जरा आंख लगी कि परिचारिका ने जगा दिया। बोली, "देखो, अब हमारा जहाज कैस्पियन सागर पर उड़ रहा है।" नीचे अनंत जल राशि दिखाई दे रही थी। लेकिन यह क्या? आशकाबाद पर लगता था कि शाम होगई, पर अब सूरज आसमान में तेजी से चमक रहा था। देखकर मध्याह्न का भ्रम होता था। मास्को के हिसाब से ६ बजकर १५ मिनट हुए थे। समय का यह भेद और परिवर्तन मेरी समझ में नहीं आया।

९.३० पर आस्त्रेखान पहुंचे। वोल्गा के तट पर बसी यह विशाल नगरी तीन-सौ बरस पहले विदेशी व्यापार का महान् केन्द्र थी। रूस, भारत तथा एशिया के अन्य देशों के साथ यहां से व्यापार होता था। बहुत-से भारतीय यहां जाकर बस गये थे। उसका स्मरण दिलाने के लिए नगर की एक सड़क आज भी इंदिस्काया (भारतीय) कहलाती है। अठारहवीं शताब्दी में वहां राजनैतिक उपद्रव हुए, जिनके परिणाम-स्वरूप उन भारतीयों को छोड़कर, जिनकी व्यापार आदि के कारण वहां की भूमि में गहरी जड़ें जम गई थीं, शेष सब भारतीय तितर-बितर हो गये। उन्नीसवीं शती के मध्य तक एक भी भारतीय व्यापारी वहां नहीं रहा। उनके मंदिरों के अवशेष आज भी मिलते हैं।

हमें बताया गया कि भोजन करके आगे बढ़ चलेंगे और रात को १२ बजे के करीब मास्को पहुंच जायंगे। लेकिन भोजन करने के बाद पता चला कि खतरे का संकेत मिला है, यानी आगे मौसम अच्छा नहीं है, रात यहीं बितानी होगी। आशका-बाद की अपेक्षा यहां का हवाई अड्डा कुछ बढ़िया है। यह देखकर बड़ा आश्चर्य

हुआ कि यहां तरबूज खूब मिलते हैं। उसे रूसी में 'अरबूज' कहते हैं। गिलास में जमा हुआ मीठा दही भी मिला। भोजन के कमरे में फलों का बड़ा सुंदर रंगीन चित्र लगा था। बाहर बगीचे में गुलाब के फूल खिले थे। रात वहीं के विश्रामालय में बिताई। थके होने के कारण खूब जोर की नींद आई।

सवेरे ४ बजे उठा। उस समय वर्षा हो रही थी। बंगालीबाबू और मैं एक ही कमरे में ठहरे थे। उठकर बातें करने लगे। तभी एक महिला ने दरवाजा खटखटाया और तैयार होने की सूचना दी। नाश्ता करके ६.२५ पर रवाना हुए।

आस्त्रेखान से कुछ पहले से ही वोल्गा नदी साथ हो गई थी। विमान अब उसी-के किनारे-किनारे चला। वोल्गा का इतना नाम सुन रक्खा था। हमारे देश में जैसे गंगा का मान है, वैसे ही रूस में वोल्गा का है। विमान के उड़ान भरने के कुछ ही समय बाद मौसम साफ हो गया। बाल-रवि की सुनहरी किरणें वोल्गा की जल-धारा पर पड़कर अलौकिक दृश्य उपस्थित करने लगीं। देखकर हृदय अनिर्वचनीय आनन्द से भर उठा।

८ बजे स्टालिनग्राड के हवाई अड्डे पर उतरे। वोल्गा के तट पर बसे इस विशाल नगर का किसी समय बड़ा महत्व था। पर अब वह बहार नहीं रही। थोड़े समय में हम लोग नगर में घूम तो सकते नहीं थे, पर जहाज ने, आगे बढ़ने से पहले, पूरे नगर पर चक्कर लगाया तो उसे देखने का सुयोग मिल गया। यहां हमारा स्वागत करने-वाली वीरा नाम की रूसी लड़की ने बताया था कि तीन महीने से इधर बारिश न होने से बड़ी गर्मी थी। कल पानी पड़ जाने से आज मौसम अच्छा हो गया है।

८.४० पर रवाना हुए। थोड़ा आगे बढ़ते ही वोल्गा बिछुड़ गई। अब विमान सीधा मास्को जाकर रुकनेवाला था।

आखिर मास्को पहुंचे। उस समय दोपहर के १२॥ बजे थे। हवाई अड्डा खूब सजा हुआ था और वहां अच्छी चहल-पहल थी। मास्को-विश्वविद्यालय की एक स्नातिका ने हम लोगों का अभिवादन किया और हमें एक कमरे में ले गई। वहां पासपोर्ट, वीसा आदि देखे गये। बाद में उस बहन ने रेस्ट्रां में ले जाकर जलपान कराया। इस बीच ओस्तान्कीनो होटल में हमारे ठहरने की व्यवस्था कर दी गई। कार आते-आते ३ बज गये। हवाई अड्डे से शहर लगभग २५ किलोमीटर था। कार आने पर उसमें हमारा सामान रखवाकर और हमें उसमें बिठाकर वह लड़की चली गई। हम लोग शहर की ओर रवाना हुए।

: ४ :

युवक-समारोह

शहर की ओर चले उस समय कुछ थकान-सी अनुभव हो रही थी। एक तो शायद इसलिए कि लंबा सफर करके आये थे; दूसरे, यहां की भाषा न समझ पाने के कारण तबीयत में बड़ी घुटन-सी होती थी। फिर भी इस बात का संतोष था कि मंजिल पर सही-सलामत पहुंच गये। हमें लेने के लिए एक रूसी युवक आया था, बड़ा ही स्वस्थ और सुंदर। कार चलने पर आपस में बातें करने लगे। वह अंग्रेजी बोल लेता था, पर टूटी-फूटी। शब्दों के अभाव में कभी-कभी वह अटक जाता था और बहुत ही बेबसी महसूस करता था। बातचीत में मालूम हुआ कि वह इंजीनियर है और युवक-समारोह में स्वयंसेवक के रूप में काम कर रहा है। सुनकर आश्चर्य हुआ। हमारे यहां कोई भी ऊंचा पदाधिकारी स्वयंसेवक का या वैसा काम करना शान के खिलाफ समझता है, लेकिन उस युवक के लिए वह कार्य उतने ही गौरव का था, जितना इंजीनियर का।

हवाई अड्डे से शहर का रास्ता साफ-सुथरा और मनोरम था। सड़क के दोनों ओर हरे-भरे खेत थे। कहीं-कहींपर ऊंचे-ऊंचे वृक्ष। उनके बीच में छोटी-छोटी बस्तियां। युवक ने बताया कि ये हमारे कलेक्टिव फार्म (सामूहिक खेत) हैं, जिनमें अनेक परिवार मिल-जुलकर रहते हैं और संगठित रूप से काम करके देश की आर्थिक बुनियाद को मजबूत करते हैं।

रास्ता बात-की-बात में तय हो गया। बस्ती दीख पड़ने लगी। दूर एक इमारत की ओर इशारा करके युवक ने कहा, "देखिये, वह जो सबसे ऊंची इमारत दीख रही है, वह हमारी मास्को यूनिवर्सिटी है। अब हम शहर में प्रवेश कर रहे हैं।"

फिर कुछ देर चुप रहकर उसने पूछा, "मास्को आप पहले कभी आये हैं या यह आपकी प्रथम यात्रा है?"

मेरे यह कहने पर कि मैं पहली बार इस देश में आया हूं, उसने रूसी में श्राइ-

वर से कुछ कहा। फिर हमें बताया कि उसने ड्राइवर से अनुरोध किया है कि वह हमें शहर में घुमाता हुआ ले चले। नगर में जिधर से प्रवेश किया था, वह एक छोर था। ओस्तान्कीनो होटल, जहां हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी, दूसरे छोर पर था, यानी कोई २५-३० किलोमीटर के फासले पर।

युवक-समारोह का अवसर होने के कारण सारा नगर बड़े सुन्दर ढंग से सजाया गया था। चारों ओर रंग-बिरंगी झंडियां और झंडे लगाये थे। जगह-जगह पर आकर्षक चित्र थे, जिनमें शांति, मैत्री, श्रम-प्रतिष्ठा आदि के दृश्य दिखाये थे। दीवारों पर, मकानों की खिड़कियों पर, दुकानों पर, कागज के श्वेत कपोत लगे थे। कपोत शांति का प्रतीक माना जाता है। शहर की साज-सज्जा देखते ही बनती थी। लोगों की भीड़-की-भीड़ इधर-उधर आ-जा रही थी। उनके चेहरे पर उल्लास था। यह स्वाभाविक ही था। संभवतः उनके जीवन में पहला अवसर था, जबकि उनके नगर में विश्व के १२६ देशों के लगभग ३३ हजार नर-नारी एकत्र हुए थे। युवक ने बड़ी आत्मीयता से युवक-समारोह का उल्लेख करते हुए कहा, "सचमुच हमारे राष्ट्र के लिए यह एक अभूतपूर्व अवसर है। हम शांति चाहते हैं, सबके साथ मैत्री की कामना करते हैं। संसार के कोने-कोने से आये हजारों स्त्री-पुरुषों के मुंह से 'शांति और मैत्री' की आवाज निकलती है तो खुशी से हमारी छाती फूल उठती है।"

हम लोग शहर में काफी देर तक चक्कर लगाते रहे। युवक खास-खास इमारतों, सड़कों तथा संस्थाओं के भवनों को दूर से ही बताता गया। घंटे-पौन घंटे में उसने बहुत-से स्थानों के नामों से हमारा परिचय करा दिया।

५ बजे के लगभग हम ओस्तान्कीनो होटल पर पहुंचे। यह होटल मास्को के विशेष होटलों में से एक है। कई मंजिल की उसकी इमारत है। अनेक देशों के प्रतिनिधि उसमें ठहरे हुए थे। बाहर दर्शकों की भीड़ लगी थी। पूछने पर मालूम हुआ कि सारे भारतीय प्रतिनिधियों को उसी होटल में ठहराया गया है। मास्को के सभी छोटे-बड़े होटल अतिथियों से भरे हुए थे। कार का द्वार खोलते हुए युवक बोला, "आपके ठहरने की व्यवस्था यहीं की गई है। आप मेहरबानी करके मेरे साथ आइये।"

मैंने कहा, "सामान ?"

उसने मुस्कराकर कहा, "उसकी चिंता न कीजिये। वह पीछे से आ जायगा।"

लिफ्ट से हम लोग चौथी मंजिल पर पहुंचे। वहां स्वागत-कक्ष में हमें बिठाकर वह युवक यह कहकर चला गया कि मैं अभी आता हूं। थोड़ी देर में वह लौटा और हमें एक कमरे में ले गया, जिसमें चार व्यक्ति पहले ही से ठहरे हुए थे। दो पलंग उसमें और डलवा दिये गए। उसके बाद युवक जाकर हमारा सामान ले आया। हमने सोचा कि थोड़ी देर विश्राम कर लें, लेकिन उसका अवसर कहां था! दिल्ली तथा अन्य स्थानों के बहुत-से परिचित व्यक्ति मिल गये और वे देश के हाल-चाल पूछने लगे। उन्होंने बताया कि आज गोर्की पार्क में एक विशेष कार्नीवल का आयोजन किया गया है।

हम लोगों ने हाथ-मुंह धोकर कपड़े बदले, नाश्ता किया, तबतक जाने का समय हो गया। होटल के बाहर बसें खड़ी थीं। उनमें बैठकर जब हम रवाना हुए तो बाहर के दृश्य देखकर हृदय गद्गद् हो गया। लाखों उत्सुक नर-नारियों की भीड़ सड़क के दोनों ओर बड़े ही व्यवस्थित रूप में खड़ी थी। उनके हाथों में झंडियां थीं, जिन्हें ऊंची कर-करके वे 'मीर' (शांति) और 'द्रुजबा' (मैत्री) के नारे लगाते थे। 'हिंदी-रूसी भाई-भाई' के स्वर बार-बार उनके कंठ से फूटकर वहां के वायुमंडल में गूंजते थे। लोग जोश से पागल हो रहे थे। भीड़ इतनी अनुशासित थी कि देखकर आश्चर्य-मिश्रित हर्ष होता था। वास्तव में विशाल जनसमुदाय की असीम भावनाओं की यह अभिव्यक्ति असामान्य थी और शायद वैसी ही अभिव्यक्ति से अभिभूत होकर मास्को से विदा लेते समय पं० जवाहरलाल नेहरू कह उठे थे, "मैं अपना हृदय यहीं छोड़े जा रहा हूं।"

आगे चलकर हम लोग बस से उतर पड़े। पार्क अधिक दूर नहीं था। उतरते ही रूसी भाई-बहनों ने घेर लिया। वे कहते थे, "इंदिस्की ?"—अर्थात्, क्या आप भारतीय हो ? और जब मैं कहता 'हां' तो वे बड़े प्यार और आत्मीयता से पेश आते थे। मनोरंजन की दृष्टि से बहुत-से लोगों ने कृत्रिम चेहरे लगाकर ऐसी आकृतियां बना ली थीं कि देखकर हँसी आती थी। एक रूसी बहन ने बंगालीभाई के चेहरे पर एक लम्बी नाक और मूंछें लगा दीं। अब वह हजरत दूसरे ही आदमी लगने लगे। जबतक हम वहां रहे, वह उस कृत्रिम नाक और मूंछों को लगाये रहे और लोगों के मनोरंजन के पात्र बने रहे।

पार्क में बेहद भीड़ थी। विभिन्न देशों ने भांति-भांति की झांकियां सजाई थीं। मनोरंजन के साथ-साथ अलग-अलग देशों की संस्कृति की झांकी भी मिल रही थी।

घूमते-घूमते बहुत-से परिचित लोगों से मिलना हुआ। रूसी भाई-बहनों की भीड़-की-भीड़ आकर हमें घेर लेती थी और 'हिंदी-रूसी भाई-भाई' के नारे लगाती थी। हमें भारतीय देखकर कुछ लोग बड़े अजीब से स्वर में गाते थे—"आवारा हूं।" कई लोगों ने पूछा, "क्या आप राजकपूर के देश से आये हो?" बार-बार जब यह प्रश्न किया गया तो मुझे बड़ा अटपटा-सा लगा। मैंने कहा, "नहीं, मैं गांधी के देश से आया हूं, नेहरू के देश से आया हूं।" बाद में मालूम हुआ कि राजकपूर उन दिनों मास्को में थे और उनके 'आवारा' चित्र का यह गाना वहां बड़ा लोकप्रिय हो रहा था। हिंदी की फिल्में भी वहां के सिनेमाघरों में कभी-कभी दिखाई जाती हैं।

रूसी भाई-बहनों ने आगत अतिथियों के निकट सम्पर्क में आने और उनके साथ मित्रता के संबंध स्थापित करने का हृदय से प्रयत्न किया। उनकी यह भी इच्छा थी कि कोई भी मेहमान उनके देश की बुरी छाप लेकर न जाय। रूस के विभिन्न भागों से लाखों युवक और युवतियां मास्को आई थीं। वे अपने अतिथियों को छोटी-बड़ी अनेक भेंटें देती थीं, अपने हाथ से उनके बैज लगाती थीं और चित्र आदि की भेंट द्वारा पारस्परिक स्थायी मैत्री की कामना करती थीं। सारा वातावरण सद्भावना तथा प्रेम की स्निग्धता से भरा था।

एक चीज ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया। रूसी भाई-बहनों में उन्मुक्तता होते हुए भी उच्छृंखलता नहीं थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि उस अवसर पर रूसी भाई-बहनों ने अपना पार्ट बड़ी खूबी से अदा किया। आगत स्त्री-पुरुषों की अलग-अलग भाषाएं थीं, अलग-अलग रुचियां थीं, अलग-अलग विश्वास थे, अलग-अलग रहन-सहन थे, अलग-अलग खान-पान थे। रूस के निवासियों ने बड़ी आत्मीयता से उनका आदर-सत्कार किया, उनकी सुविधा का ध्यान रखा, सभी भाषाओं के दुभाषियों की व्यवस्था की, लेकिन बड़ी लज्जा के साथ कहना पड़ता है कि बाहर से आये बहुत-से लोगों ने अपनी करतूतों से वहां के उज्ज्वल वायुमंडल को विषाक्त करने का प्रयत्न किया। अनैतिकता की बात छोड़िये, अनेक सज्जन मामूली लालच के सामने झुक गये। कपड़ों, जूतों आदि की वहां अच्छी कीमत उठ आती है। कई भाइयों ने अपने पुराने सूट, जूते, ओवरकोट तथा बहनों ने साड़ियां अच्छे-खासे मुनाफे से बेचीं। यहांतक सुनने में आया कि कुछ बहनें अपने हाथ की कांच की चूड़ियां तक बेच आईं। भेंट के रूप में चीजों के आदान-प्रदान का औचित्य

हो सकता है, लेकिन पुरानी चीजों को आर्थिक लाभ के लिए ऊंचे दामों में बेचना स्वार्थ-बुद्धि का परिचायक होने के साथ-साथ नितांत अशोभनीय और अवांछ-नीय है।

युवक-समारोह का भीतरी उद्देश्य कुछ भी हो, उसका संगठन भी कैसा ही क्यों न हो, लेकिन इसमें शक नहीं कि उसके निमित्त संसार के कोने-कोने से हजारों नर-नारी एक जगह पर एकत्र हो जाते हैं और अल्पकाल के लिए ही सही, उनकी एक ही आशा, एक ही अभिलाषा होती है---विश्व के निवासियों में मैत्री स्थापित हो।

समारोह २८ जुलाई से शुरू हुआ था। ११ अगस्त को समाप्त हुआ। इन दिनों में अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम, खेल-कूद, नृत्य-नाटक आदि रूस की ओर से ही नहीं, लगभग सभी देशों की ओर से हुए और उसका स्मरण वहां के लोग बहुत समय तक बड़े प्रेम से करते रहे। भारतीय नृत्य तो वहां के निवासियों को बहुत ही पसंद आया।

पार्क कुल्तूरे (गोर्की पार्क) सांस्कृतिक प्रदर्शनों की स्थायी जगह है। इतने देशों के लोगों का स्वागत कर वह जैसे धन्य हो उठा! वहींपर भोजन की व्यवस्था थी। रूसी साथियों के आग्रह पर हम लोगों ने खाना खाया और घूमते-घामते होटल लौटे। उस समय रात के २ बजे थे।

अगला दिन समारोह का अंतिम दिन था। बड़ी शान के साथ विशाल लेनिन स्टेडियम में उसकी कार्रवाही हुई। उसमें सोवियत संघ के प्रमुख राजनेता श्री ख्रुश्चेव तथा श्री बुल्गानिन भी सम्मिलित हुए। अनेक सांस्कृतिक प्रदर्शन किये गए। उनमें कुछ तो वास्तव में बड़े ही आकर्षक थे। चारों ओर से 'शांति' और 'मैत्री' के नारे लगे और बड़ी भावना के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

अगले दो-तीन दिन में सारी भीड़ छट गई। लोग अपने-अपने देशों को चले गये। लेकिन मुझे तो वहां कुछ दिन रहकर उस भूमि को निकट से देखना था, जिसने टाल्स्टाय, गोर्की, तुर्गनेव, क्रोपॉटकिन, पुश्किन, डास्टोवस्की प्रभृति कलाकारों को जन्म दिया था।

: ५ :

भारतीय स्वाधीनता दिवस-महोत्सव

युवक-समारोह में भाग लेने आये अधिकांश प्रतिनिधियों के चले जाने से मास्को नगरी में चहल-पहल बहुत कम हो गई, चारों ओर उदासी-सी छा गई। असल में अधिवेशन के दिनों में असामान्य प्रवृत्तियां रही थीं, जिनकी तैयारियां महीनों पहले से करनी पड़ी थीं। रूसी भाई-बहनों ने दिन-रात एक कर दिये थे। हजारों व्यक्तियों की व्यवस्था करना मामूली बात नहीं थी। बेचारे परिवाचकों (दुभाषियों) को तो प्रतिनिधियों की टोलियों के साथ छाया की भांति रहना पड़ता था। वे थककर चूर हो गये थे और समारोह के समाप्त होते ही उनमें से बहुत-से विश्राम के लिए मास्को से बाहर किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान पर चले गये।

मेरे सहृदय मित्र श्री सोमसुन्दरम्, जो पहले दिल्ली में 'नवभारत टाइम्स' के संपादकीय विभाग में काम करते थे और अब मास्को के 'विदेशी भाषा प्रकाशन-गृह' में अनुवादक का कार्य करते हैं, होटल से मेरा सामान उठवाकर ले गये और डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल के यहां ठहरने की व्यवस्था कर दी। शुक्लजी पहले सागर विश्व-विद्यालय में प्राध्यापक थे, अब उक्त प्रकाशन-गृह में अनुवाद का काम करते हैं। उनके घर के पास बन्धुवर मैयालाल जायसवाल थे, जो मास्को रेडियो के कर्मचारी हैं।

इनके अतिरिक्त और भी कई भारतीय मित्रों से भेंट हुई। उनमें सर्वश्री भीष्म साहनी, गोपेश, राधेश्याम, डा० खन्ना, मदनलाल 'मधु', नकवी, शंकर गौड़ आदि से बड़ी घनिष्ठता हो गई। मोहिनी राव तो पहले से ही परिचित थीं। सोमजी की पत्नी सौ० रगीना से, जो एक बहुत ही सुसंस्कृत रूसी महिला हैं, मास्को पहुंचते ही परिचय हो गया था। भारतीय दूतावास में तत्कालीन भारतीय कौंसलर श्री रतनम् और उनकी पत्नी श्रीमती कमलाजी से भी बड़ी आत्मीयता हो गई। नतीजा यह कि मुझे एक क्षण को भी ऐसा नहीं लगा कि मैं अपने देश से हजारों मील दूर हूं।

भाई सोमसुन्दरम् ने बताया कि १५ अगस्त को भारतीय दूतावास में

स्वाधीनता-दिवस समारोह मनाया जायगा और उन्होंने आग्रह किया कि मैं उसमें जरूर चलूं। मेरे लिए तो यह बड़े आनन्द की बात ही हो सकती थी। किसी दूसरे देश में अपना राष्ट्रीय पर्व मनाने का यह मेरा पहला अवसर था।

उस दिन सवेरे ८ बजे के लगभग भारतीय दूतावास में हम पहुंच गये और ८॥ बजते-बजते बहुत-से भारतीय भाई और बहनें वहां इकट्ठे हो गये। लोकप्रिय कलाकार पृथ्वीराज कपूर तथा उनके सुपुत्र राजकपूर भी उपस्थित थे। कुल मिलाकर दो-ढाईसौ व्यक्ति रहे होंगे। दूतावास के भवन पर भारतीय राजदूत श्री के० पी० एस० मेनन ने राष्ट्रपताका फहराई और अपने संक्षिप्त भाषण में उस पर्व के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा, "आज हम सब यहां इकट्ठे हुए हैं और अपने ध्वज के नीचे खड़े हैं। यह सब हमारे देश के आजाद हो जाने के कारण ही संभव हुआ है। यदि भारत स्वतंत्र न हुआ होता तो पता नहीं कि मैं कहां होता और आप लोग कहां होते।" उन्होंने महान् स्वाधीनता-संघर्ष का उल्लेख किया और महात्मा गांधी तथा अन्य महापुरुषों के त्याग एवं तपस्या का बड़े हृदय-स्पर्शी ढंग से स्मरण किया। अन्त में राष्ट्रगान हुआ। तत्पश्चात् सब लोग दूतावास के प्रांगण से भीतर हॉल में चले गये, जहां शेष कार्य-क्रम पूरा होना था। बड़े उल्लास और उमंग का अवसर था वह। बम्बई के सुपरिचित गीतकार श्री प्रेम 'धवन' ने मधुर कण्ठ से गाया—

"झूम-झूमकर नाचो आज,
गाओ खुशी के गीत..."

तो सचमुच लोग झूम उठे। गीत बहुत ही भावपूर्ण था। उनके बाद ए० आई० सी० सी० के एक युवक प्रतिनिधि ने एक गीत सुनाया। पृथ्वीराज ने अपने एक नाटक का दृश्य उपस्थित किया। वह कुशल अभिनेता तो हैं ही। ऐसा समा बांधा कि लोग मंत्रमुग्ध-से उनके अभिनय को देखते रहे, उनके स्वर और भावनाओं के उतार-चढ़ाव से प्रभावित होते रहे। जब दृश्य समाप्त हुआ तो उनसे आग्रह किया गया कि एक और दृश्य का अभिनय करें। उन्होंने उस अनुरोध को स्वीकार कर एक दृश्य और दिखाया। बड़ी दिलचस्पी के साथ लोगों ने उसे देखा। दोनों दृश्य भारत की स्वतंत्रता से संबंधित थे। पिता के बाद पुत्र की बारी आई। चारों ओर से आवाज उठी—"'मेरा जूता है जापानी' सुनाओ।" मुस्कराते राजकपूर आये और बड़ी मस्ती से झूमते हुए उन्होंने फरमायशी गाना सुनाया। लोग हाथ से ताल देते रहे। बड़ा आनंद आया। बंधुवर 'गोपेश' ने दो कविताएं सुनाईं। दोनों ही रुचिकर लगीं।

सुविख्यात अभिनेता डेविड ने रवीन्द्र ठाकुर की सत्यकाम-जाबालि के प्रसंग पर आधारित अंग्रेजी कविता सुनाई। डेविड का अभिनय-कौशल मिल जाने से उसका आकर्षण कई गुना बढ़ गया। उर्दू-कवि अन्सारी की रचना ने भी अच्छी छाप डाली।

इस अवसर पर स्वल्प जलपान की व्यवस्था की गई थी। राजदूत श्री मेनन बराबर उपस्थित रहे। श्री रतनम् तथा उनकी पत्नी ने उत्सव को सरस और सफल बनाने का प्रयत्न किया।

एक बड़ा विचित्र अनुभव इस अवसर पर हुआ। मास्को के विदेशी प्रकाशन-गृह, मास्को रेडियो तथा अन्य संस्थाओं में बहुत-से भारतीय भाई-बहनें काम करते हैं। उनकी इच्छा थी कि वे एक ऐसी स्थायी संस्था का निर्माण करें, जिसके अन्तर्गत समय-समय पर सार्वजनिक रूप से सांस्कृतिक एवं साहित्यिक समारोह किये जा सकें। एक अस्थायी संस्था उन्होंने बना भी ली, जिसका नाम उन्होंने 'हिन्दुस्तानी समाज' रखा। उसके नियम-उपनियम बनाये गए और उसके उद्देश्यों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट कर दिया गया कि उसकी प्रवृत्तियां केवल सांस्कृतिक तथा साहित्यिक क्षेत्र तक सीमित रहेंगी। सरकारी मान्यता के संबंध में रूसी अधिकारियों से बातचीत हो गई और तय हुआ कि स्वाधीनता-दिवस के पर्व पर, १५ अगस्त को, रूसी सरकार के शिक्षा-मंत्री उसका विधिवत् उद्घाटन कर देंगे। निमंत्रण-पत्र छप गये, लोगों को सूचनाएं दे दी गईं। ऐन मौके पर रूसी सरकार की ओर से खबर मिली कि संस्था की स्थापना की अनुमति सरकारी तौर पर नहीं दी जा सकती। अधिकारियों का कहना था कि भारत की देखा-देखी अन्य देशों के लोग भी ऐसी संस्थाएं खोलना चाहेंगे। यह भी हो सकता है कि शुरू में संस्था का उद्देश्य सांस्कृतिक और साहित्यिक रहे, किन्तु सरकार से मान्यता मिल जाने पर यदि आगे चलकर अन्य प्रवृत्तियां भी चलाई गई तो उन्हें कैसे रोका जा सकेगा? शिक्षा-मंत्री ने इस आधार पर 'हिन्दुस्तानी समाज' का उद्घाटन करने से इन्कार कर दिया। भारतीय दूतावास के अधिकारियों ने रूसी अधिकारियों को समझाया कि जब इस बात की गारंटी दी जाती है कि इस संस्था की प्रवृत्तियां एक विशेष क्षेत्र तक ही सीमित रखी जायंगी तब उसमें आशंकित होने या डर की बात क्या हो सकती है, लेकिन उन लोगों ने एक न सुनी। गैर-सरकारी रूप में वैसे भारतीय विभिन्न अवसरों पर साहित्यिक समारोह कर सकते थे और करते भी रहते थे, लेकिन उनका विचार था कि संस्था की विधिवत् स्थापना हो जाने तथा उसे सरकारी मान्यता मिल

जाने से रूसी भाई-बहनें, विशेषकर रूसी अधिकारी लोग भी, उन समारोहों में खुल-कर भाग ले सकेंगे और इस प्रकार दो देशों के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आदान प्रदान की नींव और सुदृढ़ होगी, पर उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। यूरोप के अन्य देशों में घूमने के बाद अक्तूबर के दूसरे सप्ताह में जब मैं फिर मास्को लौटा तब एक मीटिंग में वह सवाल फिर आया और निश्चित हुआ कि एक बार फिर रूसी अधिकारियों से बात की जाय, पर बाद में मुझे मालूम हुआ कि वह प्रयत्न भी निष्फल सिद्ध हुआ।

इस घटना का मेरे मन पर बड़ा अजीब असर हुआ। मैंने देखा कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में रूसी सरकार और वहां के नागरिक बहुत ही आजाद हैं, उनमें किसी प्रकार का दबाव नहीं है, न डर, न आतंक। लेकिन जहां राजनैतिक क्षेत्र का प्रश्न उठता है, वे लोग बड़े ही चौकन्ने हो उठते हैं। इसका कारण शायद यह है कि दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंककर पीता है। द्वितीय महायुद्ध में रूस चारों ओर से शत्रुओं से घिर गया और उसे जो कड़ुवी घूंटें पीनी पड़ीं, वे किसीसे छिपी नहीं हैं और आजभी वे अपनेको निरापद अनुभव नहीं करते। इसलिए वे बहुत ही सावधान और चौकन्ने रहते हैं। अबतक उन्होंने अपने देश के दरवाजे बाहरी लोगों के लिए एकदम बंद कर रखे थे। ये वर्ष उन्होंने अपने देश के आर्थिक नव-निर्माण में लगाये और आश्चर्यजनक फल-प्राप्ति की। बाद में उन्होंने अनुभव किया कि शेष दुनिया से अपनेको अलग रखने की नीति संकीर्ण और विघातक नीति है। यदि उन्हें अपने आदर्शों का प्रचार और प्रसार करना है तो द्वार बंद रखकर उसकी सिद्धि असंभव है। फलतः उन्होंने अपना दरवाजा खोला, पर बहुत ही डरते-डरते। इसमें कोई संदेह नहीं कि नेहरूजी के मास्को-प्रवास ने और ख्रुश्चेव तथा बुलगानिन के भारत-प्रवास ने पारस्परिक आदान-प्रदान के मार्ग को बहुत हद तक प्रशस्त कर दिया, फिर भी मानना होगा कि वहां के लोगों के दिलों से भय दूर नहीं हुआ है। आणविक शस्त्रास्त्रों की असाधारण प्रगति एवं स्पूतनिक के चमत्कार के बावजूद वे बड़ी हैरानी अनुभव कर रहे हैं। वे विदेशियों को आने तो देते हैं, लेकिन उनपर और उनकी प्रवृत्तियों पर कड़ी निगरानी रखते हैं।

अब वहां भारतीय-रूसी मैत्री संघ की स्थापना हो गई है और उसे सरकारी मान्यता मिल गई है, लेकिन 'हिन्दुस्तानी समाज' स्थापित नहीं हो सका।

: ६ :

मास्को नगरी

युवक-समारोह के लिए मास्को नगरी का चुनाव निस्संदेह बड़ी दूरदर्शिता एवं विवेक का परिचायक था। मास्को संसार के एक महान शक्तिशाली राष्ट्र की राजधानी होने के अतिरिक्त आकर्षण का केन्द्र इसलिए भी है कि विगत बीस-पच्चीस वर्ष में उसने विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति की है। चूंकि अबतक वह देश लौहावरण से घिरा हुआ था और हर किसीके लिए वहां जाना संभव नहीं था, इसलिए लोगों में बड़ी उत्सुकता थी कि उस 'रहस्यमय' देश में जायं और देखें कि क्या सचमुच वहां इतनी उन्नति हुई है, जितनी कि बताई जाती है, अथवा यह एक दल-विशेष का प्रचार-मात्र है। इस समारोह ने सहस्रों व्यक्तियों को न केवल वहां आने का अवसर दिया, अपितु वहां की बहुमुखी प्रगति को स्वयं अपनी आंखों से देखने की सुविधा भी प्रदान की।

पाठकों को संभवतः ज्ञात होगा कि पहले रूस की राजधानी पेट्रोग्राड थी, जिसे अब लेनिनग्राड कहते हैं। बड़ा पुराना नगर है वह, और ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण भी। लेकिन शासन के विचार से वह केन्द्रीय स्थल नहीं था। अतः जब राज्य की बागडोर लेनिन के हाथ में आई तो सरकार को वहां से उठाकर मार्च सन् १९१८ में मास्को ले आया गया। उसके कोई चार साल बाद जब ३० दिसम्बर १९२२ को सोवियत संघ (यूनियन ऑव सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक्स) की स्थापना हुई तो मास्को को अधिकृत रूप से उसकी राजधानी घोषित किया गया। आज मास्को की गणना सोवियत संघ के ही नहीं, संसार के बृहत्तम नगरों में की जाती जाती है। राज्य का केन्द्रीय स्थल तो वह है ही। उसका क्षेत्र-फल ३३० वर्ग किलोमीटर अर्थात् १२७.४ वर्गमील तथा आबादी सन् १९५६ की जनगणना के अनुसार लगभग ५० लाख है। इसमें उप-बस्तियों की जनसंख्या शामिल नहीं है।

जर्मनी के रूस पर आक्रमण के समय मास्को ने बड़ी बहादुरी दिखाई। यों तो नाजियों को रूस की भूमि पर से बाहर खदेड़ने में सारे राष्ट्र ने अपने प्रयत्न में कोई कसर न उठा रक्खी, लेकिन सबसे अधिक भार पड़ा मास्को पर, जो कि राजधानी होने के कारण नाजियों के कठोरतम आक्रमण का लक्ष्य-बिन्दु थी। दिसम्बर १९४१ में पराभूत होकर जब नाजी फौजें लौट गई तब कहीं मास्को के निवासियों ने चैन की सांस ली। मास्को की लड़ाई शत्रु से राष्ट्र को बचाने की दृष्टि से एक युग-परिवर्तनकारी घटना थी।

नाजियों के आक्रमण से देश की जो क्षति हुई, वह अपरिमित थी। नगर-के-नगर भूमिसात हो गये और अनुमान लगाया जाता है कि लगभग सवा दो करोड़ व्यक्ति लड़ाई में मारे गये। इसका कारण यह था कि युद्ध के लिए रूस की तैयारी न थी और उसकी आंख खुली तबतक शत्रु उसके द्वार पर पहुंच चुका था।

युद्ध की समाप्ति पर रूस के कर्णधारों का ध्यान राष्ट्र की क्षतिपूर्ति तथा नव-निर्माण की ओर गया। सारे शहर को पानी पहुंचाने, बढ़ती आबादी के वास्ते घर बनवाने तथा यातायात की समुचित व्यवस्था करने आदि के लिए अनेक योजनाएं पहले से ही चल रही थीं, लेकिन युद्ध के दिनों में उनकी गति शिथिल हो गई थी। लड़ाई से छुटकारा मिलते ही सारा देश पुनः नव-निर्माण के काम में लग गया। आज रूस के किसी भी नगर में चले जाइये, आपको पता भी नहीं चलेगा कि यह वही नगर है, जो कभी ध्वस्त हो गया था। स्टालिनग्राड, लेनिनग्राड, मास्को, आदि सब अपने पुराने वैभव को प्राप्त हो गये हैं। इतना ही नहीं, उनका विकास बड़ी तेजी से हो रहा है।

लोगों का बौद्धिक स्तर ऊंचा हो, साहित्य को प्रोत्साहन मिले तथा कला का संवर्द्धन हो, इसलिए वहां अच्छे-से-अच्छे पुस्तकालय, प्रकाशन-गृह, संग्रहालय आदि हैं। वहां के लेनिन-पुस्तकालय की गणना तो संसार के सबसे बड़े पुस्तकालयों में की जाती है।

अपनी पुस्तकें विदेशी भाषाओं में तथा विदेशी भाषाओं की पुस्तकें अपनी भाषा में प्रकाशित करने के लिए वहां जो काम हो रहा है, वह उल्लेखयोग्य है। रूसी तथा रूस की अन्य प्रमुख भाषाओं की सैकड़ों पुस्तकें विदेशी भाषाओं में छपी हैं और विदेशी भाषाओं की रूसी भाषा में। यह काम आज भी बड़ी लगन और तेजी से हो रहा है।

अपने नेताओं, साहित्यकारों, कलाकारों तथा अन्य विभूतियों का आदर करना रूसी खूब जानते हैं। उनकी स्मृति-रक्षा के लिए वे दिवंगतों की एक-एक चीज सुरक्षित रखते हैं। आज मास्को में १५० संग्रहालय (म्यूजियम) हैं। वहां की त्रेत्याकोव आर्ट गेलरी (कला-भवन) तो संसार-भर में प्रसिद्ध है।

मनोरंजन के लिए अकेले मास्को में ३४ थियेटर, २०० के लगभग क्लब, थियेटर-भवन तथा ५६ स्थायी सिनेमाघर हैं। पार्कों तथा उद्यानों की वहां भरमार है। छोटे-बड़े बीसियों पार्क ६ हजार हेक्टर भूमि में फैले हुए हैं। ५६ स्टेडियम हैं।

यातायात के साधन बहुत ही सुविधाजनक हैं। सारे शहर में रेलों और सड़कों का जाल बिछा है। ट्रामें, बसें, ट्राली बसें और टैक्सियां रात के दो-तीन घंटों को छोड़कर बराबर चलती रहती हैं। जमीन के भीतर सुरंग में चलनेवाली रेलों का तो, जिन्हें मीत्रो कहते हैं, कहना ही क्या!

सार्वजनिक यातायात की समुचित व्यवस्था तथा सुविधा होने के कारण वहां लोगों को स्वयं अपनी मोटर रखने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। वैसे वहां का आर्थिक संगठन भी कुछ इस ढंग का है कि वैयक्तिक रूप में मोटर का रखना असंभव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है, पर आम तौर पर ट्राम, बसों, मीत्रो आदि की सुविधाजनक व्यवस्था होने के कारण अपनी कार का न होना लोगों को अखरता नहीं है।

मास्को विशाल नगरी है और वास्तव में वह बड़ी सुन्दर है। मस्क्वा (मास्को) नदी लहराती हुई नगर में होकर बहती है और सारे शहर को अपूर्व शोभा प्रदान करती है। बहुत-से बड़े-बड़े भवन और मकान उसीके तट पर बने हुए हैं। यह नदी ३१२ मील लम्बी है और कोलोमना नगर के निकट ओका नदी में जाकर गिरती है। मास्को के भीतर उसकी लम्बाई २८ मील है। कहीं-कहीं तो वह ऐसा बल खाती है कि देखकर हृदय मुग्ध हो उठता है। असीम प्राकृतिक सौंदर्य-प्रदायिनी होने के साथ-साथ उसकी उपयोगिता भी कम नहीं है। नौकाओं तथा अग्निबोटों के द्वारा उसमें अच्छा यातायात होता है।

किसी भी देश की प्राथमिक आवश्यकता होती है खाना। रूस के शासकों ने सर्वप्रथम अपने प्रयत्न उसी क्षेत्र में केन्द्रित किये। पाठकों को पता होगा कि नाजियों के आक्रमण के समय चारों ओर से शत्रुओं का घेरा पड़ जाने के कारण लाखों रूसी भूख से तड़प-तड़पकर मर गये थे, रूस का सारा आर्थिक संगठन एकदम छिन्न-भिन्न

हो गया था। आज हर आदमी को भरपेट भोजन और काम मिलता है। चीजों के दाम वहां बहुत बढ़े-चढ़े हैं, विशेषकर आराम और शृंगार की चीजों के, लेकिन रोटी, जिसका संबंध छोटे-बड़े सबसे आता है, वहां काफी सस्ती है।

खाने के बाद दूसरा नम्बर आता है कपड़े का। कपड़ा वहां बढ़िया किस्म का नहीं मिलता, फिर भी नगर की लगभग पचास लाख की आबादी में वस्त्रहीन शायद ही कोई व्यक्ति मिले।

यही बात घरों के बारे में है। नगरवासियों के रहने के लिए रात-दिन एक करके घर बनाये जा रहे हैं। बहुत-से घर बन चुके हैं। घरों के समूह को वहां 'दोम' कहते हैं और घर को 'क्वार्टर'। कई-कई मंजिल के एक-एक दोम में सैकड़ों 'क्वार्टर' होते हैं और आधुनिक सुविधाओं से परिपूर्ण, यानी हर क्वार्टर में बिजली, ठण्डे-गरम पानी के नल, खाना पकाने के लिए गैस और ऊपर की मंजिलों में आने-जाने के लिए लिफ्ट। घरों को गर्म रखने की भी व्यवस्था है। कहने का तात्पर्य यह कि प्रत्येक नागरिक का वहां मूल्य है और उसकी कार्यक्षमता बनी रहे और बढ़ती रहे, इसके लिए शासन पूरी तरह से सचेष्ट है।

भोजन, वस्त्र तथा मकान के बाद आती है शिक्षा और चिकित्सा। इन दोनों क्षेत्रों में भी रूस काफी आगे बढ़ा है। शिक्षा वहां अनिवार्य है और चिकित्सा की सुविधा सबके लिए समान रूप से उपलब्ध है।

जलवायु वहां का अच्छी है। गर्मी अधिक नहीं पड़ती। बारहों महीने वहां के नागरिक गर्म कपड़े पहनते हैं। नवम्बर से लेकर मार्च तक के महीने वहां के लिए बड़े कठिन होते हैं। उन दिनों कड़ाके की सर्दी पड़ती है। जनवरी में तापमान शून्य से भी नीचे चला जाता है, सड़कों पर बर्फ बिछ जाती है, मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। जल-वायु की अनुकूलता तथा पौष्टिक भोजन मिलने के कारण वहां के लोग बड़े स्वस्थ हैं। कुल मिलाकर संतुष्ट भी दिखाई देते हैं।

सच यह है कि उस देश में जो भौतिक प्रगति हुई है, उसका श्रेय वहां के कोटि-कोटि निवासियों की अपने राष्ट्र के प्रति उत्कट भावना, कार्य-क्षमता तथा परिश्रम-शीलता को है। सबसे बड़ी बात यह है कि हर रूसी भाई-बहन को अपने राष्ट्र पर बड़ा गर्व है। वस्तुतः किसी भी राष्ट्र को सरकार के गिने-चुने लोग नहीं बनाते, पैसा भी नहीं बनाता। उसे बनाते हैं उसके निवासी, उनका त्याग और उनका बलिदान।

: ७ :

मास्को के आकर्षण-केन्द्र

रूस में मैं सरकार का मेहमान नहीं था, इससे जहां एक ओर कुछ असुविधा हुई, वहां दूसरी ओर एक बड़ा लाभ भी हुआ। लाभ यह कि मैं जहां कहीं जाना चाहता था, जा सकता था और जिस किसीसे मिलना चाहता था, मिल सकता था। नतीजा यह हुआ कि मुझे मास्को तथा उसके निवासियों को अच्छी तरह से देखने का अवसर मिला।

क्रेमलिन

दर्शनीय स्थानों में सबसे पहला नम्बर क्रेमलिन का आता है। जिस प्रकार दिल्ली में हमारा संसद-भवन है, उसी प्रकार वहां क्रेमलिन है। अन्तर केवल इतना है कि *क्रेमलिन वहां की राजसत्ता का केन्द्र होने के साथ-साथ एक मूल्यवान संग्रहालय भी* है। क्रेमलिन के इतिहास से पता चलता है कि सन् ११४७ में इसी स्थान पर मास्को नगरी की स्थापना हुई थी। सैनिक विशेषताओं के कारण इस जगह का चुनाव किया गया था। धीरे-धीरे उसका विकास होता गया। चूंकि पड़ोस के मंगोल-तातारों के उन दिनों भारी उपद्रव होते थे, इसलिए रूस के शासक प्रथम इवान ने सुरक्षा की दृष्टि से चारों ओर से इसकी मजबूती कराई। लेकिन इसे विशाल आकार और रूप मिला दमित्री इवानोविच के शासनकाल में। पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत में उसके चारों ओर पत्थर की प्राचीर का निर्माण किया गया।

क्रेमलिन भवन की ऊंचाई लगभग २० मीटर है, लंबाई १३ मीटर और क्षेत्र-फल १३८ मीटर। उसकी मीनारें और गुम्बज, उसके शिखरों का स्वर्ण-वर्ण तथा मास्को नदी के तट पर उसकी अवस्थिति, कुल मिलाकर बड़ा ही आकर्षक दृश्य उप-स्थित करते हैं। क्रेमलिन में २० मीनारें हैं, जिनमें सबसे विशाल है स्पासकाया मीनार। इसका निर्माण सन् १४९१ में हुआ था। उसकी ऊंचाई लगभग २२१ फुट है। सन् १९५१ में उसमें एक घड़ी लगाई गई, जिसके घंटे आज भी आधी रात के

समय मास्को रेडियो से सुने जाते हैं।

क्रेमलिन के महल बोल्शाई क्रेमल्योव्स्की का निर्माण १९वीं शताब्दी में हुआ। वह मस्क्वा (मास्को) नदी के सामने है। उसमें कई विशाल कक्ष हैं, जिसमें से एक में सोवियत संघ की कम्यूनिस्ट पार्टी अपनी कांग्रेसों के अधिवेशन किया करती है।

क्रेमलिन का सबसे महत्वपूर्ण विभाग वह है, जिसमें जार के समय की दुर्लभ तथा मूल्यवान वस्तुएं संग्रहीत की गई हैं। यह भवन दुमंजिला है और उसके अनेक कक्षों में अस्त्रों से लेकर सोने-चांदी एवं हाथीदांत की नाना प्रकार की चीजें सुरक्षित हैं। ऐतिहासिक वस्तुओं में जार का मुकुट, राजसिंहासन, ब्रिटेन की रानी एलिजाबेथ द्वारा जार बोरिस गोदूनोव को भेंट में दी गई गाड़ी आदि हैं। इतना विशाल और कीमती संग्रह अन्य देशों में कम ही देखने में आता है। इंगलैंड, पोलैंड, डेनमार्क, हालैंड, स्वीडन, आस्ट्रिया, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों से जारों को जो उपहार मिले थे, वे सब इसी संग्रहालय में हैं। आभूषणों तथा अन्य वस्तुओं के रूप में मनों सोना-चांदी होगा, हीरे-जवाहिरात का तो कहना ही क्या!

संग्रहालय के बाहर जार का विशाल घंटा है, जिसका निर्माण सन् १७३५ में हुआ था। उसका वजन २०० टन है, ऊंचाई पौने छः मीटर से कुछ अधिक और व्यास ६ मीटर के लगभग। इस घंटे से जरा आगे जार की तोपें रक्खी हैं।

क्रेमलिन के प्रांगण में तीन गिरजाघर हैं। पूर्व की ओर के ब्लेगोवेशैन्स्की गिरजाघर का, जो कि स्थापत्य-कला का एक सुन्दर नमूना है, निर्माण पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ था। बाद में आग लग जाने से उसकी बड़ी क्षति हुई, लेकिन सन् १५६४ में वह पुनः अपने पूर्ण वैभव को प्राप्त हो गया।

दूसरा गिरजा है आरकेंजिल्स्की, जो पन्द्रहवीं शती के प्रारम्भ में बना और जिसमें ड्यूकों और जारों की समाधियां हैं।

तीसरा गिरजा उस्पन्स्की क्रेमलिन के प्रांगण के मध्य में है। इसका निर्माण इटली के एक महान शिल्पी के द्वारा हुआ था। तीनों गिरजों में यह सबसे मुख्य है। इसकी ऊंचाई ३८ मीटर है, क्षेत्रफल ८४२ वर्ग मीटर। इस गिरजे में जारों का राजतिलक होता था। आज उसमें कई राजनेताओं की समाधियां हैं।

ये तीनों ही गिरजे अब संग्रहालय के रूप में परिणत हो गए हैं। उनकी कला, चित्रकारी तथा उनमें संग्रहीत वस्तुएं देखकर पता चलता है कि रूस के निवासी कितने कला-प्रेमी हैं।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में दो और भवन क्रेमलिन में जोड़ दिये गए। उनमें एक है शस्त्रागार, जिसकी दीवारों के सहारे-सहारे नेपोलियन की सेनाओं से छीनी गई तोपों की कतार लगी है। दूसरे भवन में किसी जमाने में रूसी सरकार का केन्द्र था। इसीमें लेनिन का अध्ययन-कक्ष है और इसीमें वह रहते थे। उनका अध्ययन-कक्ष आज भी ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रक्खा गया है। शेष को संग्रहालय में परिवर्तित कर दिया गया है। इसी भवन के ऊपर आज सोवियत संघ की राष्ट्र-पताका फहराती हुई दिखाई देती है।

क्रेमलिन रूसी इतिहास तथा संस्कृति की एक बहुमूल्य निधि है। रूस में जितनी राजनैतिक उथल-पुथल हुई हैं और होती हैं, उनका वह मौन साक्षी है। उसका अपना अस्तित्व है। जाने कितने सत्ताधारी मंच पर अपना-अपना पार्ट अदा करके चले गये, पर क्रेमलिन आज भी उसी शान से खड़ा है।

क्रेमलिन के संग्रहालय में प्रवेश टिकट द्वारा होता है। पास भी मिल जाते हैं। दिन में जबतक संग्रहालय खुला रहता है, दर्शकों की भीड़ लगी रहती है। लोग टोलियों में भीतर जाते हैं और टोलियों में ही गाइड उन्हें सारी चीजें दिखाते हैं।

मुझे जिस टोली में सम्मिलित किया गया, उसमें सब रूसी जाननेवाले व्यक्ति थे। गाइड रूसी में समझाने लगा। मैं रूसी नहीं जानता था। अतः मैंने गाइड का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। कोई पन्द्रह-बीस मिनट में एक रूसी बहन आ गईं, जो अंग्रेजी जानती थीं। उन्होंने बड़ी अच्छी तरह से मुझे सारा संग्रहालय दिखाया। यदि पहले से सूचना दे दी जाय तो रूसी तथा अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाओं के गाइड भी मिल जाते हैं।

रेड स्क्वायर

क्रेमलिन से सटा हुआ रेड स्क्वायर (लाल चौक) मास्को के सर्वोत्तम मैदानों में से है। उसकी विशालता का तो महत्व है ही, लेकिन उसे इतनी ख्याति उसकी ऐतिहासिक घटनाओं के कारण मिली है। सत्ता को अपने हाथ में लेने के लिए सर्वहारा वर्ग का अन्तिम युद्ध सन् १९१७ में इसी चौक में हुआ था। उस युद्ध में जिन्होंने वीरगति पाई, उन शहीदों की समाधियां क्रेमलिन-प्राचीर के सहारे इसी चौक में बनी हुई हैं। रूस के अनेक राजनेताओं तथा महापुरुषों की स्मृति भी उन्हीं समाधियों के बीच सुरक्षित है।

सुबह-शाम और छुट्टी के दिन सैलानियों की भीड़-की-भीड़ इस चौक में इकट्ठी

हो जाती है। निहायत साफ-सुथरा और खुला स्थान है। पास में ही कलकल-निनाद करती मास्को नदी बहती है।

१ मई और ७ नवंबर की ऐतिहासिक तिथियों के दिन इस चौक में जब फौजी परेड होती है तो लाखों व्यक्ति इकट्ठे हो जाते हैं।

इस लाल चौक के साथ मास्को के विकास की कहानी जुड़ी हुई है। किसी जमाने में यह व्यापार की विशाल मंडी थी। नगर की प्रमुख सड़कें वहीं से निकलती थीं। सोलहवीं शताब्दी में यह चौक क्रेमलिन की दीवार के सहारे एक गहरी खाई द्वारा पृथक कर दिया गया।

नगर में जो भी राजनैतिक घटनाएं होती थीं, उनका सम्बन्ध क्रेमलिन से आता था और पार्श्व में होने के कारण इस चौक पर भी उनका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता था। इसके अतिरिक्त जब कभी शत्रुओं का आक्रमण होता था, लोग क्रेमलिन की मजबूत दीवारों की आड़ लेकर इसी चौक में अपनी रक्षा करते थे।

इस चौक में अनेक व्यक्तियों को फांसी के तख्ते पर लटकाया गया। सन् १६७१ में किसान-विद्रोह के नेता स्टीपान रेजिन को यहीं सूली पर चढ़ाया गया। और भी कई व्यक्तियों के साथ ऐसा हुआ।

सन् १७१३-१४ में जब राजधानी पीटर्सबर्ग चली गई तो इस चौक का भी भाग्य बदल गया। इसका महत्व घट गया। सन् १९१७ में एक बार फिर इस चौक में राजनैतिक तूफ़ान आया। सर्वहारा-दल ने क्रेमलिन को अपने हाथ में लेने के लिए जोरों का युद्ध किया और वह विजयी हुआ।

सन्त बसील का गिरजाघर

चौक में खड़े होकर जब दक्षिण की ओर निगाह जाती है तो सामने रूसी कला का बड़ा ही सुन्दर प्रतीक संत बसील का गिरजा दिखाई देता है। उसकी गुम्बदें आकृति में एक-दूसरे से भिन्न हैं और कुल मिलाकर गिरजे की शोभा को कई गुना बढ़ा देती हैं। कजान की विजय के उपलक्ष में इस गिरजा का निर्माण सन् १५५०-५५ में हुआ था। चारसौ बरस बाद जांच करने पर पता चला कि उसकी मजबूती जैसी-की-तैसी बनी है। सन १९५४ में उसकी मरम्मत कराई गई। उसके मूल रंग ज्यों-के-त्यों करा दिये गए। आज उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो यह इमारत हाल ही में बनी हो।

अब इस गिरजे को संग्रहालय बना दिया गया है। उसमें प्राचीन अस्त्र-शस्त्र

तथा कला की अनेक वस्तुएं संचित हैं। ऊपर की मंजिलों में ईसा से संबंधित बहुत-से सुंदर चित्र हैं। यह गिरजा इतिहास-संग्रहालय से संबद्ध है।

गूम

चोक के पूर्व में दो विशाल इमारतें हैं। एक में सरकारी दफ्तर है, दूसरी में रूस का सबसे बड़ा वस्तु-भंडार गूम (Gum) है। गूम तीन शब्दों के प्रारम्भिक अक्षरों के योग से बना है—'जी'=गवर्नमेंट, यू=यूनीवर्सल, एम=मैगजीन, अर्थात सब प्रकार की चीजों की सरकारी दूकान। यह दुकान क्या, अच्छा-खासा बाजार है। हमें अपनी जरूरत की चीजें खरीदने के लिए प्रायः लम्बा-चौड़ा बाजार छानना पड़ता है। यहां सारी चीजें एक ही इमारत में मिल जाती हैं। यह वस्तु-भंडार कई मंजिल का है। अलग-अलग विभागों में बंटे होने के कारण लोगों को सामान खरीदने में असुविधा नहीं होती। वे जानते हैं कि अमुक चीज अमुक विभाग में मिलेगी। लगभग चार हजार व्यक्ति उसमें काम करते हैं।

इतिहास-संग्रहालय

चौक के उत्तर में एक बड़े महत्व का संग्रहालय है। उसे हिस्ट्री म्यूजियम (इतिहास-संग्रहालय) कहते हैं। उसमें मूल्यवान पुस्तकों तथा पांडुलिपियों का विशाल संग्रह है। अनुसंधान की दृष्टि से इस तथा ऐसे संग्रहालयों का निस्संदेह बड़ा मूल्य है।

बोल्शाई थियेटर

नगर के मध्य में स्थित बोल्शाई थियेटर का भवन दर्शकों का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेता है। उसके आगे फव्वारे के निकट हर घड़ी आने-जानेवाले व्यक्तियों की भीड़ लगी रहती है। थियेटर-भवन के शीर्ष-भाग पर अश्वों की विशाल मूर्तियां बड़ी सुन्दर लगती हैं। इस भवन का निर्माण सन् १८२४ में हुआ था। १८५३ में आग लग जाने से वह नष्ट हो गया। १८५६ में उसका पुनः निर्माण हुआ। सुविख्यात कलाकारों तथा अभिनेताओं के बेले, ऑपेरा आदि इस थियेटर में होते रहते हैं। हॉल काफी बड़ा है। दर्शकों के बैठने के लिए हॉल में तो व्यवस्था है ही, साथ ही कई मंजिलों में गोलाकार गैलरियां भी बनी हुई हैं। लगभग दो हजार व्यक्तियों के बैठने का स्थान है। इस थियेटर का मंच बहुत ही विशाल है। उसकी लम्बाई २६ मीटर तथा गहराई २३॥ मीटर है। सैकड़ों अभिनेता मजे में उसपर एक साथ अभिनय कर सकते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से रूसी ऑपेरा और बेले के विकास में इस बोल्शाई थियेटर का विशेष हाथ रहा है। अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ संगीतज्ञ तथा नृत्य-विशारदों के सहयोग से इस संस्था ने रूसी बेले की ख्याति संसार के कोने-कोने तक पहुंचा दी है। आज उसके पास सैकड़ों कलाकार हैं। उसके आर्केस्ट्रा में २५० संगीतज्ञ काम करते हैं।

वैसे रूसी मंच आज भी बहुत ही विकसित अवस्था में है, फिर भी विशेषज्ञ लोग बराबर चिन्तन और प्रयास करते रहते हैं कि मंच की साज-सज्जा किस प्रकार और अधिक प्रभावशाली हो, किस प्रकार बिजली की रोशनी के परिवर्तन से दृश्यों को अधिक आकर्षक बनाया जा सके और किस प्रकार अभिनेताओं की पोशाकों को सीधा-सादा रखकर दर्शकों का मुख्य ध्यान खेल की कथावस्तु पर केन्द्रित किया जा सके। सोवियत संगीत तथा मंच के अभ्युदय के लिए की गई सेवाओं के उपलक्ष में सन् १९३७ में इस संस्था को 'आर्डर ऑव लेनिन' के सम्मान से विभूषित किया गया था।

इस थियेटर का अपना संग्रहालय है, जिसकी स्थापना सन् १९२१ में हुई थी। थियेटर के इतिहास तथा विकास के बारे में सामग्री एकत्र करके उसके अध्ययन एवं अनुसंधान की सुविधा इस संग्रहालय द्वारा की जाती है। इस संस्था से 'सोवियत्स्की आर्टिस्ट' नामक समाचार-पत्र भी प्रकाशित होता है।

मेली थियेटर

बोल्शाई थियेटर के दाहिनी ओर मेली थियेटर है, जिसने अभिनय-कला को विकसित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। बाईं ओर सेंट्रल चिल्ड्रन्स थियेटर है, जो बच्चों में बहुत ही लोकप्रिय है।

मास्को विश्वविद्यालय

मास्को विश्वविद्यालय मास्को के सबसे ऊंचे तथा शानदार भवनों में से है। लेनिन हिल पर उसका निर्माण १ सितम्बर १९५३ में हुआ था। नगर के कोलाहल से परे यह विश्वविद्यालय बड़े ही स्वास्थ्यकर स्थान तथा वायुमंडल में स्थित है। उसके सामने छोटे-छोटे जलाशय हैं। अनेक प्रपात तथा कृत्रिम कमल-पुष्प उन्हें स्थायी शोभा प्रदान करते हैं। हरियाली खूब है। विश्वविद्यालय का भवन ३२ मंज़िल का है। उसकी ऊंचाई २४० मीटर है। ऊपर जाने के लिए लिफ्ट लगी है। शिक्षा के साथ-साथ छात्रों के निवास, व्यायाम, सांस्कृतिक मनोरंजन, संग्र-

हालय, आदि की व्यवस्था भी उसी इमारत के भीतर है। मास्को नदी के किनारे पर होने के कारण उसकी विशालता और भी शोभायुक्त हो उठती है। वैसे रूस में ३६ विश्वविद्यालय और ७५० इंस्टीट्यूट (जिनका दर्जा विश्वविद्यालय के बराबर ही होता है) हैं, लेकिन संसार के विश्व-विद्यालयों में प्रमुख स्थान इस विश्व-विद्यालय को ही प्राप्त है। उसमें १३ फैकल्टियां हैं। २३ हजार छात्र-छात्राएं हैं। उसके पुस्तकालय में १० लाख से अधिक पुस्तकें हैं और ३३ वाचनालय। भारतीय भाषाओं का भी एक विभाग है।

लाबियों में अनेक वैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा साहित्यकारों के चित्र लगे हैं। छात्रों के अपने थियेटर हैं, जो 'संस्कृति के गृह' (हाउस ऑव कल्चर) कहलाते हैं। विद्यार्थियों के लिए होस्टल हैं, जिनमें लगभग दस हजार छात्र-छात्राएं रहते हैं। विश्वविद्यालय की सबसे ऊपरी मंजिल में संग्रहालय है। मैं अट्ठाईसवीं मंजिल तक गया। वहां से मास्को नगरी का दृश्य बड़ा अच्छा लगता है।

इस विश्वविद्यालय के भवन और उसके चारों ओर के वायुमंडल को देखकर पता चलता है कि उसकी कल्पना किसी दूरदर्शी व्यक्ति ने की थी और वह शिक्षा के वास्तविक महत्व को जानता था। शिक्षा का संबंध हमारी उस पीढ़ी के साथ आता है, जो आगे चलकर राष्ट्र के भार को अपने कन्धों पर उठाती है। इसलिए आवश्यक है कि शिक्षा की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया जाय। इतना ही नहीं, उसकी व्यवस्था ऐसे स्थान पर और ऐसे वातावरण में हो, जिसका नई पीढ़ी के जीवन पर स्वस्थ प्रभाव पड़े। मास्को विश्वविद्यालय में इन विशेषताओं का पूरा ध्यान रखा गया है।

विश्वविद्यालय का नामकरण रूस के महान वैज्ञानिक ए० वी० लोमोनोसोव के नाम पर किया गया है। उसमें ५७ राष्ट्रों के छात्र-छात्राएं पढ़ते हैं।

मॉस-फिल्म-स्टूडियो

यहीं लेनिन हिल पर सोवियत संघ की फिल्म-निर्मात्री संस्था 'मॉस-फिल्म' है। जिन दिनों मैं वहां था, 'परदेशी' चित्र का निर्माण हो रहा था। पाठक जानते हैं कि इस फिल्म के हिन्दी और रूसी संस्करण साथ-साथ तैयार हुए और दोनों में भारतीय तथा रूसी अभिनेताओं ने कार्य किया।

लेनिन स्टेडियम

लेनिनहिल के सामने लेनिन सेंट्रल स्टेडियम मास्को के सबसे बड़े स्टेडियमों

में से है। उसका निर्माण १९५६ में हुआ था। उसमें लगभग सवा लाख व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त निर्णायकों के बैठने, खिलाड़ियों के पोशाक बदलने तथा आकस्मिक चिकित्सा आदि के लिए कमरे हैं। दो रेस्त्रां, स्पोर्ट-म्यूजियम, रेडियो और टेलीविजन-स्टूडियो हैं। खेल-कूद के साथ-साथ जाड़े के दिनों में वर्फ पर स्केटिंग करने, हॉकी खेलने आदि की भी व्यवस्था है।

पार्क कुल्तूरे

मास्को के पार्कों में पार्क कुल्तूरे (गोर्की पार्क) बड़ा आकर्षक है। रूस के महान साहित्यकार मैक्सिम गोर्की की स्मृति में, उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप ही, उसे बनाया गया है। उसे 'पार्क कुल्तूरे' अर्थात् 'सांस्कृतिक उद्यान' कहा जाता है। उसमें अनेक इमारतें बनी हुई हैं, जिनमें प्रदर्शिनियां होती रहती हैं। वहां स्थायी रंचमंच है, जिनपर आएदिन खेल होते रहते हैं। शाम को वहां खूब भीड़ हो जाती है। विशेष अवसरों पर इस पार्क की शोभा देखते ही बनती है। भांति-भांति के फूल नगर के दूर-पास के स्थानों से अगणित नर-नारियों तथा बच्चों को खींच-कर अपने पास बुला लेते हैं।

पार्क में प्रवेश टिकट द्वारा होता है। एक बार अन्दर आने पर बाहर निकलने को मन नहीं होता। वहां देखने और सीखने को बहुत-कुछ है। जिन दिनों मैं उस नगर में था, वहां एक विशाल कला-प्रदर्शिनी हो रही थी। दुनिया-भर के चित्र उसमें प्रदर्शित किये गये थे।

लेनिन लाइब्रेरी

मास्को के केन्द्रीय भाग में लेनिन लाइब्रेरी है, जिसकी स्थापना सन् १८६२ में हुई थी। विश्व की १६० भाषाओं की लगभग २ करोड़ पुस्तकें उसमें हैं। करीब १ लाख तो पुस्तकों के सूचीपत्र हैं। कई मंजिल की इमारत है। एक विभाग में रूसी भाषा के दुर्लभ ग्रंथों तथा पांडुलिपियों का संग्रह है। उसे देखने पर पता चलता है कि सबसे पहली रूसी भाषा की पुस्तक सन् १५६४ में छपी थी। अनेक विख्यात लेखकों की पुस्तकों के प्रथम संस्करण इस पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। पुस्तकें पढ़ने के लिए १८ हॉल हैं, जिनमें आरामदेह सीटों के अतिरिक्त प्रकाश आदि की भी समु-चित व्यवस्था है। एक साथ २५०० पाठक बैठकर पढ़ सकते हैं। हिंदी का संग्रह अद्य-तन (अपटूडेट) नहीं था, पर अधिकारी लोगों ने बताया कि वे उसके लिए प्रयत्नशील हैं। विभिन्न देशों से अनेक मासिक पत्र भी वहां आते हैं।

: ८ :

लेनिन के प्रमुख स्मारक

जिस प्रकार हमारे देश में गांधीजी का अथवा नेहरूजी का नाम आदर-भाव तथा आत्मीयता से लिया जाता है, उसी प्रकार बल्कि उससे भी अधिक श्रद्धा-भक्ति एवं गौरव से रूस के निवासी लेनिन का नाम लेते हैं। सारे देश में स्थान-स्थान पर लेनिन की मूर्तियां और चित्र लगे हैं और उनके नाम पर बहुत-सी संस्थाओं, संग्रहालयों, सामूहिक फार्मों, सड़कों आदि के नाम रखे गए हैं। रूस के बच्चे-बच्चे की जबान पर लेनिन का नाम है। वस्तुतः आधुनिक रूस (सोवियत संघ) के निर्माण और अभ्युत्थान में लेनिन की दूरदर्शिता, त्याग, निर्भीकता, परिश्रमशीलता का बहुत बड़ा हाथ है।

लेनिन की समाधि

वैसे तो सारा मास्को ही लेनिन के व्यक्तित्व की तथा उनकी उपलब्धियों की झांकी प्रस्तुत करता है, फिर भी तीन स्मारक ऐसे हैं, जिनकी छाप पर्यटक के मन पर पड़े बिना नहीं रहती। उनमें सबसे पहला स्थान है लेनिन की समाधि (मोसोलियम), जिसमें लेनिन का शव आज भी सुरक्षित है। मास्को का वह बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। लाल चौक में क्रेमलिन से सटे इस स्मारक के सामने हर घड़ी दो बन्दूकधारी प्रहरी खड़े रहते हैं, चार अन्दर। जब गार्ड बदलता है तो सैकड़ों आदमी उसे देखने के लिए वहां आ जाते हैं। अन्दर जाने के लिए समय निश्चित है। उन घंटों में हजारों व्यक्तियों की एक-एक, दो-दो मील लम्बी भीड़ बड़े ही व्यवस्थित रूप में पंक्तिबद्ध खड़ी हो जाती है। बहुतों की बारी नहीं आ पाती, लेकिन क्या मजाल कि कोई किसी को धकेलकर आगे जाने का प्रयत्न करे अथवा शोर मचावे!

समाधि काले, सुरमई और लाल पत्थरों से बनाई गई है। उसके निर्माता हैं ए० वी० शूसेव। समाधि बड़ी ही आडम्बरहीन है—न उसके ऊपर बड़ी-बड़ी गुम्बदें

हैं, न मीनारें। बाहर से देखने पर लगता है, जैसे कोई छोटा-सा सुन्दर और सुरुचिपूर्ण घर हो। एक छोटे-से दरवाजे से भीतर प्रवेश करके कुछ सीढ़ियां उतरनी होती हैं, मानों किसी तहखाने में जा रहे हों। फिर दाईं ओर को मुड़ने पर यह शीशे का कक्ष आता है, जिसमें थोड़े-से फासले पर पहले स्टालिन का फिर लेनिन का शव रक्खा है। दोनों लेटे हुए हैं, फौजी वर्दी में। पैरों पर कम्बल पड़े हैं। लगता है, गहरी नींद में सो रहे हों। चेहरे की शांत भाव-भंगिमा तथा रंग को देखकर सहज विश्वास नहीं होता कि वे निर्जीव हैं। मसाले की मदद से उन्हें इस अवस्था में रक्खा गया है। इस समाधि पर न जाने कितने नर-नारी अबतक अपनी मौन श्रद्धांजलि अर्पित कर चुके हैं और आगे करते रहेंगे। अनीश्वरवादी रूसियों की यह श्रद्धा-भक्ति कुछ आश्चर्यजनक-सी लगती है, पर इससे इतना स्पष्ट है कि वहां के लोगों में कृतज्ञता की भावना खूब है।

लेनिन-संग्रहालय

मास्को में लेनिन का दूसरा स्मारक है केन्द्रीय लेनिन-संग्रहालय। क्रांति-चौक (रिवोल्यूशन स्क्वायर) में यह संग्रहालय एक विशाल भवन में अवस्थित है। इस भवन का निर्माण सन् १८९२ में प्राचीन रूसी शैली के आधार पर हुआ था। सन् १९१७ तक उसका उपयोग अन्य कार्यों के लिए होता रहा, लेकिन सन् १९१७ की क्रांति के समय वह बुर्जआ-वर्गीय लोगों का शरण-स्थल बना। उसपर अधिकार करने के लिए जोरों की लड़ाई हुई। इस क्रांति के कारण ही उस भवन के सामने के विशाल चौक का नाम 'क्रांति-चौक' रखा गया है।

संग्रहालय-भवन दोमंजिला है और उसमें १९ बड़े-बड़े हॉल हैं, जिनमें प्रदर्शित वस्तुओं को देखते-देखते रूस के इतिहास के अनेक पृष्ठ आंखों के सामने खुल जाते हैं। लेनिन की जीवनी के साथ राजनैतिक तथा आर्थिक विकास की कहानी वहां की चीजें अपने-आप कह देती हैं। जारशाही के समय से लेकर सत्ता की बागडोर सर्वहारा वर्ग के हाथ में आने तक रूस को किन-किन संघर्षों से गुजरना पड़ा, उसका इतिहास निस्सन्देह बड़ा ही रोमांचकारी है। लेनिन ऐसी शासन-व्यवस्था चाहते थे, जिसमें कोई भी किसीका शोषण करने की स्थिति में न रहे। गांधीजी भी भारत में ऐसे ही समाज की स्थापना करने के अभिलाषी थे, लेकिन दोनों के अन्तिम लक्ष्य एक होते हुए भी दोनों के साधनों में बड़ा अन्तर था। गांधीजी ने कभी हिंसा का समर्थन अथवा आवाहन नहीं किया, लेकिन लेनिन ने अक्तूबर-

क्रांति के समय हिंसा की छूट दे दी। जो हो, लेनिन की छोटी से लेकर बड़ी-से-बड़ी सारी चीजें इस संग्रहालय में सुरक्षित हैं। लेनिन का जीवन बड़ा सादा था और वह अपने देश के करोड़ों किसान-मजदूरों की भांति रहते थे। तिथि-क्रम से लेनिन की सारी जीवनी बचपन से लेकर अन्तिम समय तक चित्रों में प्रस्तुत की गई है। लेनिन का जन्म कब और कहां हुआ, प्रारम्भिक तथा आगे की शिक्षा उन्होंने किस प्रकार पाई, वह क्रांतिकारी कैसे बने, अपने जीवन में उन्हें कैसी-कैसी यातनाएं सहन करनी पड़ीं, निर्वासन तथा जेल के दिनों में उनका समय किस तरह बीता, कैसे उन्होंने क्रांतिकारी प्रवृत्तियों का संचालन किया, किस तरह उन्होंने रूसी सोशलिस्ट डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी को संगठित करने का प्रयत्न किया, फिर अक्तूबर १९१७ की महान क्रांति, सशस्त्र संघर्ष, पूंजीपतियों तथा जमींदारों के शासन का उन्मूलन, गृह-युद्ध में उनका साहस तथा शौर्य, बाधक तत्वों के साथ उनकी लड़ाई और अन्त में भुखमरी तथा अभाव का मुकाबला, ये सब चित्र एकदम आंखों के सामने घूम जाते हैं।

शीशे की एक अलमारी में लेनिन का ओवरकोट रक्खा है। देखने में वह मामूली-सा लगता है, पर गाइड के बताने पर पता चलता है कि वह बड़े ही ऐतिहासिक महत्व का है। सन् १९१८ में लेनिन के जीवन का अन्त करने के लिए जो गोली चलाई गई थी, वह इसी ओवरकोट को बेधकर उनके शरीर में प्रविष्ट हुई थी। गोली का निशान ओवरकोट पर बना हुआ है।

लेनिन की गोर्की

लेनिन का तीसरा स्मारक है गोर्की में, जो मास्को से लगभग ३२ किलोमीटर की दूरी पर है। अपने जीवन के अन्तिम छः वर्षों में लेनिन वहींपर रहे थे। 'सोवियत लेखक संघ' ने वहां जाने के लिए कार तथा परिवाचिका की मेरे लिए व्यवस्था कर दी। गोर्की तक पक्की सड़क है, साफ-सुथरी। रास्ता बड़ा ही मनोरम है। पलोन, रास्ना, योल्का, ऐबीना, क्लू फर आदि के गगन-चुम्बी वृक्षों के बीच वह स्थान है, जहां लेनिन रहा करते थे। वह मकान पहले किसी जनरल का था, लेकिन जब लेनिन वहां गये तो सरकार ने उसका राष्ट्रीयकरण कर लिया। सन् १९१८ से १९२४ के बीच लेनिन ने अपना समय वहीं व्यतीत किया। केवल विशेष अवसरों पर वह मास्को आते-जाते रहते थे। गोली लगने पर वह संयोग से बच तो गये, किंतु उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और डाक्टरों ने उन्हें पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी। मास्को

में कोलाहल तथा कामकाज से उन्हें विश्राम मिल सकना सम्भव नहीं था, अतः यह स्थान पसन्द किया गया। पास में 'गोर्की' नामक ग्राम है। उसके किसान-मजदूरों के बीच रूस का वह नेता बड़े सन्तोष के साथ रहा। उनके मकान में बिजली थी, पर गांव में नहीं थी। अतः ग्रामवासियों ने बिजली की मांग की तो ऐसी योजना बनाई गई, जिससे राष्ट्रभर के गांवों को बिजली मिल जाय। वह योजना पूरी हुई और आज देशभर में बिजली उपलब्ध है।

लेनिन जिस स्थान पर रहे, वहां तीन मकान हैं। उत्तर-दक्षिण के दो मकान बहुत छोटे हैं, बीच का कुछ बड़ा है। प्रारम्भ में लेनिन दक्षिण के मकान में रहे। उसमें उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण लेख लिखे, जिनकी पांडुलिपियां आज भी जैसी-की-तैसी रक्खी हुई हैं। लेनिन रूसी के अतिरिक्त अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, इटालियन आदि भाषाओं को पढ़-लिख सकते थे, बोल सकते थे। ग्रीक और पोलिश पढ़ सकते थे, लिख नहीं सकते थे।

मकान के नीचे के भाग में वह स्वयं रहते थे। ऊपर के हिस्से में उनका परिवार रहता था। उनकी पत्नी क्रुप्सकाया के निवास के कमरे भी बड़े छोटे-छोटे हैं। तीनों मकानों के सामने एक उद्यान है, जिसमें लेनिन की एक विशाल मूर्ति पुष्पों के बीच खड़ी है। छोटे मकान में सर्दी अधिक थी। दूसरे, उसमें फोन की सुविधा नहीं थी। शासन के काम से प्रायः अधिकारियों के साथ सम्पर्क स्थापित रखने की आवश्यकता पड़ती थी। अतः उन्हें विवश होकर सन् १९२० में बीच के बड़े मकान में आना पड़ा।

इन दोनों मकानों के बीच एक वीथिका है, जिसपर लेनिन टहला करते थे। इसी वीथिका पर वह मंडप है, जहां जाकर वह बेंच पर बैठ जाते थे और गोर्की ग्राम, उसके खेत और पहरा नदी आदि के दृश्य देखते थे। वृक्षों के बढ़ जाने से अब वे दृश्य दिखाई नहीं देते, पर वहां खड़े होकर इस बात की याद आये बिना नहीं रहती कि लेनिन ने अपने देश और भूमि के साथ अन्तिम समय तक सजीव सम्पर्क बनाये रखने की चेष्टा की।

इस वीथिका से सटी चेरी की बगिया है, जिसे कपड़े की मिल के मजदूरों ने उन्हें दिया था। वहीं एक छोटा-सा टेनिस कोर्ट है।

बड़े मकान के एक कमरे में लेनिन के कई महत्वपूर्ण पत्र संग्रहीत हैं, जो उन्होंने विभिन्न स्थानों के कम्यूनिस्टों को लिखे थे। उन पत्रों में एक पत्र अंग्रेजी का है,

जिसे देखने से पता चलता है कि लेनिन की लिखावट कितनी सुन्दर थी और वह अंग्रेजी कितनी शुद्ध और अच्छी लिखते थे ! यह पत्र अगस्त १९२१ में थामस बैल नामक सज्जन को लिखा गया था।

११ वीं कांग्रेस अंतिम कांग्रेस थी, जिसमें लेनिन ने आखिरी बार भाग लिया। उसके बाद वह बहुत ही अस्वस्थ हो गये। सन् १९२२ के दिनों में कुटुम्बीजनों तथा राष्ट्र के विशिष्ट व्यक्तियों के साथ लिये गए उनके कुछ चित्र बड़े भावपूर्ण हैं। सन् १९१९ में उन्होंने लाल सेना के समक्ष जो भाषण दिया था, उसका रिकार्ड हमें सुनाया गया। एक सामान्य अपरिचित मजदूर का वह पत्र भी बड़ा हृदयस्पर्शी लगा, जिसमें उसने लिखा था, "मैं आपको कुछ कपड़ा भेंट करना चाहता हूं। उसमें से आप अपने पहनने के लिए पोशाक बनवालें।" उसका आभार मानते हुए बड़ी नम्रतापूर्वक लेनिन ने वह कपड़ा लेने से इन्कार कर दिया था। उन्होंने लिखा था कि अपनी निजी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह कोई भेंट स्वीकार नहीं कर सकते।

२० नवम्बर १९२२ को लेनिन ने अंतिम भाषण दिया। अनन्तर उन्होंने बोलकर पांच लेख लिखवाये। स्थान-स्थान से उन्हें विभिन्न वस्तुओं की जो भेंटें मिलीं, उनमें वह गाड़ी भी है, जो इंगलैंड के एक किसान ने सन् १९२२ में उन्हें भेजी थी। लेनिन का स्वास्थ्य कुछ-कुछ ठीक हो जाने से वह गाड़ी काम में नहीं आ सकी। इसके अतिरिक्त उनका कोट, कमीज, जूते, बन्दूक आदि सब चीजें ज्यों-की-त्यों रक्खी हैं।

भोजन के कमरे में लेनिन की कुर्सी मेज के सहारे केन्द्र में रखी है। दायें-बायें अन्य लोग बैठते थे। लेनिन अपनी कुर्सी पर बैठते हुए विनोद में कहा करते थे, "मैं इस समुदाय का अध्यक्ष हूं।"

एक कमरे में लेनिन की छोटी-सी लाइब्रेरी है, जिसमें अन्य पुस्तकों के बीच कुछ पुस्तकें तुर्गनेव तथा शेक्सपियर की हैं। कुछ संदर्भ ग्रंथ हैं। आखिरी दिनों में वह गोर्की की 'माई यूनीवर्सिटीज' (मेरे विश्वविद्यालय) पुस्तक पढ़ रहे थे। वह उनकी बड़ी प्रिय कृति थी।

२१ जनवरी १९२४ को सायंकाल ६ बजकर ५० मिनट पर लेनिन का देहान्त हुआ। चारों ओर शोक छा गया। सारे नगरों में शोक प्रदर्शित किया गया। उस समय के अनेक चित्र यहां लगे हुए हैं। मास्को, लेनिनग्राड, कीव आदि नगरों में शोकविह्वल भीड़ को देखकर पता चलता है कि लेनिन कितने लोक-प्रिय थे। अन्य

चित्रो के बीच एक चित्र बडा ही मार्मिक है। उसमे दिखाया गया है कि मास्को के लाल चौक मे उनका शव रक्खा है। सिर के निकट उनकी शोकाकुल पत्नी क्रुप्सकाया खडी है। उनकी करुणाजनक आकृति हृदय को विचलित कर देती है। लेनिन के शव पर मजदूरो ने जो मालाए अर्पित की थी, वे भी रखी हुई है।

लेनिन की एक-एक चीज को रूस के निवासियो ने बडी सावधानी से सभाल कर रक्खा है। लेनिन को गये पैंतीस वर्ष के लगभग हो चुके है, लेकिन उनके निवास तथा उनकी वस्तुओ को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह कही गये है और शीघ्र ही लौट आनेवाले है। सग्रहालय के निकट ही एक रेस्ट्रा है, जिसमे खाने-पीने की सब चीजे मिल जाती है। उस ऐतिहासिक स्थल को देखने के लिए लोग बराबर आते-जाते रहते है। मै जिस समय वहा पहुचा, किसी स्कूल के बच्चो की टोली आई हुई थी। हमारी परिचारिका ने कहा, "ऐसी टोलिया यहा प्राय. आती रहती है। इसका कारण यह है कि हमारे यहा की शिक्षा मे किताबी पढाई के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान पर विशेष जोर दिया जाता है।"

: ६ :

तीन विशेष संग्रहालय

मास्को में यों तो बीसियों संग्रहालय हैं, किन्तु उनमें कुछ ऐसे हैं, जिन्हें कोई भी साहित्य, इतिहास तथा कला-प्रेमी पर्यटक बिना देखे नहीं रह सकता।

गोर्की-संग्रहालय

पाठक जानते हैं कि रूस के महान लेखकों में मैक्सिम गोर्की का अपना स्थान है। उन्होंने अपनी रचनाओं से न केवल रूसी साहित्य को समृद्ध किया है, अपितु विश्व के साहित्य को भी अपनी विशेष देन दी है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि रूस में स्थान-स्थान पर उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए स्मारक हों। मास्को में उनका बड़ा विशाल संग्रहालय है। 'सोवियत लेखक संघ' के कार्यालय से कुछ ही गज के फासले पर उसका भवन है, जिसके प्रांगण में गोर्की की विशाल मूर्ति है, अधेड़ उम्र की। उसे देखते हुए मैं परिचायिका के साथ अंदर पहुंचा। संग्रहालय बहुत ही साफ-सुथरा था। जब उसकी वस्तुएं देखीं तो उस कलाकार के जीवन के विषय में बहुत सी नई बातें मालूम हुईं।

भवन में सबसे पहले उन पुस्तकों का संग्रह है, जिन्हें गोर्की ने पढ़ा था। इस संग्रह में तुर्गनेव, पुश्किन आदि रूसी साहित्यकारों की भी कृतियां हैं।

गोर्की की सुन्दर हस्तलिपि को देखते हुए दर्शक एक छोटी-सी मेज के सामने पहुंचते हैं। उन्हें लगता है कि आखिर इस मामूली-सी मेज में क्या विशेषता है, जो उसे इस विशाल संग्रह के बीच स्थान दिया गया है? पर नहीं यह वह ऐतिहासिक मेज है, जिसपर गोर्की ने अपनी सबसे पहली कहानी 'मकार छिद्रा' आज से ६६ वर्ष पूर्व लिखी थी और जो 'काव्काज' नामक पत्र के १२ सितम्बर १८९२ के अंक में छपी थी।

गोर्की एक गरीब घर में पैदा हुए थे और वह अपने अनुभव से जानते थे कि सम्पन्न वर्ग किस प्रकार दीन-हीनों का दमन तथा शोषण करता है। अतः युवक

गोर्की का हृदय समाज के मौजूदा ढांचे को जड़-मूल से बदलने के लिए विद्रोह कर उठा। अपने जीवन के विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करके गोर्की घर से निकल पड़े। अपने देश के कोने-कोने की धूल उन्होंने छानी। एक नक्शे में बताया गया है कि अदम्य उत्साह से, विना क्लान्ति अनुभव किये, उन्होंने रूस के किन-किन स्थानों की यात्रा की और कहां-कहां के लोगों को पत्र लिखे। उनके जीवन-चरित की पांडुलिपि के कुछ पृष्ठ स्मरण दिलाते हैं कि उन्होंने अपने जीवन को कितनी सादगी के साथ व्यतीत किया था।

लेखक के रूप में विज्ञापित होने के बाद सन् १८९६ से १९०१ के बीच उन्होंने जिस मेज पर लेखन-कार्य किया था, वह भी वहां सुरक्षित है। इतना ही नहीं, उनका कोट, टोप, छड़ी आदि भी रक्खी हैं, जिनका प्रयोग उन्होंने युवाकाल में किया था। उनकी पत्नी वोलशीना अपूर्व सुन्दरी थीं। उनके विवाह के पूर्व का चित्र दर्शकों को सहज ही लुभा लेता है। उनके पार्श्व में गोर्की की अनेक कहानियां चित्रित की गई हैं। गोर्की की ख्याति इतनी फैली कि प्रत्यक्ष परिचय न होते हुए भी लेनिन ने ७ अक्तूबर १८९७ को 'नावयसमोवा' नामक पत्र में उनके बारे में लिखा।

अनेक लेखक गोर्की की मित्र-मंडली में थे। चेखव, टाल्स्टाय आदि के साथ के उनके चित्र उस लेखक-बिरादरी का स्मरण कराते हैं। एक मेज पर गोर्की की कैंची, पेंसिलें, कलम-दवात, छिपकली की शक्ल का तथा दो अन्य पेपरवेट, सोख्ता, लिखने का कागज, चश्मा, उसका घर आदि रखे हैं। चित्रों में कई चित्र बड़े ही ऐतिहासिक महत्व के हैं। एक में गोर्की अपने बच्चे को कंधे पर बिठाये हुए हैं। उसके नीचे लिखा है—'गोर्की और उनकी सर्वोत्तम कृति।' सबसे हृदयस्पर्शी चित्र उनका वह है, जिसमें क्रांति के पश्चात 'पार्क कुल्तूरे' में वह मंच पर खड़े भाषण दे रहे हैं। बेशुमार भीड़ इधर-उधर खड़ी उनकी ओर देख रही है। एक और चित्र दर्शकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है। उसमें मेज के सहारे लेनिन, गोर्की और उनकी पत्नी बैठें संगीत सुन रहे हैं।

गोर्की की रचनाओं का अनेक विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। एक विभाग में इन सब अनुवाद-ग्रंथों को संग्रहीत किया गया है। भारतीय भाषाओं में हिंदी, उर्दू तथा मराठी आदि की पुस्तकें हैं। उसके निकट ही एक ओर को गोर्की के बारे में अनेक महापुरुषों के उद्गार दिये गए हैं। लेनिन, रोम्यां रोलां तथा प्रेमचन्द के

वाक्य बड़े भावपूर्ण हैं। गोर्की के विषय में विभिन्न देशों में जो साहित्य निकला है, वह भी वहां उपलब्ध है।

कुछ चीजें ऐसी भी हैं, जिनके साथ बड़ी कटु स्मृतियां जुड़ी हुई हैं, जैसे काकेशस के उस मकान का चित्र, जिसमें सन् १८६८ में उन्हें बंदी बनाकर रखा गया था, निजनी नोवगोरोड (अब गोर्की) का वह स्थान, जिसमें सन् १६०१ में वह बंद रहे थे और अंत में पीटर्सबर्ग (अब लेनिनग्राड) का संत पीटर और पाल का किला, जिसमें सन् १६०५ में उन्हें जार के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने के कारण बंदी जीवन व्यतीत करना पड़ा था।

गोर्की को बच्चों से बड़ा प्रेम था। बच्चों के साथ के अनेक उनके चित्र इस संग्रहालय में हैं।

बड़ा विशाल संग्रह है वह। उसे देखकर गोर्की के समूचे जीवन की तस्वीर आंखों के सामने आ जाती है। उसके संचालक बड़े ही भद्र व्यक्ति थे। मैं वहां से चलने लगा तो उन्होंने गोर्की के कई चित्र मुझे भेंट किये।

क्रांति का संग्रहालय

यह संग्रहालय रूस के इतिहास से संबंधित है—उस इतिहास से जो वर्तमान सोवियत संघ का जनक माना जाता है। अक्तूबर १६१७ की क्रांति से लेकर अब-तक की सभी प्रमुख घटनाओं की जानकारी इस संग्रहालय की वस्तुओं को देखकर हो जाती है। मेरे साथ नीना सिनीज़ना नामक परिवाचिका थी। उसने बड़ी अच्छी तरह से पूरा संग्रहालय दिखाया और बताया कि रूसी क्रांति को किन-किन अव-स्थाओं से होकर गुजरना पड़ा। जारकालीन कई चित्र तो बड़े ही भयंकर हैं। उनमें दिखाया गया है कि लोगों की उभरती हुई चेतना को दबाने के लिए जार ने कितने अत्याचार किये, लेकिन उन्हीं चित्रों में यह भी दिखाई देता है कि किस साहस से लोगों ने उन अत्याचारों का मुकाबला किया।

इस संग्रहालय में उन उपहारों का भी संग्रह है, जो विभिन्न देशों से प्राप्त हुए थे। अधिकांश उपहार किसान-मजदूरों के हैं। क्रांति के सफल होने के उल्लास में उन्होंने विभिन्न वस्तुएं अपने नेताओं को भेजी थीं। कुछ उपहार भारत के भी हैं।

क्रांति की घटनाओं से संबंधित होने के कारण इस संग्रहालय का नाम 'म्यूजे रिवोल्यूत्सी' रक्खा गया है। 'म्यूजे' रूसी में संग्रहालय को कहते हैं। 'रिवोल्यूत्सी' का अर्थ है क्रांति, अर्थात् 'क्रांति का संग्रहालय।'

अपने इतिहास का किस प्रकार प्रभावशाली ढंग से देशवासियों को परिचय कराया जा सकता है, इसका यह संग्रहालय सुन्दर नमूना है। अनेक बच्चे संग्रहालय की वस्तुओं को बड़े ध्यान से देख और समझ रहे थे। रूस के अधिकारियों का प्रयत्न रहता है कि उनके बच्चे अपने देश के इतिहास को जानें और उनमें उस राष्ट्रीयता और राष्ट्र-प्रेम का उदय हो, जिसकी बुनियाद पर देश आगे बढ़ते हैं, ऊपर उठते हैं।

प्राच्य संग्रहालय

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, यह संग्रहालय पूर्वी देशों की वस्तुओं से संबंधित है। इस संग्रहालय की स्थापना सन् १९१८ में हुई थी। उसमें दो खंड हैं। नीचे के खंड में चीन की कला-संबंधी अनेक वस्तुएं हैं—प्राचीन एवं अर्वाचीन कला की। प्राचीन कला में ईसा के दो हजार वर्ष तक की वस्तुएं हैं। पत्थर, धातु तथा लकड़ी की ऐसी-ऐसी कला-कृतियां हैं कि उन्हें देखकर बड़ा आनंद होता है। बोधिसत्व की कई मूर्तियां हैं। रेशम पर चित्रकारी तथा कढ़ाई चीनी कलाविदों की अपनी विशेषता है। उसके कई उत्कृष्ट नमूने इस संग्रहालय में मिलते हैं। किसी अज्ञात कलाकार द्वारा पक्षियों तथा पुष्पों का चित्र बड़ा सुन्दर है। एक लम्बा चित्र चूयिंग नामक कलाकार का है, जिसमें एक बड़ी विचित्र कहानी चित्रित की गई है। एक कलाकार अपनी पत्नी को त्याग देता है। कुछ समय पश्चात वह रेशम पर किसी स्त्री की अद्‌भुत कारीगरी को देखकर उसपर मुग्ध हो जाता है। खोजने पर पता चलता है कि वह स्त्री उसीकी पत्नी है तो वह उसे पुनः स्वीकार कर लेता है। यून शोपिंग द्वारा रेशम पर चित्रित पुष्प कला की दृष्टि से बेजोड़ हैं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो वे असली हों। उनके रंग बड़े ही प्यारे हैं। लाख के फूलदान, डिब्बी, रकाबियां आदि की कला विशेष रूप से सराहनीय है। उनकी बारीकी को देखकर विस्मय होता है।

एक अल्मारी में तिब्बत के अनेक देवी-देवताओं की धातु की मूर्तियां हैं। एक बहुत बड़े रेशम के टुकड़े पर, जिसकी लम्बाई ३० मीटर है, एक अफसर की कहानी दी हुई है। यह अफसर पहले बहुत गरीब था, बाद में गवर्नर बना। एक अल्मारी में १२ प्याले रखे हैं। जबतक कोई बतावे नहीं तबतक अनुमान करना कठिन है कि उनपर प्रत्येक मास के प्रतीक बने हुए हैं, फूल और कविताओं के रूप में।

आधुनिक चीन के विभाग में पत्थर, चांदी, धातु आदि की सुन्दर वस्तुएं हैं। तश्तरी, फूलदान आदि की कारीगरी देखते बनती है। कीसिंग द्वारा पेड़ की जड़ से बनाया 'परीक्षाओं का देव' कलाकार की सूझ तथा श्रम का द्योतक है। एक वृद्ध

की नृत्य करती हुई मूर्ति बड़ी जानदार है। बांस चीन के कलाकारों को बहुत प्रिय होते हैं। बांसों द्वारा निर्मित अनेक वस्तुओं में 'वेणु-कुंज में नौ कलाकार' अच्छी कृति है। हाथी-दांत का पैगोडा उंगलियों की कुशलता की ओर इंगित करता है। ची वेशी कलाविद के 'उलकाव और चट्टान' तथा 'उलकाव नीड़ वृक्ष पर' काली स्याही से थोड़ी-से-थोड़ी रेखाओं द्वारा बड़े ही भावपूर्ण चित्र बनाने की कला के अनुकरणीय नमूने हैं। एक चित्र में एक बहुत ही शिक्षाप्रद कहानी चित्रित है। एक व्यक्ति गधे पर सवार कहीं जा रहा है। वह आगे एक दूसरे आदमी को घोड़े पर चढ़ा देखकर अफसोस करता है कि उसके पास घोड़ा नहीं है। तभी उसकी निगाह पीछे एक गाड़ी को खींचते आदमी पर जाती है, जिसके पास गधा भी नहीं। इससे उसे बोध होता है। चीन की आधुनिक युगीन चित्रकारी बड़ी आकर्षक है, विशेषकर रेशम पर की हुई।

दूसरे खंड में सबसे पहले कोरिया की कुछ वस्तुएं प्रदर्शित की गई हैं, साथ ही मंगोलिया की भी। उसके बाद भारतीय विभाग है, जिसमें अजंता-एलोरा के कुछ चित्र तथा दक्षिण एवं उड़ीसा में बनी काष्ठ, चांदी तथा सींग की चीजें हैं। यह संग्रह जितना समृद्ध होना चाहिए था, नहीं है, खासकर अन्य देशों की तुलना में। जापान की भी बहुत-सी चीजें वहां रक्खी हुई हैं।

अन्त में सोवियत के विभिन्न संघों की वस्तुओं का विभाग है। उसमें उजबिकिस्तान का संग्रह विशेष आकर्षक है। कालीन और उनकी कला तो अद्भुत है। इस संग्रहालय के संचालक थे श्री राइबिनकिंग जो उस समय वहां उपस्थित नहीं थे। भारतीय विभाग के अध्यक्ष श्री साइमन ट्यूलायेब ने बड़े प्रेम से अपना विभाग दिखाया। उनसे मालूम हुआ कि वह भारत भी हो गये हैं। उन्होंने संग्रहालय से संबंधित एक एल्बम मुझे भेंट में दी।

इस संग्रहालय को देखकर पता चलता है कि रूस के लोगों की रुचि केवल अपने देश की कला तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वे अन्य देशों की कला का भी आदर करते हैं। पूर्वी देशों की कला पर तो वे जैसे मुग्ध हैं।

: १० :

त्रेत्याकोव आर्ट गैलरी

ओस्तान्कीनो होटल में जितने दिन रहा, प्रायः देखा करता था कि कोई-न-कोई रूसी चित्रकार वहां उपस्थित हैं और बड़े मनोयोग से कभी किसीका तो कभी किसीका चित्र अंकित करने में संलग्न हैं। बाद में होटल से भाई वीरेन्द्र-कुमार शुक्ल के घर आ जाने पर एक दिन एक रूसी महिला चित्रकार ने मेरा चित्र बनाने की इच्छा प्रकट की और मेरे राजी हो जाने पर उन्होंने तीन घंटे में अच्छा-खासा रंगीन चित्र तैयार कर दिया। शहर में जहां कहीं जाता था, दीवारों पर छोटे-बड़े रंगीन चित्र टंगे देखता था। इसपर से मुझे लगा कि भौतिक प्रगति में बेहद जुटे होने पर भी रूस के निवासी कला की ओर से विमुख नहीं हैं। बाद में मास्को की त्रेत्याकोव आर्ट गैलरी (कला-भवन) को देखकर मेरी यह धारणा और भी पुष्ट हो गई। अपनी विदेश-यात्रा में मैंने रोम, पेरिस, लंदन, बर्लिन, कोपेनहेगन आदि नगरों के कलाभवन विशेष रूप से देखे, लेकिन जो विशालता, जो विविधता तथा रंगों की जो सुन्दर योजना मुझे मास्को की इस आर्ट गैलरी में दिखाई दी, वह पेरिस के कला-भवन लूव्र को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हुई। ऐसा प्रतीत होता था, मानो रूस के कलाविद अपने युग की उपलब्धियों, आशाओं, आकांक्षाओं तथा सुख-दुख की अनुभूतियों को तूलिका के माध्यम से अमरत्व प्रदान करने के लिए लालायित हों। गैलरी में प्रवेश टिकट से होता है, फिर भी सबेरे से शाम तक दर्शकों का वहां तांता लगा रहता है। इतनी भीड़ मैंने पेरिस के कला-भवन के अलावा और कहीं नहीं देखी।

गैलरी देखते समय ओरियंटल इन्स्टीट्यूट की तमारा नाम की एक सुशिक्षित रूसी बहन मेरे साथ थीं। वह हिंदी और अंग्रेजी की जानकार होने के साथ-साथ बड़ी कला-प्रेमी भी थीं। उस विशाल आर्ट गैलरी के चित्रों को बारीकी से देखने में मुझे कई दिन लग जाते, लेकिन इस कला-पारखी बहन के होने से थोड़े ही समय

मे बहुत-कुछ देखने का अवसर मिल गया। उन्होंने उसके सभी विशेष चित्र मुझे कुछ ही घंटो मे दिखा दिये।

यह कला-भवन लव्रूशिस्की लेन मे है। मास्को के पेवेल त्रेत्याकोव नामक एक उद्योगपति ने, जो कला के अनन्य प्रेमी थे, रूस के विशेष चित्रो का संग्रह करना प्रारंभ किया। बाद मे उन्होने अनुभव किया कि एक राष्ट्रीय कला-भवन की स्थापना होनी चाहिए। यह विशाल कला-संग्रह इन्हीं त्रेत्याकोव महोदय की विचार-शीलता तथा दूरदर्शिता का परिणाम है। तीस वर्ष तक चित्र-संग्रह करने के उपरान्त अपने भाई सर्गी से मिली रूसी मूर्तियो को भी उन्होने उसमें सम्मिलित करके उस निधि को सन् १८९२ में सार्वजनिक रूप दे दिया। वस्तुत कला-भवन की स्थापना उसी समय हुई मानी जानी चाहिए। सन् १९१८ मे जब उसका राष्ट्रीयकरण हुआ, उस समय उसमे चार हजार से अधिक चित्र आदि थे। अब तो उनकी संख्या पचास हजार से भी ऊपर हो गई है।

कला-भवन मे ११ वी शताब्दी से लेकर अबतक की कला के उत्कृष्ट नमूने तो देखने को मिले ही हैं, रूस के इतिहास की प्रमुख धाराओं का भी परिचय हो जाता है। सामन्तशाही काल से लगाकर आधुनिक समाजवादी सोवियत संघ के जीवन मे जो उथल-पुथल हुई है, उसकी बड़ी ही सजीव झांकी इस संग्रह मे मिलती है। छोटे-छोटे इकरंगे रेखा-चित्रों से लेकर विशाल आकार के बहुरंगी चित्र इस ढंग से सजाये गए हैं कि तिथि-क्रम से रूसी इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ जाता है। रूस मे बीसियो उच्च कोटि के कलाकार हुए है, जिनमें रुब्लेव, एवाजोवस्की, शिश्किन, वास्नेत्सोव, क्रेम्स्को, रेपिन, सुरीकोव, लेवितन, सेरोव, ग्रेकोव, क्रिपयान्स्की, आदि के नाम बहुत ही लोकप्रिय हैं। इन तथा अन्य अनेक कलाकारों की एक-से-एक बढ़कर सहस्रो कला-निधियां दर्शकों का मन मोह लेती हैं।

गैलरी के कई कक्षों में हजरत ईसा तथा प्राचीन धर्म-कथाओ से संबंधित चित्र है। उन्हें देखकर आश्चर्य होता है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वोपरि स्थान देनेवाले व्यक्तियों ने धर्म को इतना महत्व कैसे दिया है। इसका कारण शायद यह है कि कला के लिए कुछ भी वर्जित नहीं है और कला जीवन को काट-छांटकर अथवा बांटकर नही देखती। उसके लिए संसार की प्रत्येक वस्तु स्पृहणीय है। यह देखकर भी कम आश्चर्य नहीं होता कि सारे कला-भवन में नग्नता का प्रदर्शन करता हुआ एक भी चित्र नही है। उसकी अधिकांश कृतियां

जीवन की यथार्थता को लेकर हैं। क्रिपयान्की द्वारा निर्मित पुश्किन के चित्र के विषय में तो यहांतक कहा जाता है कि जब पुश्किन ने उसे देखा तो आश्चर्यचकित होकर बोले, "इस चित्र को देखकर तो ऐसा लगता है मानों मैं अपने चित्र के सामने नहीं आइने के सामने खड़ा हूं।" पर किसी कलाकार की तूलिका ने एक भी चित्र ऐसा नहीं बनाया, जिसे देखकर दर्शकों को मुंह फेर लेना पड़े। यथार्थ पर दृष्टि केन्द्रित रखकर भी कलाकारों ने वासनोत्तेजक विषयों को अपनी कूंची का लक्ष्य नहीं बनाया। सामन्तशाही युग के वैभव को कुछ चित्रकारों ने अंकित किया है तो कुछने युद्ध की विभीषिका को प्रदर्शित किया है, कुछने सर्वहारा वर्ग के सुख-दुःख को चित्रात्मकता प्रदान की है। इवेनोव का 'कमिंग ऑव क्राइस्ट' (हजरत ईसा का आगमन), जिसके बनाने में बीस वर्ष लगे, अपनी विशालता तथा मानव-आकृतियों की भावप्रवणता के लिए मन में सदा के लिए बस जाता है। इसी प्रकार एक बंदी का चित्र भूले नहीं भूलता। उसके परिवार के लोग—स्त्री और बच्चे, जेल में उससे मिलने आये हैं। छोटा बालक कुतूहल के साथ पिता की बेड़ी पर हाथ रखे हुए है। बंदी की बेबसी और कुटुम्बी-जनों की व्याकुलता दिल को हिला देती है। ऐसा ही एक और हृदयस्पर्शी चित्र है श्मशान-भूमि में अपने इकलौते बेटे की समाधि के सम्मुख मौन भाव से खड़े वृद्ध माता-पिता का। देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानों अपना ही कोई आत्मीय जन उस समाधि के भीतर चिर-निद्रा में लीन हो। बंदी लोगों का साइबेरिया जाना, बेमेल विवाह, अश्वारोही सुन्दरी, जिसके पास एक बालिका तथा एक कुत्ता खड़ा है, पति के वियोग में शोकमग्न स्त्री, पिता द्वारा पुत्र की हत्या आदि-आदि सैकड़ों चित्र हैं, जो पग-पग पर दर्शकों को आगे बढ़ने से रोक देते हैं।

डास्टोवस्की, टाल्स्टाय, गोर्की, पुश्किन, क्रोपाटकिन, तुर्गनेव आदि महान रूसी साहित्यकारों के चित्र उस संग्रह में न होते, यह कैसे संभव था ? टाल्स्टाय का एक चित्र तो बड़ा ही भावपूर्ण है। निर्जन स्थान में एक पेड़ के नीचे टाल्स्टाय अकेले, बिल्कुल अकेले, धरती पर लेटे कुछ पढ़ रहे हैं।

प्राकृतिक दृश्यों के चित्र भी बड़े आकर्षक हैं। नदी, सागर, वन, वन्य पशु-पक्षी, पुष्प आदि चित्रकारों की निगाह से बच जाते तो शायद प्रकृति उन्हें क्षमा न करती। रूस की भूमि वास्तव में प्रकृतिदेवी की बड़ी लाड़ली भूमि है और उसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस संग्रहालय के अनेक चित्र देते हैं। प्रकृति के चित्रण में रंगों को खुली छूट नहीं दे दी गई है, बल्कि असाधारण संयम रक्खा गया है।

रूस के अलावा अन्य देशों के चित्रों को भी वहां आदर के साथ स्थान दिया गया है। अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन फ्रांसीसी, इटालियन, अंग्रेज, अमरीकी आदि कलाविदों के चित्र वहां संग्रहीत किये गए हैं। एक कक्ष में भारतीय जीवन से संबंधित बहुत-से चित्र हैं। उनके चित्रकार हैं वेरेश्चागोन, जो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दो वर्ष भारत में रहे थे। भारतीय मुखाकृति को सही-सही बनाने में विदेशी कलाकार प्राय: चूक कर जाते हैं, लेकिन वेरेश्चागोन की पकड़ निस्संदेह सराहनीय है।

चित्रकला एवं मूर्ति-कला का अन्यान्योश्रित संबंध है। अत: स्वाभाविक रूप से इस संग्रहालय के विभिन्न कक्षों में अनेक मूर्तियां सुरक्षित हैं। कई मूर्तियां तो बहुत ही सजीव हैं, मानों अभी बोल उठेंगी।

प्रत्येक कक्ष के अन्दर बेंचें तथा कुर्सियां पड़ी हैं, जिनपर बैठकर थोड़ी देर दर्शक विश्राम ही नहीं करते, अपितु अपनी पसन्द के चित्रों को भी एकाग्रतापूर्वक देखने की सुविधा पा लेते हैं। दर्शकों में बच्चों से लेकर युवा-वृद्ध सभी आते हैं। जिस रुचि से वे उस संग्रह को देखते हैं, उससे पता चलता है कि वहां के लोगों में कला के लिए प्रेम है और वे उसकी बारीकियों तथा उत्कृष्टता को समझते हैं।

यह कला-केन्द्र चित्रों तथा मूर्तियों का बृहत् संग्रह तो है ही, कला के सम्वर्द्धन का भी केन्द्र है। उसके द्वारा अन्वेषण-कार्य का भी संचालन होता है। बहुत-से चित्रों से, जो वहां प्रदर्शित नहीं किये गए हैं, समय-समय पर प्रदर्शनियां आयोजित की जाती हैं। दूर-दूर से कलाकारों तथा कला-प्रेमियों की यात्राओं और कला-संबंधी भाषणों की व्यवस्था की जाती है। कला-भवन के अधिकारी प्रयत्न करते हैं कि रूसी कला से जन-सामान्य का अधिक-से-अधिक परिचय करावें और कला के क्षेत्र में उगनेवाली प्रतिभा को हर तरह की सुविधाएं प्रदान करें। चित्रों का पुनरुद्धार करने के लिए वहां समुचित प्रबंध है। साथ ही रूसी कला पर पुस्तकों का एक विस्तृत पुस्तकालय भी है।

मास्को में छोटे-बड़े कई कला-भवन हैं, लेकिन इस त्रेत्याकोव आर्ट गैलरी की लोकप्रियता निराली है। प्रति वर्ष लगभग दस लाख दर्शक उसे देखने आते हैं। सारे भवन में सफाई गजब की रहती है। सभी कक्षों में लकड़ी का चिकना फर्श है, जो पालिश से हर घड़ी चमकता रहता है। यदि सावधानी न रखी जाय तो फिसलने का डर रहता है। एक साथ सैकड़ों दर्शक आते हैं, पर क्या मजाल कि किसी प्रकार का शोरगुल हो। टोलियां बनाकर गाइड दर्शकों को वह संग्रह दिखाते हैं, लेकिन यदि

कोई अकेले देखना चाहे तो वैसा कर सकता है। हां, एक बात है। प्रत्येक चित्र पर शीर्षक, कलाकार का नाम और बनाने की तिथि रूसी भाषा में दिये हुए हैं। यदि कोई रूसी भाषा नहीं जानता तो उसका काम बिना परिवाचक के नहीं चल सकता। परिवाचक अथवा गाइड इसलिए भी आवश्यक है कि यदि कोई सरसरी तौर पर भी गैलरी को देखना चाहे तो कम-से-कम एक सप्ताह चाहिए। उतने पर भी बिना मार्गदर्शक के कुछ प्रमुख चित्र छूट सकते हैं। गाइडों को पता रहता है। इससे वे खास-खास चित्रों को अवश्य दिखा देते हैं।

हम कला के विशेषज्ञ नहीं हैं, इसलिए गैलरी के चित्रों के गुण-दोषों की विवेचना करना हमारे लिए बड़ा कठिन है, किन्तु इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि रूस के प्राचीन एवं अर्वाचीन जीवन का बड़ा ही यथार्थ चित्रण वहां मिल जाता है। छोटे-छोटे चित्रों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुओं को दिखाना उतना ही कठिन है, जितना विशाल चित्रों में आकृतियों का सही अनुपात रखना। इन दोनों ही दृष्टियों से यह संग्रह बड़ा सम्पन्न है।

एक बात हमें खटकी। प्राचीन कला-कृतियों के पीछे जिस उच्चकोटि की प्रतिभा के दर्शन होते हैं, वह अर्वाचीन चित्रों के पीछे दिखाई नहीं देती। ऐसा प्रतीत होता है, मानों आज का कलाकार लोक-जीवन की समस्याओं से इतना बंधा है कि उनकी अभिव्यक्ति उसके लिए मुख्य हो गई है, कला-पक्ष गौण हो गया है। शायद इसीसे उसके चित्रों में वह उभार और निखार नहीं है, जो प्राचीन चित्रों में है। फिर भी कुल मिलाकर संग्रह बड़ा ही सुन्दर एवं दर्शनीय है।

: ११ :

यास्नाया पोलियाना की तीर्थ-यात्रा

हमारे देश में जिन विदेशी ग्रन्थकारों को असाधारण मान और लोकप्रियता प्राप्त हुई है, उनमें रूस के महान् कलाकार लियो टाल्स्टाय का नाम अग्रणी है। भारत की शायद ही कोई ऐसी भाषा हो, जिसमें उनकी रचनाओं के अनुवाद न हुए हों। कुछ भाषाओं में तो उनकी एक-एक रचना के कई-कई अनुवाद हुए हैं। पाठकों को संभवतः ज्ञात होगा कि इस कलाविद की दो कहानियों (१. 'हाऊ मच लैण्ड डज़ ए मैन नीड'—आदमी को कितनी ज़मीन चाहिए और २. 'इवान, दी फूल'—मूरखराज) से गांधीजी इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने स्वयं उनका गुजराती में रूपान्तर किया और हजारों पाठकों तक उन्हें पहुंचाया। गांधीजी ने लिखा है कि जिन पुरुषों का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा था, उनमें एक टाल्स्टाय थे। वह अपनी 'इंडियन ओपीनियन' पत्रिका बराबर टाल्स्टाय को भेजते रहे और टाल्स्टाय उसे नियमित रूप से ध्यानपूर्वक पढ़ते रहे।

वैसे तो विश्व-साहित्य में ही टाल्स्टाय का ऊंचा, बहुत ऊंचा, स्थान है; लेकिन भारत में तो उनके प्रति असीम आत्मीयता है। इसका कारण यह है कि अपनी कृतिओं में उन्होंने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वे भारतीय सिद्धान्तों के बहुत ही निकट हैं। इतना ही नहीं, उन सिद्धान्तों के अनुकूल वह अपना जीवन व्यतीत करने का भी निरंतर प्रयत्न करते रहे। सादगी और नीति-निष्ठा, प्रेम और बंधुत्व, अपरिग्रह और समानता, ये उनके जीवन और साहित्य के सार-तत्व कहे जा सकते हैं और इसी कारण हमारे देश में टाल्स्टाय को 'महर्षि' की संज्ञा से विभूषित किया गया है।

यह निश्चय ही अद्भुत संयोग था कि टाल्स्टाय और गांधीजी समकालीन थे। गांधीजी की दक्षिण अफ्रीका की प्रवृत्तियों में टाल्स्टाय की गहरी अभिरुचि थी और टाल्स्टाय के सिद्धान्तों और उनके जीवन के प्रयोगों के प्रति गांधीजी का बड़ा ही

आकर्षण था। कहने की आवश्यकता नहीं कि दोनों महापुरुषों के बीच कुछ पत्र-व्यवहार भी हुआ जो आज भी सुरक्षित है।

टाल्स्टाय का समूचा साहित्य—निबन्ध, कहानियां, उपन्यास—कला की दृष्टि से तो उत्कृष्ट है ही, अपनी नैतिक भूमिका के कारण वह और भी मूल्यवान् बन गया है।

इस महान् लेखक के लिए मेरे हृदय में वर्षों से बड़ा अनुराग रहा है। अतः यह स्वाभाविक था कि अपने रूस-प्रवास में मैं उनकी जन्मभूमि यास्नाया पोलियाना के दर्शन करता और उनकी समाधि पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता। मास्को पहुंचते ही मैंने 'सोवियत लेखक संघ' के अधिकारियों से कह दिया था कि मैं यास्नाया पोलियाना की यात्रा अवश्य करूंगा और उन्होंने उसकी व्यवस्था कर दी। हम पांच व्यक्ति मास्को से कार द्वारा रवाना हुए। तीन थे चीनी लेखक—वू (नाटककार), चू ज़े फ़ू (कहानी-लेखक), अलेमाज़ तुर्गोन (कवि), चौथी हमारी परिचायिका मार्कोवा स्वेतलाना और पांचवां मैं। चीनी लेखकों में केवल एक अंग्रेजी बोल लेते थे, सो भी टूटी-फूटी। मार्कोवा चीनी और अंग्रेजी बहुत अच्छी तरह जानती थी, रूसी तो उसकी मातृभाषा थी ही।

यास्नाया पोलियाना मास्को से कोई दोसौ किलोमीटर है। यह सोचकर कि शाम को लौटने में बहुत देर न हो जाय, हम लोगों ने बड़े तड़के प्रस्थान किया। रास्ता बड़ा ही साफ-सुथरा और सुन्दर था। दोनों ओर दूर-दूर तक बिरियोजा तथा येल के ऊंचे सघन वृक्ष मार्ग को आकर्षक और यात्रा को सुखद बना रहे थे। लगभग सौ किलोमीटर तक मास्को जिले में चलते रहे, अनंतर सरपोखोव क़स्बा और ओका नदी को पार करने पर तुला जिला प्रारंभ हो गया। तुला शहर में समोवार का बहुत बड़ा कारखाना है। वहां एक कहावत है—"डू नॉट गो टू तुला विद यौर ओन समोवार।"—अर्थात् अपनी समोवार लेकर तुला न जाओ। यह कहावत हमारी 'उल्टे बांस बरेली को' के समानान्तर मानी जा सकती है।

मैंने मार्कोवा से कहा, "इन चीनी कवि से कहो कि कुछ सुनावें।" मार्कोवा ने अलेमाज़ तुर्गोन से मेरी ओर से आग्रह किया तो उन्होंने एक छोटी-सी कविता सुनाई। उसका भाव यह था कि युद्ध चल रहा है, सब लोग बड़े हैरान हैं। इतने में किसी कवि को समाचार मिलता है कि उसका देश, उसकी मातृभूमि, विजयी हो गई है। इससे वह बहुत ही प्रफुल्लित होता है।

तुर्गोव चीनी में सुनाते जाते थे, मार्कोवा अंग्रेजी में अनुवाद करती जाती थी। हो सकता है, मूल भाषा में शब्दों का लालित्य रहा हो, पर मुझे तो वह कविता बड़ी सामान्य-सी लगी। मैंने मार्कोवा से कहा, "अब तुम कुछ सुनाओ।" उसने पहले तो मीरोशव्स्की नामक प्राचीन रूसी कवि की 'शाक्यमुनि' रूसी कविता सुनाई, अनंतर सीमोनोव नामक आधुनिक कवि की। दोनों बुद्ध से संबंधित थीं। दूसरी कविता की कथा यह थी कि तीन यात्री कहीं जाते हैं। रास्ते में भटक जाते हैं। उन्हें भूख व्याकुल करती है। अंत में उन्हें एक बौद्ध विहार मिलता है। उसमें बुद्ध की मूर्ति है, जिसके सिर पर एक मूल्यवान पत्थर लगा है। वे तीनों उस पत्थर को लेना चाहते हैं। वहां का संरक्षक उन्हें रोकता है। यात्री निराश होकर आगे बढ़ जाते हैं। पर बुद्ध उस पत्थर को लेकर उनके पास आते हैं और कहते हैं, "लो, यह लो। यह तुम्हारे ही लिए तो है।" कविता बड़ी ही भावपूर्ण थी। अच्छी लगी।

जैसे-जैसे आगे बढ़ते गये, रास्ते का सौंदर्य और भी निखरता गया। हरे-भरे वृक्षों के बीच सामूहिक खेतों की बस्तियां बड़ी सुहावनी लगती थीं। लगभग ११ बजे घने वृक्षों की अमराई के निकट हमारी कार रुकी। मार्कोवा ने कहा, "अब हम यास्नाया पोलियाना के पास आ गये हैं। आइये, कुछ खा-पी लें।" आकाश मेघाच्छन्न था। तेज़ हवा चल रही थी। मार्कोवा साथ में जो खाना लाई थी, उसे खा-पीकर आगे बढ़े। कुछ ही क़दम जाने पर एक फाटक मिला, जो बंद था। कार की आवाज सुनकर एक आदमी आया और उसने फाटक खोल दिया। मार्कोवा बोली, "अब हम शीघ्र ही टाल्स्टाय एस्टेट में प्रवेश करनेवाले हैं।"

मैं कुछ सोचने लगा, इतने में कार एक इमारत के सामने जाकर खड़ी हो गई। हम लोगों के उतरते-उतरते एक रूसी सज्जन आ गये। उनका नाम था निकोलाई पूज़िन, जो टाल्स्टाय के घर के संरक्षक थे। बड़े भले और भोले। वह हमें अन्दर ले गये। चलते-चलते बोले, "यह स्थान बड़ा पवित्र और स्मरणीय है। अपने जीवन के ८२ वर्षों में से टाल्स्टाय ने ६० वर्ष यहींपर व्यतीत किये थे। यहींपर उनका जन्म हुआ और यहींपर उनकी समाधि है। इसी मकान में उन्होंने कोई दोसौ पुस्तकों की रचना की, जिनमें 'वार एण्ड पीस,' 'अन्ना करीनीना' आदि को सब जानते हैं। सारा मकान ठीक वैसी ही हालत में रक्खा गया है, जैसा कि टाल्स्टाय के जीवन-काल में था।"

पूज़िन अंग्रेजी नहीं जानते थे। वह रूसी में बोलते थे और मार्कोवा अंग्रेज़ी में

मुझे और चीनी में चीनी लेखकों को समझाती जाती थी। बात करते-करते हम टाल्स्टाय के मकान में प्रविष्ट हुए। नीचे की मंज़िल के सबसे पहले कमरे में टाल्स्टाय का पुस्तकालय था, जिसमें २८ अलमारियों में विविध विषयों तथा भाषाओं की लगभग २२ हज़ार पुस्तकें थीं। टाल्स्टाय खूब पढ़ते थे। इतना ही नहीं, जिन पुस्तकों को पढ़ते थे, उनके नोट्स भी तैयार करते थे। रूसी के अतिरिक्त वह १३ अन्य भाषाएं जानते थे।

पुस्तकालय से कुछ सीढ़ियां चढ़कर उनकी बैठक में पहुंचे। वहीं उनके भोजन का भी कमरा था। उसमें मेज पर रकाबियां आदि ठीक पहले की तरह रक्खी हैं, एक ओर को पियानो। टाल्स्टाय के कुछ चित्र भी हैं। पूजिन ने बताया कि टाल्स्टाय प्रतिदिन ७॥ बजे सोकर उठते थे और अपना कमरा स्वयं साफ़ करके घूमने चले जाते थे। लौटकर कॉफ़ी पीते थे और डाक देखते थे, फिर १॥ बजे तक बराबर काम करते थे। २ बजे भोजन करते थे। वह शाकाहारी थे और उन्होंने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि मेज़ के एक ओर निरामिष-भोजी बैठें, दूसरी ओर मांसाहारी। भोजन के पश्चात् वह आसपास के स्थानों के गरीब किसानों और मजदूरों से, जो वहां आ जाते थे, बातें करते थे, उनकी समस्याएं सुलझाते थे। शाम को कोनेवाली मेज़ के सहारे सोफ़े तथा कुर्सियों पर परिवार के सब लोग बैठ जाते थे और पास्तरनक नामक कलाकार उनका चित्र बनाते थे। महिलाएं उस समय कढ़ाई करती रहती थीं और टाल्स्टाय कुछ पढ़कर सुनाते रहते थे।

घर की अधिकांश चीज़ें टाल्स्टाय को अपने पूर्वजों से मिली थीं। बहुत थोड़ी चीजें खरीदी गईं और वे भी सस्ती-से-सस्ती। टाल्स्टाय कहा करते थे कि हमें बहुत जरूरी हों, वे ही चीजें रखनी चाहिए और अपने ऊपर कम-से-कम खर्च करना चाहिए। सामने की दीवार पर पांच चित्र टंगे हैं, रूस के सुप्रसिद्ध कलाकारों के बनाये हुए। उनमें दो टाल्स्टाय के हैं, एक-एक उनकी पुत्री मरिया तथा तातियाना के और एक उनकी पत्नी सोफ़िया का। टाल्स्टाय संगीत के बड़े प्रेमी थे। दो पियानो उसी कमरे में रक्खे हैं। दूसरी दीवार पर सलीब पर टंगे ईसा का बड़ा ही प्रभावोत्पादक चित्र है। बाद में टाल्स्टाय के नाना और बाबा तथा केन्द्र में दादी के पिता का चित्र है। सामने के दायें कोने में एक ग्रामोफ़ोन रक्खा है।

उसके आगे का कमरा छोटा बैठकखाना है। टाल्स्टाय की मूर्तियों, फर्नीचर तथा चित्रों के बीच एक बड़ा ही आकर्षक चित्र टंगा है, जिसमें टाल्स्टाय बहुत

ही गंभीर मुद्रा में लिखने में व्यस्त हैं। इसी कमरे में सोफिया अपने स्वामी की रचनाओं की साफ़ कापी तैयार किया करती थी। टाल्स्टाय के स्वयं के बनाये कई चित्र भी इस कमरे में टंगे हैं। बड़े-बड़े संगीतज्ञ, साहित्यकार तथा अन्य महापुरुष यहीं आकर टाल्स्टाय से मिलते थे। सुविख्यात रूसी लेखक तुर्गनेव ने यहीं बैठकर उन्हें अपनी 'सौंग ऑव दी ट्राइम्फ़ंट लव' (विजयी प्रेम का गीत) रचना सुनाई थी।

इसके पश्चात् आता है टाल्स्टाय का निजी कमरा। पूज़िन ने बड़ी भावना के साथ कहा, "यह कमरा हमारे लिए बड़ा पवित्र है। हमारे लिए गांधी का नाम भी बड़ा पवित्र है। टाल्स्टाय गांधी के बड़े प्रशंसक थे और गांधी टाल्स्टाय के। दोनों ही महापुरुष थे और दोनों के ही जीवन के उद्देश्य और सिद्धान्त एक थे।" कमरे की छोटी-सी अलमारी में अन्य पुस्तकों के बीच एक पुस्तक है—'एम०के० गांधी—एन इंडियन पेट्रियट इन साउथ अफ्रीका', लेखक हैं जोजेफ़ जे. डोक। इस पुस्तक का टाल्स्टाय ने कितनी बारीकी से अध्ययन किया था, इसका अंदाज़ जगह-जगह पर पैंसिल से लगाये उनके निशानों से किया जा सकता है।

एक ओर को टाल्स्टाय की पढ़ने-लिखने की मेज है, बड़ी मामूली-सी। पास ही एक तख्ते पर कुछ पुस्तकें रखी हुई हैं। अपने जीवन के अंतिम आठ वर्षों में टाल-स्टाय इसी कमरे में बैठकर पढ़ते-लिखते थे। अन्तिम समय में वह डास्टोयस्की का 'ब्रदर कैमेज़ोव' पढ़ रहे थे। इसी मेज पर बैठकर उन्होंने 'वार एण्ड पीस,' 'अन्ना करीनीना' तथा बहुत-सी कहानियां और पत्र लिखे थे। अलमारी की पुस्तकों में ब्रुक गाउज डिक्शनरी की कई जिल्दें रखी हैं और बाइबिल तथा कुरान की एक-एक प्रति भी।

कमरे में बहुत-से चित्र लगे हैं। एक मेज पर लैंप रखा है। एक ओर को कुछ और पुस्तकें हैं, जिनमें डिकिन्स आदि विदेशी लेखकों की कृतियों के अतिरिक्त कुछ दार्शनिक तथा धार्मिक ग्रंथ भी हैं।

उसके बाद टाल्स्टाय का शयनागार है, जिसमें एक पलंग पड़ा है। पलंग के पास अलमारी पर मोमबत्ती, दियासलाई, शीशी तथा कुछ अन्य चीजें रखी हैं। एक मेज पर हाथ धोने के लिए साबुन, बर्तन, सुराही, तौलिया आदि। उसीके निकट कुछ छड़ियां, एक चाबुक और तीन-चार कुर्सियां। तत्तियाना, सोफिया, और टाल्स्टाय के डाक्टर मकबिस्की के चित्र हैं।

आगे का सोफिया का कमरा मालकिन के स्वभाव के अनुरूप वैभव से परिपूर्ण

है। काफ़ी सामान है उसमें। एक पलंग पड़ा है, जिसपर ७५ वर्ष की अवस्था में सोफ़िया ने, सन् १९१९ में, इस संसार से विदा ली थी। पूज़िन ने बताया कि सोफ़िया को इस बात का परम संतोष था कि उसका अपना घर है। उसके १३ बच्चे हुए। मृत्यु के समय तक वह दादी-परदादी हो चुकी थी, उसके २८ नाती-पोते तथा एक पड़पोता था। पलंग से सटी मेज पर कुछ किताबें रक्खी हैं और टोकरी में कढ़ाई का सामान। एक ओर की दीवार पर हाथ में बाइबिल लिये ईसा का चित्र है।

बराबर के कमरे में टाल्स्टाय के सेक्रेटरी निकोलाई गूसिफ़ रहा करते थे। वह अभी जीवित हैं और मास्को में रहकर टाल्स्टाय की विस्तृत जीवनी तैयार कर रहे हैं। टाल्स्टाय इसी कमरे में अपनी डाक देखते थे। उसके पार्श्व के कमरे में एक छोटा-सा पुस्तकालय है।

नीचे की मंजिल के जिस कमरे में हम सबसे पहले गये थे, वह बड़े महत्व का है। उसका उपयोग कई प्रकार से होते-होते अंत में वह अध्ययन-कक्ष बना। उसी कमरे में टाल्स्टाय को 'वार एण्ड पीस' लिखने की प्रेरणा हुई। यहींपर उन्होंने अपनी रचनाओं के ५५९ पात्रों की कल्पना की। एक चित्र में वह आरामकुर्सी पर अधलेटे विचार-मग्न दिखाई देते हैं। इसी कमरे के एक भाग में टाल्स्टाय के डाक्टर मकविस्की सो रहे थे, जबकि २८ अक्तूबर १९१० को, सबेरे ४ बजकर १० मिनट पर टाल्स्टाय ने चुपके से आकर उन्हें जगाया और उनके साथ गृह-त्याग कर दिया, कभी न लौटने के लिए। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। निविड़ अंधकार में घोड़ा-गाड़ी को तैयार कराकर वह चल पड़े और ७ किलोमीटर पर शोकीनो स्टेशन पर पहुंचे। वहां से रेल में अज्ञात दिशा में चल पड़े। उनकी वृद्ध काया शीत को और यात्रा के श्रम को सहन न कर सकी। कोई २०० किलोमीटर चलने पर उनकी तबीयत बिगड़ गई, निमोनिया हो गया। डाक्टर ने विवश होकर उन्हें अस्तापोवो नामक छोटे-से स्टेशन पर उतार लिया। वहीं स्टेशन-मास्टर के यहां ७ नवम्बर १९१० को इस मनीषी का देहान्त हो गया। उनकी स्मृति में अब उस स्टेशन का नाम 'लियो टाल्स्टाय' हो गया है। मृत्यु के समय परिवार के लोग मौजूद थे, बहुत-से मित्र उपस्थित थे। सब टाल्स्टाय से मिल सकते थे, लेकिन सोफ़िया नहीं, क्योंकि उससे न बनने के कारण ही तो उन्होंने घर छोड़ा था। आखिर सोफिया का जी न माना और जब वह अन्दर गई, टाल्स्टाय अन्तिम सांस ले रहे थे।

इस कमरे के बराबर के कमरे की चर्चा टाल्स्टाय ने अपने 'अन्ना करीनीना' उपन्यास में की है। इसी कमरे में उन्होंने 'माई कन्फैशन' लिखा। तुर्गनेव, गोर्की आदि लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार इसी कमरे में ठहरे। अस्तापोवो से लाने के बाद टाल्स्टाय का शव इसी कमरे में एक मेज पर रक्खा गया। हज़ारों नर-नारी पंक्तिबद्ध होकर एक द्वार से अन्दर आये और अपने महान् कलाकार के दर्शन करके बाहर चले गये।

टाल्स्टाय ने अपने जीवन-काल में समाधि के लिए स्थान का निर्देश कर दिया था और यह भी आदेश दे दिया था कि उनकी समाधि पर कोई स्मारक न बनाया जाय।

घर देखने के बाद हम लोग बाहर आये तो पेड़ों के बीच की जगह की ओर संकेत करते हुए पूजिन ने बताया कि यहां वह मकान था, जिसमें टालस्टाय का जन्म हुआ था। पुराना होने से वह मकान टूट गया और उसका सामान नये मकान के बनाने में काम आ गया। कुछ ही कदम पर वह स्कूल देखा, जो टाल्स्टाय ने यास्नाया पोलियाना गांव के किसानों के बच्चों को पढ़ाने के लिए खोला था और उनके लिए बहुत-सा साहित्य तैयार किया था। अब वहां संग्रहालय है।

घर से कोई दो फर्लांग पर घने वन के बीच टाल्स्टाय की समाधि है, नितान्त निर्जन स्थान पर। वहां जाने के लिए मार्ग बड़ा मनोरम है। दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे पेड़ हैं।

समाधि पर पहुंचे तो उसकी सादगी और पवित्रता को देखकर श्रद्धा से सिर झुक गया। इधर-उधर से मिट्टी समेटकर छः फुट लम्बी समाधि बना दी गई है। उसके इर्द-गिर्द चिरिगोजा के नौ पेड़ हैं, पांच बड़े और चार छोटे। बेल की बाड़ी है। समाधि पर कुछ फूल रक्खे थे। शायद किसीने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की होगी। समाधि के दर्शन करते समय मुझे टाल्स्टाय की 'आदमी को कितनी जमीन चाहिए ?' कहानी याद आ गई। उसमें उन्होंने बताया है कि मनुष्य जीवनभर इतनी आपा-धापी करता है, पर अन्त में छः फुट, केवल छः फुट भूमि; उसके काम आती है। जिसने अपनी समस्त रचनाओं में अपरिग्रह की महिमा गाई, वह मृत्यु के बाद भी किसी वैभवशाली स्मारक का समर्थन कैसे कर सकता था !

आस्ट्रिया के सुविख्यात लेखक स्टीफ़न ज़्विग ने वहां की यात्रा करके अपने आत्म-चरित (वर्ल्ड ऑव यस्टरडे) में उसका बड़ा ही यथार्थ चित्रण किया है। वह लिखते हैं :

"इस समाधि पर न कोई चिह्न है, न कोई नाम, और उस महापुरुष की कब्र वैसी ही बनी हुई है, जैसी किसी आवारे फक्कड़ की हो या किसी अज्ञात सिपाही की। कोई भी आदमी वहां बिना रोक-टोक के पहुंच सकता है। यहां कोई चौकी-पहरा नहीं है, न कोई ताला-कुंजी। मुक्त वायु उस समाधि पर मानों ईश्वरीय संदेश सुनाती है। वहां किसी भी प्रकार का शोरगुल नहीं है। कोई भी यात्री वहां से गुजर सकता है। उसे पता लगेगा तो केवल इतना ही कि वहां कोई मामूली रूसी आदमी रूसी मिट्टी में गड़ा हुआ है। न तो नेपोलियन की कब्र को, न महाकवि गेटे की समाधि को और न वैस्टमिन्स्टर एबे के समाधि-स्थल को देखकर ऐसे भाव हृदय में उठते हैं, जैसे टाल्स्टाय की इस समाधि के दर्शन करके—जो उस शांत तपोवन में विद्यमान है, जो स्वयं मौन है, नामहीन, जो वायु का सन्देश सुनती है, पर जो स्वयं न तो बोलती है, न कुछ सन्देश सुनाती है।"

पूजिन ने बताया कि सन् १९४१ में जब नाज़ी सेनाओं ने इस स्थान पर आक्रमण किया तो यहां के ११३ पेड़ काट डाले और अपने ५७ मृत अफसरों को यहीं-पर समाधिस्थ कर दिया। बाद में उनके शव हटाये गए। उन्होंने यह भी बताया कि नाज़ियों ने ४५ दिन तक टाल्स्टाय के घर को अपने कब्जे में रक्खा, उसे अस्तबल बना दिया और कई कमरों में आग लगा दी। वह तो अच्छा हुआ कि नाज़ी आक्रमण की सूचना पहले ही मिल गई थी, जिससे बहुत-सा सामान वहां से हटा दिया गया था। नाज़ियों के चले जाने के बाद सारे कमरे यथापूर्व कर दिये गए, सारा सामान ज्यों-का-त्यों रख दिया गया। फिर भी सौ-सवासौ चीजें जर्मन चुराकर ले ही गये।

सोफ़िया की समाधि उसके स्वामी के निकट नहीं है। पूजिन ने बताया कि वह वहां से कोई २॥ किलोमीटर पर कोन्चेकोव्स्की स्थान पर है। वहीं टाल्स्टाय के माता-पिता की समाधियां हैं। टाल्स्टाय के परिवार में अब उनकी एक पुत्री बची है एलेक्जैण्ड्रा, जो अमरीका में रहती है। ततियाना अपनी क्षयग्रस्त लड़की का इलाज कराने इटली गई थी, वहीं मर गई। सर्गी का देहान्त सन् १९४७ में मास्को में हुआ। वह मास्को विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था। इलिया का १९३३ में अमरीका में, लियव का १९४४ में स्विट्जरलैंड में, आंद्री का १९१६ में पीट्रोग्राड में और मिखायु का १९४४ में मारोको में। मरिया १९०६ में टाल्स्टाय के सामने ही चली गई थी।

टाल्स्टाय का समूचा जीवन संघर्ष में बीता। अपने सिद्धान्त के अनुसार वह गरीबी, सादगी और सचाई का जीवन जीना चाहते थे, लेकिन पारिवारिक उलझनें उन्हें दूसरे ही रास्ते पर चलने के लिए विवश करती थीं। वह निरन्तर आंतरिक तथा बाह्य परिस्थितियों से जूझते रहे। उनके सामने जीवन का आदर्श स्पष्ट था और उन्होंने उसकी ओर बढ़ने का बराबर उद्योग किया। अनेक कष्ट सहे, पर अपने विचारों पर दृढ़ रहे। गांधीजी ने २० सितम्बर सन् १९२८ के 'हिन्दी नवजीवन' में लिखा था-- "टाल्स्टाय की सादगी अद्भुत थी। बाह्य सादगी तो थी ही। वह अमीर-वर्ग के मनुष्य थे। इस संसार के सभी भोग उन्होंने भोगे थे। धन-दौलत के विषय में मनुष्य जितनी इच्छा रख सकता है, उतना उन्हें मिला था। फिर भी उन्होंने भरी जवानी में अपना ध्येय बदला। दुनिया के विविध रंग देखने पर भी, उसके स्वाद चखने पर भी, जब उन्हें प्रतीत हुआ कि इसमें कुछ नहीं है तो उससे मुंह मोड़ लिया और अन्त तक अपने विचारों पर पक्के रहे। इसीसे मैंने एक जगह लिखा है कि टाल्स्टाय इस युग की सत्य की मूर्त्ति थे। उन्होंने सत्य को जैसा माना, वैसा ही पालने का उग्र प्रयत्न किया। सत्य को छिपाने या कमजोर करने का प्रयत्न नहीं किया। लोगों को दुःख होगा या अच्छा लगेगा कि नहीं, इसका विचार किये बिना ही उन्हें जो वस्तु जैसी दिखाई दी, वैसी ही कह सुनाई।"

आगे चलकर वह फिर कहते हैं, "टाल्स्टाय अपने युग के लिए अहिंसा के बड़े भारी प्रवर्तक थे। अहिंसा के विषय में परिश्रम के लिए जितना साहित्य टाल्स्टाय ने लिखा है, जहांतक मैं जानता हूं, उतना हृदय-स्पर्शी साहित्य किसी दूसरे ने नहीं लिखा है--उससे भी आगे जाकर कहता हूं कि अहिंसा का सूक्ष्म दर्शन जितना टाल्स्टाय ने किया था और उसका पालन करने का जितना प्रयत्न टाल्स्टाय ने किया था, उतना प्रयत्न करनेवाला आज हिन्दुस्तान में कोई नहीं। ऐसे किसी आदमी को मैं नहीं जानता।"

टाल्स्टाय की एक और विशेषता की ओर गांधीजी ने निर्देश किया है। वह लिखते हैं, "दूसरी एक अद्भुत वस्तु का विचार टाल्स्टाय ने लिखकर और अपने जीवन में उसे ओत-प्रोत करके कराया है। वह वस्तु है 'ब्रैड लेबर'!...जगत् में जो असमानता दिखाई पड़ती है, दौलत और कंगालियत नजर आती है, उसका कारण यह है कि हम अपने जीवन का क़ानून भूल गये हैं। यह कानून 'ब्रैड लेबर' है। गीता के तीसरे अध्याय के आधार पर मैं उसे यज्ञ कहता हूं। गीता ने कहा है कि बिना

यज्ञ किये जो खाता है, वह चोर है, पापी है। वही चीज टाल्स्टाय ने बतलाई है। …उन्होंने कहा है, लोग परोपकार करने के लिए प्रयत्न करते हैं, उसके लिए पैसे खरचते हैं और लकाब लेते हैं, परन्तु ऐसा न करके थोड़ा-सा काम करें, अर्थात् दूसरों के कंधों पर से नीचे उतर जायं तो बस यही काफी है।

"ऐसी बात नहीं है कि टाल्सटाय ने जो कहा, वह दूसरों ने नहीं कहा हो, परन्तु उनकी भाषा में चमत्कार था, क्योंकि जो कहा, उसका उन्होंने पालन किया। गद्दी-तकियों पर बैठनेवाले, मजदूरी में जुट गये, आठ घण्टे खेती का या दूसरी मजदूरी का काम उन्होंने किया। इससे यह न समझें कि उन्होंने साहित्य का कुछ काम ही नहीं किया। जबसे उन्होंने शरीर की मेहनत का काम शुरू किया तबसे उनका साहित्य अधिक सुशोभित हुआ। उन्होंने अपनी पुस्तकों में जिसे सर्वोत्तम कहा है, वह है 'कला क्या है?'—यह उन्होंने इस काल की मजदूरी में से बचे समय में लिखी थी। मजदूरी से उनका शरीर घिसा नहीं और ऐसा उन्होंने स्वयं माना कि उनकी बुद्धि अधिक तेजस्वी हुई।"

समाधि के पास से हटने को जी नहीं चाहता था। वहां का सारा वायुमंडल इतना पुनीत था कि हम सब क्षणभर के लिए अपनेको भूल गए। पूज़िन की आंखें गीली हो रही थीं और हमारे हृदयों में भावना का सागर लहरा रहा था।

समाधि को प्रणाम कर जब हम चले तो ऐसा लग रहा था, मानों कोई बहुत ही मूल्यवान निधि पीछे छूट गई हो।

लौटते में पुस्तकालय में गये। वहां के अधिकारी हमसे मिले। बड़े भले लोग थे। उन्होंने टाल्स्टाय का बहुत-सा साहित्य भेंट में दिया। वहां से चले तो आगे वह तालाब मिला, जिसमें जीवन से निराश होकर एक दिन रात को सोफिया कूद पड़ी थी, लेकिन सर्दी के मारे पानी जमा होने के कारण अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकी थी। लौटते समय यास्नाया पोलियाना का छोटा-सा गांव भी देखा, जिसकी कोई दो हजार की बस्ती है। मार्कोवा ने बताया कि अब तो इस गांव का बहुत विकास हो गया है। स्कूल, पुस्तकालय, अस्पताल खुल गये हैं; लेकिन टाल्स्टाय के जमाने में ये सब सुविधाएं नहीं थीं।

: १२ :

मास्को में टाल्स्टाय का घर

मास्को में जुबोव्स्काया स्क्वायर के मध्य में गर्व्यूलोव शिल्पी की बनाई टाल्स्टाय की एक विशाल मूर्ति है। इसी स्क्वायर के निकट से एक सड़क जाती है, जिसका नाम है लियो टाल्स्टाय स्ट्रीट। ट्राम या बस में अथवा पैदल जाते हुए दर्शक को साफ दिखाई दे जाता है कि वह मुहल्ला मामूली हैसियत के लोगों का है। आडम्बरहीन मकान, ऊबड़-खाबड़ सड़क। लेकिन इसी सड़क पर एक महत्वपूर्ण स्थल है, जिसकी यात्रा किये बिना मास्को-प्रवास पूरा नहीं माना जा सकता। यह स्थल है महर्षि टाल्स्टाय का वह मकान, जिसमें यास्नाया पोलियाना जाने से पूर्व सन् १८८५ से लेकर १९०१ तक वह रहे थे। यह मकान उन्होंने सन् १८८२ में खरीदा था। उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी ने इसे बेच दिया। सन् १९२९ में उसका राष्ट्रीयकरण कर लिया गया। अब वह ठीक उसी प्रकार सुरक्षित है, जिस प्रकार वह टाल्स्टाय के समय में था।

मकान का फाटक प्रायः बंद रहता है। लोगों के आने-जाने के लिए बड़े फाटक की बगल में एक छोटा-सा प्रवेश-द्वार है। उसमें होकर जब हम घर के प्रांगण में खड़े हुए तो बहुत-सी बातें मन में उग गईं। हमारी परिचायिका ने बताया कि सन् १८०७ में जब इस मकान का निर्माण हुआ था तब यह बहुत छोटा था। केवल एक मंजिल थी। स्वयं टाल्स्टाय ने ऊपर की मंजिल बनवाई।

मकान में घुसते ही सबसे पहले हम भोजन के कमरे में पहुंचे, जिसमें मेज पर रकाबियां, पानी की सुराही तथा अन्य वस्तुएं रक्खी थीं। सामने एक बड़ी घड़ी लगी थी, जिसे टाल्स्टाय की स्त्री सोफिया आंद्रीवना ने खरीदा था। उस घड़ी की विशेषता यह है कि उसमें घंटे बजते समय पक्षी का-सा कलरव सुनाई देता है। इसी कमरे में टाल्स्टाय की लड़की तातियाना का बनाया अपनी बहन मरिया इवोवना का बड़ा ही मनोहारी तैलचित्र है। मरिया टाल्स्टाय की सबसे प्रिय लड़की थी।

ततियाना अच्छी चित्रकार थी। उसकी कुशल तूलिका ने मरिया की छवि को ज्यों-का-त्यों अंकित कर दिया है।

भोजन के इस कमरे से सटा बाहर की ओर एक कमरा है, जिसमें टाल्स्टाय का बड़ा लड़का सर्गी रहता था। उसमें पलंग, लैंप आदि यथापूर्व रक्खे हैं। सामने दीवार पर रूस के उच्चकोटि के कलाविद रेपिन द्वारा निर्मित ततियाना का प्लास्टर ऑव पेरिस का चित्र है। पलंग पर एक कवर पड़ा है, जिसपर सोफिया के हाथ की की हुई सुन्दर कलापूर्ण कढ़ाई है।

भोजन के कमरे से अंदर की ओर का कमरा शयनागार के रूप में काम आता था। उसमें दो पलंग पड़े हैं, बराबर-बराबर। एक टाल्स्टाय का, दूसरा सोफिया का। दोनों एक-दूसरे से सटे हुए हैं। उनके बिस्तरों के कवर भी सोफिया के तैयार किये हुए हैं। मकान में पानी तथा बिजली की व्यवस्था नहीं थी। टाल्स्टाय लैम्प जलाकर पढ़ते-लिखते थे और स्वयं जाकर मास्को नदी से पानी लाते थे। सोने के कमरे में एक मेज पर पानी का बर्तन रक्खा है।

इसी कमरे में एक सोफा पड़ा है और कुछ कुर्सियां। एक ओर को छोटी-सी मेज लगी है, जो सोफिया को अपने किसी मित्र से भेंट में मिली थी और जिसपर बैठकर वह टाल्स्टाय की रचनाओं की कापियां किया करती थी। दीवार पर रूसी कलाकार गेय का बनाया सोफिया का तैल-चित्र है। गोद में लड़की अलेक्जैण्ड्रा है।

इसके बाद टाल्स्टाय के सबसे छोटे लड़के ईवानिया का कमरा है। अपने पिता का वह बहुत ही लाड़ला बेटा था, बड़ा प्रतिभाशाली। टाल्स्टाय कहा करते थे कि वह कुशाग्र बुद्धि का बड़ा होनहार बालक है और आगे चलकर वह उनका साहित्यिक उत्तराधिकारी बनेगा। बहुत छोटी उम्र में उसने एक कुत्ते की कहानी लिखी था, जो टाल्स्टाय को बहुत पसंद आई थी। लेकिन भगवान ने उस बालक को ७वर्ष की अवस्था में ही इस दुनिया से उठा लिया। उसकी सारी वस्तुएं, खेल-खिलौने जैसे-के-तैसे रक्खे हैं।

उसके पास के कमरे में घर के बच्चों की कक्षा लगा करती थी। उसमें एक मेज के सहारे कई कुर्सियां पड़ी हैं। उसके निकट का कमरा वस्तु-भंडार था। उसकी बगल में आंद्री का कमरा है। उसके बराबर का कक्ष बड़ा ही कलापूर्ण है। उसमें ततियाना रहा करती थी। ततियाना के स्वयं के बनाये सुन्दर चित्रों के अतिरिक्त रूस के बहुत-से नामी कलाकारों की कृतियों को उसमें स्थान दिया गया है। मुख्यस्कोई

की बनाई टाल्स्टाय की एक मूर्ति सामने रक्खी है। ततियाना की आदत थी की जब उसके यहां कोई बड़ा आदमी आता था तो मेजपोश पर उसके हस्ताक्षर करा लेती थी और बाद में उसे काढ़ लेती थी। उसकी इस दूरदर्शिता से आज टाल्स्टाय, सोफिया, गेय, रेपिन आदि के ६६ हस्ताक्षर मेजपोश पर हैं। बराबर के कमरे में समोवार आदि सामान है।

दूसरी मंजिल के लिए थोड़ी-सी सीढ़ियां चढ़नी होती हैं। सीढ़ियों पर एक निर्जीव भालू हाथ में तश्तरी लिये खड़ा है। यह भालू सोफिया को भेंट में मिला था। टिकटियों पर सजावट की दृष्टि से कुछ टोकरियां रक्खी हैं।

ऊपर पहुंचते ही सबसे बड़ा एक हॉल आता है, जिसमें भोजन की मेज लगी है। जब मेहमान अधिक हो जाते थे तो सब लोग इसी कमरे में भोजन करते थे। सांस्कृतिक कार्यक्रम भी यहीं हुआ करते थे। एक ओर को सोफा तथा कुछ कुर्सियां पड़ी हैं। एक पियानो रक्खा है। टाल्स्टाय पियानो बड़ा अच्छा बजाते थे। उसपर बजाने के लिए उन्होंने स्वयं कुछ गीत लिखे थे। सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ बीथोविन के गीत भी वह प्राय: बजाया करते थे। उनका परिवार बड़ा ही संगीत-प्रेमी था। लड़का सर्गी अच्छा गाता था, मरिया और ततियाना गिटार बजाने में निपुण थीं। संगीतज्ञ शेलियेपीन के गीत टालस्टाय को विशेष प्रिय थे। वह प्राय: स्वयं आकर अपने गीत सुनाया करते थे। उनका कण्ठ बहुत ही मधुर था।

सोफे के पास मेज पर शतरंज का सामान रक्खा है। टाल्स्टाय को शतरंज का बड़ा शौक था, लेकिन वह अच्छा नहीं खेलते थे। जीतने पर उन्हें बड़ी खुशी होती थी, हारने पर झुंझला जाते थे।

हाल के पार्श्व में ड्राइंग रूम है, जिसमें सोफिया मिलने आनेवालों का स्वागत करती थी। उसमें फर्नीचर बड़ा मामूली है। बांई दीवार पर तीन चित्र लगे हैं—सिरोफ का बनाया सोफिया का, रेपिन का बनाया ततियाना का और गेय का बनाया मरिया का। तीनों ही चित्र बड़े अच्छे हैं।

टाल्स्टाय शिकार के बड़े शौकीन थे। एक बार वह भालू का शिकार खेलने गये। अकस्मात भालू उनपर झपटा और टाल्स्टाय का सिर तथा माथा उसने अपने मुंह में ले लिया। यदि उसी समय अस्तश्को नामक व्यक्ति वहां न आ गया होता और उसने भालू को गोली से न उड़ा दिया होता तो सचमुच बड़ा अनर्थ हो जाता। भालू की चोट के दो निशान टाल्स्टाय के माथे पर अंत तक बने रहे। उस भालू की खाल

आज भी बड़ी मेज के नीचे बिछी है और उस घटना की याद दिलाती है।

ड्राइंग रूम से सटे कमरे में मरिया रहती थी। मरिया को तड़क-भड़क पसंद न थी। वह अपने पिता की भांति बड़े सीधे-सादे ढंग से रहती थी। उसके कमरे में आडम्बर का नाम-निशान नहीं है। इसी कमरे में बैठकर वह अपने महान् पिता की रचनाओं की प्रतिलिपि करने में लगी रहती थी और उनके नाम आये पत्रों का उत्तर लिखती रहती थी। उसकी डाक्टर बनने की बड़ी इच्छा थी, लेकिन वह पूरी न हो सकी। विवाह के कुछ समय पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो गई।

मरिया के कमरे के बाद घर के दो सेवकों का कमरा है। टाल्स्टाय प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग स्थान के पक्षपाती थे, लेकिन स्थानाभाव के कारण दो सेवक एक ही कमरे में रहते थे। उसके सामने की अलमारी में सोफिया की पोशाकें टंगी हैं। उनमें की सफेद पोशाक सोफिया को बहुत पसंद थी। फिर आता है मेह-मानों का कमरा। उसमें टाल्स्टाय के विशेष अतिथि ठहरा करते थे।

दूसरी पंक्ति में सबसे पहला कमरा टाल्स्टाय के प्रधान सेवक सिरोकोफ का है। वह १८ वर्ष तक अपने स्वामी के साथ रहा। अपना एक चित्र उसे भेंट करते हुए टाल्स्टाय ने लिखा—"अपने साथी को।"

मकान का सबसे छोटा कमरा टाल्स्टाय का अपना था। उसीमें उनकी मेज-कुर्सी पड़ी है, बड़ी ही साधारण-सी। कुर्सी तो बहुत ही छोटी है। टाल्स्टाय कागजों को आंखों के नजदीक रखकर लिखते-पढ़ते थे। इसी कमरे में उन्होंने अपनी ९० रचनाएं तैयार कीं। दस वर्ष के परिश्रम से 'रिजरेक्शन' का यहीं सृजन हुआ। मेज पर पेपरवेट, कलमदान, होल्डर और उनका स्टैण्ड आदि सब पहले की तरह रक्खे हैं। निकट ही दीवार में एक तख्ता लगा है। मेज के सहारे लिखते-लिखते जब टाल्स्टाय थक जाते थे तो खड़े होकर इसी तख्ते पर कागज रखकर लिखते थे।

कमरे के बाहर एक छोटी-सी कोठरी में दो जोड़ी जूते रक्खे हैं। उनमें से एक जोड़ी स्वयं टाल्स्टाय ने बनाकर ततियाना के पति को भेंट में दी थी। उसने उसे टाल्स्टाय की रचनाओं की बारह जिल्दों के साथ अलमारी में रख दिया और उसपर लिख दिया—'टाल्स्टाय की तेरहवीं जिल्द।' जब टाल्स्टाय को इसका पता चला तो वह बड़े दुखी हुए। उन्होंने कहा—"यह बड़ा अनुचित है। पुस्तकें पढ़ने के काम आती हैं, जूते पहने जाते हैं। पुस्तकों के साथ जूतों का रखना बहुत ही बुरा है और नामुनासिब भी है।"

वहीं एक ओर टाल्स्टाय की साइकिल रक्खी है । इस साइकिल का उपयोग वह ६७ वर्ष की अवस्था तक करते रहे। वैसे साइकिल पर चढ़ना उन्हें अच्छा नहीं लगता था, क्योंकि वह मानते थे कि साइकिल के चलने से सड़क पर पैदल चलने-वाले लोगों को असुविधा होती है।

टाल्स्टाय की सबसे प्रिय सवारी थी घोड़ा। ८० साल की उम्र तक वह घोड़े पर चढ़ते रहे। एक बार घुड़सवारी में उनकी टांग में चोट आ गई थी और उन्हें कुछ दिन बैसाखी का प्रयोग करना पड़ा था । यह बैसाखी आज भी यास्नाया पोलियाना में सुरक्षित रक्खी है । मकान में घुसते ही दांई ओर को संरक्षक की कोठरी के बाहर की दीवार पर जो चित्र लगा है, उसमें टाल्स्टाय अश्वारोही के रूप में हैं । पैदल चलना भी उन्हें बहुत अच्छा लगता था। ६० वर्ष की आयु में वह एक बार यास्नाया पोलियाना से पैदल चलकर मास्को आये थे । बाद के एक कमरे में उनकी क्राकरी रक्खी है।

बस यही है वह मकान, जिसमें उस टाल्स्टाय ने अपने जीवन के १६ वर्ष व्यतीत किये थे । नीचे एक छोटा-सा उद्यान है, जिसमें मकान के निकट ही एक छोटे आकार का निकुंज जैसा कमरा बना है। जाड़े के दिनों में इसी कमरे में बैठकर टाल्स्टाय लिखा करते थे। एकान्त में होने के कारण वहां वह एक तो शोर-गुल से बच जाते थे, दूसरे उद्यान की हरियाली को भी देख सकते थे।

मकान के प्रांगण में एक और दुमंजिला मकान है। जिन दिनों ऊपर की मंजिल बन रही थी, टाल्स्टाय तथा उनके परिवार के सदस्य इसी मकान में रहे थे। इस मकान के सामने मोटरखाने जैसे तीन बड़े कमरे हैं, जिनमें से एक में पुस्तकें हैं, दूसरे में टाल्स्टाय का घोड़ा बंधता था।

टाल्स्टाय के जीवन-काल में न जाने कितनी विभूतियां उस मकान में आईं। चेखव जैसे महान् साहित्यकार आये, रूस के अमर कलाकार गोर्की के साथ टाल्स्टाय की यहींपर प्रथम भेंट हुई, शेलियेपीन तथा रोबिन्स्टीन जैसे संगीतज्ञ ने अपने मधुर कंठ से न जाने कितनी बार वहां के वायुमंडल को मुखरित किया। रेपिन तथा गेय जैसे कलाविदों ने इसी मकान में अपनी तूलिका से टाल्स्टाय तथा उनके कुटुम्बी-जनों की चिर नवीन तथा चिरस्मरणीय छवियां अंकित कीं।

सन् १९२० में लेनिन आये तबतक टाल्सटाय महाप्रस्थान कर चुके थे। लेनिन टाल्स्टाय के बड़े प्रशंसक थे और उन्हें इस बात का बड़ा गर्व था कि उन

जैसा ऊंचे दर्जे का कलाकार उनके देश में उत्पन्न हुआ। टाल्स्टाय की कृतियों में 'वार एण्ड पीस' तथा 'अन्ना करीनीना' उन्हें अत्यन्त प्रिय थे। टाल्स्टाय के विषय में लेनिन ने सात लेख लिखे, जो आज भी उपलब्ध हैं।

सारा मकान देखने के बाद मैं बाहर अहाते में आकर क्षणभर चुपचाप खड़ा रहा। तरह-तरह के विचार मन में उठे—काल कितना क्रूर है। वह सबकुछ लील जाता है। इस हरे-भरे घर को उसने कितना सूना कर डाला! आने-जानेवाले यात्री तक भीतर सावधानी से पैर रखते हैं कि कहीं वहां की समाधि भंग न हो जाय। भोजन की मेजें खानेवालों की राह देखती हैं, पियानो अपनी मधुर ध्वनि सुनाने के लिए तड़पता है। हसरत से आज भी बयार बहती है, पर उसके स्पर्श से आनन्दित होनेवाला हृदय कहां है। पुष्प आज भी खिलते हैं, पर उन्हें दुलारनेवाले हाथ और प्यार से उन्हें देखनेवाली आंखें कहां हैं!

जब मैं इन विचारों में डूब रहा था, उद्यान के किसी वृक्ष पर पक्षी चहचहा उठा, मानो कह रहा हो—यह घर आज जितना समृद्ध है, उतना शायद ही कभी रहा हो। उसका कोना-कोना आज उस भावना से परिपूर्ण है, जो कभी मरती नहीं और जो इन्सान को हमेशा जीवित रखती है।

: १३ :

टाल्स्टाय-संग्रहालय

मास्को के संग्रहालयों में टाल्स्टाय-संग्रहालय का विशेष स्थान है। क्रोपाटकिन स्ट्रीट पर निर्मित इस संग्रहालय की स्थापना टाल्स्टाय की प्रथम पुण्य-तिथि पर (७ नवम्बर १९११ को) हुई थी। १९१७ की क्रांति से पूर्व उसका रूप बड़ा छोटा था। टाल्स्टाय के कुछ मित्रों, संबंधियों तथा प्रशंसकों ने उनकी कतिपय चीजों का संग्रह करके वहां रख दिया था। सन् १९३९से उसके विस्तार का कार्य विधिवत प्रारंभ हुआ। सोवियत सरकार ने न केवल अपने इस महान लेखक की रचनाओं के अन्वेषण की व्यवस्था की, अपितु उनके व्यापक प्रचार की भी। फलतः टाल्स्टाय के जीवन-विषयक जितनी सामग्री मिल सकती थी, इकट्ठी की गई और उनकी कृतियों का भी संग्रह किया गया।

आज रूस के सबसे बड़े साहित्यिक संग्रहालयों में इस संग्रहालय की गणना होती है। उसके कई विभाग हैं। एक विभाग में टाल्स्टाय की पांडुलिपियां हैं, दूसरे में उनके चित्र तथा अन्य वस्तुएं, तीसरे में पुस्तकालय आदि-आदि। एक विभाग द्वारा विशेषज्ञों की यात्राओं तथा भाषणों का प्रबन्ध किया जाता है।

सबसे पहले मैं चित्रोंवाले विभाग में गया। टाल्स्टाय के जन्म (२८ अगस्त १८२८) से लेकर अन्तिम समय तक की झांकी इस विभाग के चित्रों में प्रस्तुत की गई है। सर्वप्रथम यास्नाया पोलियाना का वह घर दिखाया गया है, जिसमें टाल्स्टाय पैदा हुए थे। जब वह केवल नौ साल के थे तभी उनके पिता निकालस टाल्स्टाय चल बसे थे। माता मरिया टाल्स्टाय का विछोह तो उन्हें डेढ़ वर्ष की अवस्था में ही सहन करना पड़ा। माता-पिता, दोनों के चित्र वहां लगे हैं, जिनसे पता चलता है कि टाल्स्टाय का जन्म कैसे कुल में हुआ था।

प्रारंभिक शिक्षा के बाद वह कजान विश्वविद्यालय में गए, पर वहां की शिक्षा से उन्हें संतोष न हुआ। १८५० में वह कोकेशस पहुंचे। १८५२ में उनकी चाइल्ड-

हुड (बचपन) और १८५७ में 'यूथ' (युवावस्था) नामक रचनाएं प्रकाशित हुईं। कोकेशस के अनेक चित्रों के बीच टाल्स्टाय की स्वयं की बनाई कई तस्वीरें लगी हुई हैं। कोकेशस में उन्होंने युद्ध-सम्बन्ध कई कहानियां लिखीं।

१८५४ में वह सेबेस्टपोल की रक्षा के लिए क्रीमिया गये। वह युद्ध १८५३ से १८५६ तक चला। उस काल में लिखी सेबेस्टपोल से संबंधित कई रचनाएं उपलब्ध हैं। १८५५ में वह पीटर्सबर्ग लौट आये। अनन्तर कई देशों में घूमे। १८५७ में पेरिस गये। वहां का कला-भवन, लूव्र उन्हें पसन्द आया, लेकिन स्टाक एक्सचेंज अच्छा नहीं लगा। उसी वर्ष वह स्विट्जरलैंड गये। लोजान में उन्होंने एक कहानी लिखी। जर्मनी के ड्रेजदन नगर की आर्ट गैलरी उन्हें रुचिकर लगी। वह इंग्लैंड गये। वहां का पार्लमिंट भवन उन्हें नहीं भाया। वह स्वयं लिखते हैं कि जिस समय पार्लमिंट के सदस्य भाषण दे रहे थे, उनकी इच्छा हुई कि नींद ले लें।

१८५७ में उन्होंने यास्नाया पोलियाना में किसानों के बच्चों के लिए स्कूल खोला। बच्चों के उपयोग के लिए ए० बी० सी० नामक पुस्तक तैयार की, जिसके पांच खंडों में वर्णमाला से लेकर आगे तक के पाठ दिये हुए हैं। १८६२ में 'यास्नाया-पोलियाना' नामक पत्र निकाला। उसी वर्ष ३४ वर्ष की अवस्था में एक चिकित्सक की अठारह वर्षीया पुत्री सोफिया आंद्रीवना के साथ उनका विवाह हुआ।

एक कमरे में 'वार एंड पीस' को चित्रित किया गया है, दूसरे में 'रिजरेक्शन' को। इन दोनों कृतियों की प्रमुख घटनाओं को लेकर उनके चित्र बनाये गए हैं, जिससे पुस्तकों के अनेक प्रसंग स्वतः ही दर्शक के हृदय पर अंकित हो जाते हैं। 'अन्ना करीनीना' के भी कई चित्र एक कक्ष में लगाये गए हैं। इस उपन्यास की मुख्य पात्री अन्ना की आकृति का टाल्स्टाय ने जो वर्णन किया है, वह पुश्किन की बहन की आकृति से बहुत मिलता-जुलता है। अतः जहां अन्ना का कल्पित चित्र लगाया है, वहां पुश्किन की बहन के चित्र को भी, तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से, स्थान दिया है। एक कमरे में गिन्सबर्ग की बनाई टाल्स्टाय की बड़ी भावपूर्ण मूर्ति है।

यास्नाया पोलियाना में टाल्स्टाय का 'फ्रूट्स ऑव एन्लाइटनमेंट' सन १८८६ में खेला गया, जिसमें उनके कुटुम्बीजनों ने अभिनय किया। उनका 'पावर ऑव डार्कनैस' (अंधकार की शक्ति) जर्मनी, जापान, इटली, फ्रांस आदि देशों में खेला गया। १९०१ में उन्होंने 'हादजी मुरात' नामक कहानी लिखी।

इस संग्रहालय के चित्रों में टाल्स्टाय के अनेक रूप देखने को मिलते हैं—

बालक, युवक, लेखक, सैनिक, दार्शनिक आदि-आदि। टाल्स्टाय पर लिखी कुछ पुस्तकें भी इसमें प्रदर्शित की गई हैं।

लेकिन संग्रहालय का वह विभाग मुझे बड़ा समृद्ध लगा, जिसमें टाल्स्टाय की पुस्तकें, पत्र तथा पाण्डुलिपियां रक्खी गई हैं। एवेलिन जाइदेशनूर ने, जो १९२४ से वहां काम कर रही हैं, बड़ी आत्मीयता के साथ वह विभाग दिखाया। टाल्स्टाय को भारतीय साहित्य से बड़ी रुचि थी। उन्होंने ५ भारतीय लोक-कथाओं का अनुवाद किया। २६ कहानियों का 'पंचतन्त्र' से। महाभारत तथा भगवद्गीता से सुभाषितों का संग्रह किया। अपनी 'ए० बी० सी' पुस्तक में उन्होंने कई कहानियां 'पचतंत्र' से दी हैं।

टाल्स्टाय ने लगभग १० हजार पत्र बाहर के लोगों को लिखे। रूसी के अतिरिक्त बहुत-से पत्र अंग्रेजी, फ्रेंच तथा जर्मन भाषाओं में हैं। करीब एक लाख साठ हजार शीटें उन्होंने लिखने में इस्तेमाल कीं। दूसरे लोगों ने कोई पचास हजार पत्र टाल्स्टाय को लिखे। ये सब पत्र विभिन्न देशों और भाषाओं के हैं और उस संग्रहालय में वे सब सुरक्षित हैं।

टाल्स्टाय कहा करते थे कि लेखक को अपनी अच्छी-से-अच्छी कृति पाठकों को देनी चाहिए। इसलिए अपनी रचनाओं में वह खूब काट-छांट करते थे। कभी-कभी रचनाओं के प्रारम्भ करने में उन्हें बड़ी कठिनाई होती थी। शुरू करते थे, संतोष नहीं होता था, काट देते थे, फिर लिखते थे, फिर काट देते थे। 'अन्ना करीनीना' का प्रारम्भ उन्होंने १० बार किया, 'वार एंड पीस' का १५ बार, 'रिजरेक्शन' का ११ बार।

समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों होता था। काट-छांट प्रायः तब होती है, जबकि लेखक का दिमाग साफ नहीं होता। टाल्स्टाय ने जो कुछ लिखा है वह बहुत सुलझा हुआ है। उसमें कहीं भी उलझन नहीं है। तब इतनी काट-छांट क्यों होती थी? कदाचित् इसलिए कि पहले उनके जो जी में आता था, लिखते जाते थे, बाद में उसे संवारते थे। अपनी हर रचना वह पहले अपने हाथ से लिखते थे, फिर उनकी पत्नी सोफिया या लड़की मरिया अथवा अन्य कोई उसकी नकल करते थे। टाल्स्टाय फिर उसमें काट-छांट करते थे, पुनः नकल होती थी, पुनः वह लेखक की कलम से रंग जाती थी। टाल्स्टाय कहते थे कि स्थायी महत्त्व की चीज २०-२० बार लिखनी चाहिए। कहते हैं, 'वार एंड पीस' के प्रूफों में जब बेहिसाब काट-छांट होने लगी तो

प्रकाशक बड़े हैरान हुए। उन्होंने टाल्स्टाय से कहा, "जनाब, आप इस तरह संशोधन करेंगे तो आपकी पुस्तक कदापि प्रकाशित नहीं होने की।" टाल्स्टाय ने तत्काल उत्तर दिया, "साहब, आप अच्छी चीज चाहते हैं, तो यह सब आपको सहन करना ही होगा।"

सोफिया या मरिया के धीरज की तारीफ करनी होगी। एक-एक चीज की बार-बार नकल करने में उनपर सचमुच बड़ा जोर पड़ता होगा। कहते हैं, 'वार एंड पीस' जैसी विशाल पांडुलिपि की सोफिया ने ८ या १० बार नकल की थी। पति के साथ उसके झगड़ों की बात कौन नहीं जानता। लेकिन उतने पर भी वह सदैव पति की रचनाओं की पांडुलिपियों की नकल तथा उनके सम्पादन के कार्य में संलग्न रहती थी। टाल्स्टाय खूब लिखते थे। शुरू के दिनों में तो उन्होंने बहुत ही अधिक लिखा।

टाल्स्टाय की सबसे पहली रचना सन् १८५१ में तैयार हुई और १८५२ में छपी। अंतिम रचना आत्मघात से संबंधित थी, जो रूस के बाल-साहित्य के विशेषज्ञ कर्नो चकोवस्की के नाम पत्र के रूप में लिखी गई थी। वह उनकी मृत्यु के ६ दिन पहले तैयार हुई थी। प्रकाशित हुई उनके निधन के बाद, १३ नवम्बर १९१० को 'रैच' नामक पत्र में।

'रिजरेक्शन' उन्होंने २६ दिसम्बर १८८९ को शुरू किया। पूरा करने में दस वर्ष लगे। 'वार एंड पीस' में सात वर्ष (१८६३-१८७०) और 'अन्ना करीनीना' में छः वर्ष (१८७३-१८७८)। पहले उपन्यास की पांडुलिपि में लगभग ७००० शीटें हैं, दूसरे में ५००० और तीसरे में २५००। शुरू करने से लेकर अन्तिम रूप देने तक के सारे कागज सुरक्षित रक्खे गये हैं। उन्हें देखकर पता चलता है कि टाल्स्टाय कितने परिश्रमशील थे। जबतक उन्हें संतोष नहीं हो जाता था, पांडुलिपि को हाथ से नहीं छोड़ते थे। वह कहा करते थे कि मैं अपनी छपी पुस्तकों को नहीं पढ़ सकता, क्योंकि जैसे ही किसी पुस्तक को हाथ में उठाता हूं, उसपर कलम चलने लगती है।

उनकी कृतियों के विश्व की सभी भाषाओं में अनुवाद हुए हैं। वस्तुतः उनकी रचनाएं देश-काल की सीमाओं में आबद्ध नहीं हैं। उनकी कहानियां, उनके उपन्यास उनके निबंध, सबके लिए हैं। उनमें उन तथ्यों का निरूपण है, जो हमेशा ताजे रहते हैं और सबको स्वस्थ मानसिक भोजन प्रदान करते हैं।

एवेलिन ने हमें अन्ना करीनीना, पावर ऑव डार्कनेस, वार एंड पीस आदि

की मूल पांडुलिपियों के कुछ पृष्ठ दिखाये और बड़ी ममता के साथ उनका परिचय दिया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार टाल्स्टाय की एक-एक रचना को इकट्ठा किया गया है और किस प्रकार उनके आधार पर अनुसंधान का कार्य चल रहा है। रूस की सरकार उस सारे साहित्य को विधिवत् रूप से ९० जिल्दों में शीघ्र ही प्रकाशित करने जा रही है। एवेलिन ने यह भी बताया कि वह विभिन्न भाषाओं में अनूदित टाल्स्टाय की पुस्तकों का संग्रह कर रही हैं और बहुत-सी पुस्तकें इकट्ठी भी हो गई हैं।

एवेलिन विगत ३४ वर्षों से उसी काम में लगी हैं। और भी अनेक भाई-बहनें उसमें जुटे हैं। एवेलिन ने कई व्यक्तियों से परिचय कराया। उनकी लगन तथा कार्य-निष्ठा को देखकर हृदय गद्गद् हो गया। एवेलिन ने बताया कि महात्मा गांधी तथा टाल्स्टाय के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह भी उनके यहां सुरक्षित है। उन्होंने दोनों के एक-एक पत्र की फोटो-कापियां हमें दिखाईं। बोलीं; "इन दोनों महापुरुषों ने एक दूसरे से काफी प्रेरणा ली।"

टाल्स्टाय के बारे में भी उन्होंने बहुत-सी सामग्री उस विभाग में एकत्र की है। उसमें ततियाना की डायरी तथा जीवनी प्रमुख है। सारी सामग्री उन्होंने कितनी सावधानी तथा सुरक्षा के साथ रक्खी है, वह देखने की चीज है। लोहे की अलमारियों में उन्हें इतने व्यवस्थित ढंग से रक्खा गया है कि कोई भी चीज मांगिये, तत्काल निकालकर दिखाई जा सकती है और क्या मजाल कि निकालने में किसी कागज को कोई क्षति पहुंचे। कमरे में खिड़कियां तक लोहे की हैं।

मैंने एवेलिन को बताया कि भारत में टाल्स्टाय बड़े लोकप्रिय हैं और उनके प्रशंसकों की संख्या बहुत बड़ी है। लोग उन्हें 'महर्षि टाल्स्टाय' कहते हैं। उनकी रचनाओं के अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुए हैं और हिंदी में उनकी बहुत-सी पुस्तकें उपलब्ध हैं।

इतना सुनकर उन वृद्धा की आंखें चमक उठीं। उनके लिए यह कम उल्लास की बात नहीं थी कि जिस महापुरुष के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर रक्खा है, वह दूसरे देशों में, विशेषकर भारत में, लोगों के दिलों में इस प्रकार अपना घर बनाये हुए है। उन्होंने कहा, "टाल्स्टाय की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से भी होता है कि बाहर से जो भी भाई-बहनें इस नगरी में आते हैं, वे इस संग्रहालय को अवश्य देखते हैं। पर हां, रवीन्द्रनाथ ठाकुर जब मास्को आये तो अकस्मात् उनकी

तबीयत खराब हो गई और वह नहीं आ सके । उन्होंने हमें एक पत्र भेजा कि वह इच्छा होते हुए भी अस्वास्थ्य के कारण संग्रहालय में नहीं आ सकेंगे। उनका वह पत्र हमने सुरक्षित रक्खा है ।"

एवेलिन ने कई हस्तलिखित पृष्ठों की फोटो-कापियां मुझे दीं। इसी प्रकार चित्र-विभाग की संचालिका लोम्यूनोव ने टाल्स्टाय के माता-पिता के चित्रों की एक-एक प्रति भेंट में दी। मैंने उनका आभार माना और जब विदा ली तो एवेलिन मेरे रोकते-रोकते बाहर तक पहुंचाने आईं। चलते-चलते मैंने उनसे कहा, "आप बड़ी भाग्यशालिनी हैं जो निरन्तर ऐसे महापुरुष के संसर्ग में रहती हैं, जिसने दुनिया के जाने कितने लोगों को प्रेरणा दी है और आगे देते रहेंगे।"

: १४ :

कृषि एवं उद्योग-प्रदर्शिनी

मास्को की कृषि तथा उद्योग-प्रदर्शिनी अपने ढंग की निराली चीज है और उसे देखने के लिए दूर-दूर के लोग आते हैं। जब कई मित्रों ने मुझसे उसकी चर्चा की और उसे देखने का आग्रह किया तो मैंने सोचा कि होगी कोई प्रदर्शिनी, जिसमें कृषि तथा उद्योग-धंधों की चीजें दिखाई गई होंगी। लेकिन वहां पहुंचा तो देखता क्या हूं कि वह हमारी सामान्य कल्पना से एकदम भिन्न है। खुले विस्तृत मैदान में सैकड़ों पक्के मण्डप बने हुए हैं, फव्वारे चल रहे हैं और रंग-बिरंगे बल्बों के प्रकाश से प्रदर्शिनी ऐसी जगमगा रही थी कि देखकर तबीयत खुश हो जाती है।

प्रदर्शिनी बारहों महीने रहती है। सारे सोवियत संघों की कृषि तथा उद्योग-धंधों की प्रगति का अध्ययन करना है तो इस प्रदर्शिनी को देख लीजिये। लेकिन घंटे-दो-घंटे में आप चाहें तो उसका पूरा चक्कर भी नहीं लगा सकते। उसे अच्छी तरह देखने के लिए कम-से-कम आठ-दस दिन का समय चाहिए।

पहले दिन जब मैं वहां पहुंचा तो घंटेभर में उसका प्रवेश-द्वार तथा केन्द्रीय मण्डप ही देख सका। द्वार बड़ा विशाल तथा कलापूर्ण है। उसके ऊपर रूस के एक महान शिल्पकार द्वारा निर्मित एक युवक और युवती की धातु की विशाल मूर्ति है। हाथ में आर्थिक समृद्धि का प्रतीक अनाज की बालों का एक पूला है। अन्दर घुसते ही मुख्य मण्डप के ऊपर ३२० फुट की ऊंचाई पर सोने की एक तारिका दूर से ही दर्शकों को दिखाई देती है। फव्वारों की बहार का तो कहना ही क्या!

प्रदर्शिनी का क्षेत्रफल इतना अधिक है कि पैदल घूमकर उसे देखना बड़ा कठिन है। दर्शकों की सुविधा के लिए शासन ने शानदार लारियों की व्यवस्था कर रक्खी है। लारियों के दोनों ओर तथा आगे-पीछे शीशे लगे हैं। थोड़ा-सा पैदल घूमकर और दो-चार मण्डप देखकर, लोग इन लारियों में आ बैठते हैं और उनमें धीरे-धीरे सारी प्रदर्शिनी की परिक्रमा कर लेते हैं। यों लारी में बैठकर देखा तो क्या जा

सकता है, लेकिन इतना अनुमान अवश्य हो जाता है कि प्रदर्शिनी कितनी विशाल है। लारी में बैठे-बैठे कोई-न-कोई यह भी बता देता है कि उसमें क्या-क्या चीजें हैं। पहले दिन मैंने भी लारी में बैठकर एक चक्कर लगाया। बाद में तो कई संध्याएं उसको देखने में व्यतीत कीं। ज्यों-ज्यों देखता गया, उसके प्रति मेरी रुचि बढ़ती गई।

ज़ार के जमाने में रूस कृषि की दृष्टि से बहुत ही पिछड़ा हुआ था। उसका कारण यह था कि बड़े-बड़े सामन्तों और ज़मींदारों ने भूमि का अधिकांश भाग अपने कब्जे में कर लिया था और किसानों को भारी लगान देना पड़ता था। पुराने यंत्रों से खेती होती थी। किसानों के पास इतने साधन ही नहीं थे कि वे मशीनों और अच्छे खाद का उपयोग कर सकें। नतीजा यह कि फसल बहुत थोड़ी होती थी और अधिकांश किसान भूखों मरते थे। लेकिन जब नई शासन-व्यवस्था आई तो जमींदारी-प्रथा का अन्त कर दिया गया और भूमि, वन आदि सब राज्य की सम्पत्ति हो गये। जमींदारों के एकाधिपत्यवाली भूमि किसानों के उपयोग में आने लगी। लगान और ऋण से कृषक मुक्त हुए और अपनी पूरी शक्ति तथा साधनों से वे कृषि के कार्य में लग गये। बंजर भूमि तोड़ी गई, खेतों का आकार बड़ा किया गया, मशीनें काम में लाई गईं, अच्छा खाद जुटाया गया और सामूहिक खेती की व्यवस्था की गई।

जिस समय कृषि में तेजी से प्रगति हो रही थी, नाजी आक्रमण हुए और खेती-बाड़ी को उससे बड़ी क्षति पहुंची। कहते हैं, नाजी सेनाओं ने ९८ हजार सामूहिक फार्मों को, करीब दो हजार राज्यीय फार्मों को तथा ३ हजार मशीन एवं ट्रेक्टर-केन्द्रों को लूटकर नष्ट कर डाला। इतना ही नहीं, लगभग पौने दो करोड़ घोड़ों, भेड़-बकरियों तथा सूअरों आदि को या तो वे मारकर खा गये, या हांक ले गये।

नाजी-उपद्रव शान्त होने पर लोग फिर कृषि की उन्नति में लग गये। उनके परिश्रम से आज उस देश में खाने के लिए गेहूं, मक्का आदि अनाज तथा वस्त्रों के लिए कपास का इतना उत्पादन होता है कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लोगों को किसी दूसरे देश का मुंह नहीं ताकना पड़ता। जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ अन्न तथा कपास के अधिकाधिक उत्पादन पर जोर दिया जा रहा है। सारे देश में हजारों अन्वेषण-केन्द्र तथा प्रयोगशालाएं हैं, जिनमें कृषि की अभिवृद्धि के लिए नये-नये प्रयोग होते रहते हैं।

रूस में कृषि एवं उद्योगों-सम्बन्धी प्रगति का अनुमान उक्त प्रदर्शिनी को देखकर भली प्रकार हो जाता है। यह प्रदर्शिनी ५११ एकड़ भूमि में फैली हुई है। उसमें ३०७ मण्डप हैं। सोवियत यूनियन के प्रत्येक संघ और प्रत्येक ज़िले के अपने-अपने मण्डप हैं, जिनमें अधिकारी लोग अपने यहां के विशेष उत्पादनों का प्रदर्शन करते हैं। अनाज, सागभाजी, फल तथा अन्य वस्तुओं को वे इतने आकर्षक ढंग से सजाते हैं कि दर्शक उनकी कलापूर्णता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। अनाज में मक्का, फलों में अंगूर, साग-भाजियों में टमाटर, खीरे, आलू तथा काशीफल देखते ही बनते थे। तरबूज इतने बड़े कि उस आकार के अन्यत्र शायद ही मिलें। एक मण्डप में अनाज तथा दालों के बीच साबुत मसूर दिखाई दी। मूंगफली भी कई मण्डपों में थीं। जार्जिया के मण्डप में चाय देखी। पर मालूम हुआ कि वह बहुत हल्की किस्म की होती है, फिर भी खूब चलती है।

प्रत्येक मंडप को बड़े ही सुन्दर और सुरुचिपूर्ण ढंग से बनाया गया है और उसके भीतरी भाग को आकर्षक ढंग से सजाया गया है। बड़े-बड़े मानचित्र, फोटो तथा ग्राफ देकर प्रत्येक स्थान के उत्पादन की विशेषताएं समझाने का प्रयत्न किया गया है। हर मंडप में योग्य गाइड रहते हैं, जो दर्शकों की टोलियां बनाकर सब बातें बड़े विस्तार से समझाते हैं।

फसलों की पैदावार को व्यावहारिक रूप से दिखाने के लिए तरह-तरह की फसलों की खेती भी उस प्रदर्शिनी में होती है। एक खेत में मक्के की फसल खड़ी थी। भुट्टे लगे थे। उन्हें देखकर पता चलता था कि किस प्रकार खेती करने से मक्के के इतने बड़े दाने और भुट्टे उन्हें प्राप्त होते हैं। जार्जिया के मंडप के निकट चाय का बगीचा था। वहां ले जाकर गाइड ने हमें बताया कि किस प्रकार वे लोग चाय के पौधों को काटते हैं, जिससे नई कोपलें निकलें और नई कोपलों के निकलने पर वे किस प्रकार उन्हें तोड़ते हैं। कई विशेष मंडपों में गायें तथा भेड़ें दिखाई गई थीं और कुछमें घोड़ों की नस्लें। कुछमें मधुमक्खी-पालन की व्यवस्था थी।

२६० किस्म की फसलें, ८१४ प्रकार के फल तथा २५०० प्रकार के वृक्ष तथा वल्लरियां, जो कि नगरों को सुशोभित करने के काम आती हैं, दर्शकों को वहां दिखाई देती हैं।

सन् १९५६ में इस प्रदर्शिनी के साथ उद्योग-विभाग भी जोड़ दिया गया। उसका उद्देश्य था उद्योग, इंजीनियरिंग तथा विज्ञान में हुई प्रगति का दिग्दर्शन

कराना। उद्योग-विभाग के अनेक मंडप हैं, जिनमें मशीन, यंत्र, मॉडल आदि दिखाये गए हैं। एक मंडप में कारों तथा उनके विभिन्न कल-पुरजों का प्रदर्शन किया गया है। २६ विशाल मण्डपों में लगभग डेढ़ हजार प्रकार की मशीनें रखी गई हैं।

कृषि तथा उद्योगों की वह वास्तव में अद्भुत दुनिया है। बहुत-सी दुकानें भी हैं, जिनपर ताजे फल आदि मिलते हैं। ऐसा मालूम होता है, मानों किसी छोटे-मोटे शहर में आ गये हों। इस स्थायी प्रदर्शिनी के दो बड़े लाभ साफ़ दिखाई देते हैं। एक तो यह कि सामूहिक तथा राज्यीय फार्मों के सर्वोत्तम उत्पादन, मशीन तथा ट्रैक्टर-केन्द्रों के उत्तमोत्तम यंत्र, पशुओं की उत्कृष्ट नस्लें तथा अनुभवी कार्यकर्ताओं एवं विशेषज्ञों के कृषि और उद्योग-सम्बन्धी उच्च कोटि के अन्वेषणों का वहां प्रदर्शन हो जाता है और एक ही स्थान पर रूस के ही नहीं, अन्य देशों के लोगों को भी उन्हें देखने का अवसर मिल जाता है। लेकिन उससे भी बड़ा दूसरा लाभ यह है कि विभिन्न प्रदेशों तथा जिलों के उत्पादकों में एक-दूसरे से आगे बढ़ने की स्पर्द्धा उत्पन्न होती है। हरकोई चाहता है और प्रयत्न करता है कि उसका मंडप दूसरे मंडपों से बढ़कर हो। यह स्पर्द्धा नये-नये प्रयोगों को जन्म देती है।

जितने घंटे प्रदर्शिनी खुली रहती है, दर्शकों का तांता लगा रहता है। वहां कई रेस्ट्रां तथा कैफे हैं, दो सिनेमाघर हैं, एक खुला मंच है और बाहर से आनेवाले लोगों के लिए विश्रामगृह हैं। हमें बताया गया कि १९५४ तथा १९५६ के बीच ८४ देशों के ढाई हजार शिष्टमंडलों ने प्रदर्शिनी का निरीक्षण किया।

एक बात हमें बहुत ही असुविधाजनक प्रतीत हुई। वस्तुओं के विवरण तथा चार्ट आदि रूसी भाषा में दिये हुए हैं। उनका साहित्य भी अधिकांश रूसी में है। इससे जबतक कोई परिवाचक साथ में न हो, तबतक विदेशियों को सारी चीजें, विशेषकर मशीनें, समझने में बड़ी कठिनाई होती है। एक बार मैं अकेला वहां घूमने निकल गया। जिस किसी मंडप में गया और वहां की व्यवस्थापिका से कुछ पूछना चाहा, उसने कह दिया, "इंग्लिस्की नियत।" अर्थात्—मैं अंग्रेजी नहीं जानती। "इंदिस्की नियत" अर्थात्—हिन्दी नहीं जानती। इसी प्रकार कारों के मंडप में मुझे बड़ी परेशानी हुई। रूसी भाई-बहनें अपनी भाषा में समझाने का प्रयत्न करते थे, लेकिन न तो वे पूरी तरह समझा पाते थे, न उनकी बात समझ में आती थी। प्रदर्शिनी-सम्बन्धी कुछ साहित्य अंग्रेजी में भी निकला है, लेकिन वह पर्याप्त नहीं है।

फव्वारों के इर्द-गिर्द बेंचें पड़ी रहती हैं। घूमते-घूमते दर्शक थक जाते हैं, अथवा थोड़ी देर को विश्राम लेना चाहते हैं तो इन बेंचों पर आ बैठते हैं और उछलती-कूदती जल-धाराओं की अठखेलियां देखकर तथा जल-सीकरों की शीतलता का अनुभव करके बड़े आनन्दित होते हैं। बच्चों के लिए तो यह स्थान विशेष आमोद-प्रमोद का है। छोटे-छोटे बच्चे चारों ओर किलकारियां भरते हुए दिखाई देते हैं।

अपने लम्बे प्रवास में मैंने प्रदर्शिनियां कई देशों में देखीं, लेकिन प्रदर्शन, प्रयोग तथा शिक्षा का जैसा सामंजस्य मुझे इस प्रदर्शिनी में दिखाई दिया, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई दिया। रूस की कृषि तथा उद्योगों की अभिवृद्धि में इस प्रदर्शिनी का निस्संदेह बहुत बड़ा हाथ है।

: १५ :

इलिया एहरनबुर्ग के साथ

मास्को के निवास-काल में कई रूसी लेखकों, विद्वानों तथा सम्पादकों से भेंट हुई। उनमें से कुछके साथ बड़ी रोचक चर्चाएं हुई। यहां मुझे विशेष रूप से जिनका उल्लेख करना है, वह हैं इलिया ग्रिगोरीविच एहरनबुर्ग। इलिया अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के साहित्यकार है। उनकी दर्जनों पुस्तकें निकल चुकी हैं और उनके अनुवाद अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, जापानी भारतीय तथा अन्य भाषाओं में हुए हैं। द्वितीय महायुद्ध में जर्मनों को पराजित कराने में इस लेखक का महत्वपूर्ण योग रहा। उन्होंने रूसियों में अदम्य उत्साह और चेतना उत्पन्न की और 'रेड स्टार' पत्र में लेख लिख-लिखकर लाल सेना को निरंतर उत्साहित किया। लेकिन युद्धोत्तर काल में इसी लेखक के एक विवादास्पद उपन्यास 'थौ' ने तूफान खड़ा कर दिया और यह मानकर कि उसके कुछ अंश सोवियत संघ के मूल उद्देश्यों के विरुद्ध हैं, उनकी सोवियत अधि-कारियों ने अच्छी खबर ली। फिर भी इलिया विचलित न हुए। आज रूस के प्रथम श्रेणी के लेखकों में उनका अग्रणी स्थान है।

इलिया का नाम मैंने पहले से ही सुन रक्खा था। उनसे मिलने की इच्छा भी बहुत थी। अचानक एक दिन भारतीय दूतावास से श्रीमती कमला रतनम् का फोन आया, "आज दोपहर को हम लोग इलिया से मिलने जायंगे। आपको भी चलना है।" इस समाचार से मुझे बड़ा हर्ष हुआ। रतनम्-दम्पती, उनकी सुपुत्री माधवी, एक रूसी कलाकार मरीना बुगीबा तथा मैं, कार द्वारा मास्को से रवाना हुए।

इलिया का फ्लेट वैसे शहर में भी है, लेकिन वह प्रायः रहते हैं इस्त्रा में, जो कोलाहल से दूर, मास्को से पश्चिम में, लगभग ६० किलोमीटर के फासले पर है। इस्त्रा राजनैतिक दृष्टि से बड़े महत्व का स्थान है। जर्मन तथा रूसी सेनाओं में यहां पर घमासान युद्ध हुआ था, जिसकी साक्षी आज भी सड़क के दाईं ओर खड़ा ध्वस्त गिरजाघर तथा अन्य इमारतें देती हैं।

इस्त्रा का मार्ग बड़ा मनोरम है। साफ-सुथरी सड़क के दोनों ओर दूर-दूर तक हरियाली-ही-हरियाली दिखाई देती है और ज्यों-ज्यों इस्त्रा निकट आता है, ऊंचे-ऊंचे सघन वृक्ष वहां के वायुमण्डल को बहुत ही लुभावना बना देते हैं।

जिस समय हम लोग मास्को से रवाना हुए थे, पानी पड़ रहा था, लेकिन आगे बढ़ते ही पानी बंद हो गया, मौसम साफ़ हो गया। शहर से बाहर निकलने पर सड़क के दोनों ओर लकड़ी के कुछ मकान बने हुए और कुछ बनते दिखाई दिये। पूछने पर पता चला कि उन मकानों को स्वयं मजदूर लोग अपने लिए बना रहे हैं और यह उनकी निजी सम्पत्ति होगी। मुझे बताया गया कि हाल ही में निजी उद्योग को प्रोत्साहन देने की योजना स्वीकृत हुई है और मकान बनाने आदि के लिए सरकार से ऋण भी दिया जा रहा है।

इस्त्रा के कुछ इधर ही सुविख्यात लेखक चेखव का घर है, जो अब टूटा-फूटा पड़ा है। उसके पास ही चेखव का स्मारक है, जो इस बात का स्मरण दिलाता है कि मेडीकल इन्स्टीट्यूट से स्नातक होने के बाद चेखव ने यहींपर अपनी प्रैक्टिस शुरू की थी।

इस्त्रा से कुछ आगे मोरोजोव नामक एक सम्पन्न व्यक्ति की जागीर है। चेखव तथा गोर्की मोरोजोव के अनन्य मित्र थे और उनके यहां प्राय: आया-जाया करते थे। रूसी क्रांति के कुछ समय पूर्व दूरदर्शी मोरोजोव ने अपनी यह जागीर बोल्शेविक पार्टी को दे दी थी।

जिस समय हम लोगों की कार इलिया के घर पर पहुंची, शाम के पौने पांच बजे थे। इलिया तथा उनकी पत्नी को पहले से ही सूचना थी। वे प्रतीक्षा कर रहे थे। कार के रुकते ही सबसे पहले दो कुत्ते दौड़कर बाहर आये। उनमें एक बड़ा था, दूसरा मझौले कद का। भौंकते हुए वे हम लोगों के पैरों से लिपटने लगे। उन्हें देखकर माधवी भयभीत हो उठी और चिल्लाने लगी, तबतक इलिया आ गये। सामान्य-सी पोशाक, दुबली-पतली देह, उभरी हुई निश्छल आंखें, होंटों पर मुस्कान, सिर पर लम्बे श्वेत केश। यह थी इलिया की बाह्याकृति। उनके चेहरे को देखकर ऐसा प्रतीत हुआ, मानो शरत सामने हों। अद्भुत साम्य है दोनों के चेहरों में। उन्होंने बड़ी आत्मीयता से हाथ मिलाया, परिचय हुआ। ऐसे मिले मानों बर्षों की जान-पहचान हो। उनके आने के जरा-सी देर बाद उनकी पत्नी भी आ गईं।

अभिवादन के उपरान्त वे हमें घर के बाहरवाले छोटे-से चबूतरे पर ले गये,

जहां से चारों ग्रोर के दृश्य देखे जा सकते थे। सामने एक छोटी-सी नदी थी, जिसके किनारे पर कुछ खेत थे। इलिया सबसे पहले वहीं गये। सचमुच उन्होंने जंगल में मंगल कर रक्खा है। बाद में उनके ग्रपने साग-भाजी के खेत में गये। ऐसा लगा, जैसे भारत के किसी गांव में हों। पालक, सोया, गाजर, करेला, बंदगोभी, बैंगन, चुकन्दर, मिर्च ग्रादि की हरी-भरी क्यारियां भारत के लिए इलिया की ममता का ग्राभास करा रही थीं। इलिया ने बताया कि सन् १९५६ में जब वह भारत ग्राये थे, तब यहां से ग्रनेक प्रकार की साग-भाजियों के बीज ग्रपने साथ ले गये थे। उन्हींको सावधानी से बोकर तथा उनकी देखभाल करके यह फसल तैयार की थी।

वहां से वह हमें पुनः घर के निकट ले गये ग्रौर ग्रपने ग्रहाते के पेड़-पौधों को दिखाते हुए उनका परिचय कराया। बोले, "यह जैतून का पेड़ है। यह यूक्लिप्टस का है। यह पौधा ग्रर्जेण्टाइना का है।" इस प्रकार एक के बाद एक, उन्होंने कई पौधों की ग्रोर हमारा ध्यान दिलाया ग्रौर बड़ी ग्रात्मीयता से उनका परिचय दिया। फिर घर के नीचे के एक कक्ष में ले गये। उस कक्ष की छत ग्रौर दीवारें शीशे की थीं ग्रौर गरम पानी के पाइप लगाकर ऐसी व्यवस्था की गई थी कि वहां के कड़े शीत तथा बर्फ से विकासशील पौधों की रक्षा हो सके। बड़ी विचित्र दुनिया थी पेड़-पौधों की वह। जाने किस-किस देश के पौधे छोटे-बड़े गमलों में लगे थे। छः-फुटे एक पौधे की ग्रोर संकेत करते हुए इलिया बोले, "जानते हैं यह किसका पौधा है? यह ग्राम है। इसकी बड़ी मजेदार कहानी है। पिछली बार जब नेहरू मास्को ग्राये थे तो उनके सम्मान में भारतीय दूतावास ने एक एक भोज दिया था। उसमें किसी ने ग्राम खाकर गुठली फेंक दी। मैं उसे उठाकर कागज में लपेटकर जेब में रख लाया। यहां ग्राकर उसे मैंने जमीन में गाड़ दिया। उसीका नतीजा है यह।" पता नहीं, उसपर कभी फल ग्रायेगा या नहीं, पर इलिया के लिए यह क्या कम संतोष की बात थी कि उनके संग्रह में भारत के ग्रत्यन्त लोकप्रिय फल का पौधा विद्यमान है। पपीते का एक पौधा भी वहां था। कक्ष के एक गमले में एक मोटे तने के फुट-भर के पौधे की ग्रोर इशारा करके उन्होंने कहा, "यह जापानी है। देखने में छोटा-सा लगता है, पर है यह पूरी उमर का पेड़। इसे कृत्रिम उपायों से इस बौने रूप में रक्खा गया है।" बाहर क्यारियों में मटर तथा गुलाब के रंग-बिरंगे पुष्प खिले थे और महक रहे थे। इलिया ने बताया कि शीत, पाले ग्रौर चूहों से बचाव के लिए

इनके ऊपर घास की बिछावन डालनी पड़ती है। तब इनकी रक्षा होती है।

मकान में प्रवेश करते ही पहला कक्ष चुने हुए पौधों तथा लता-वल्लरियों को समर्पित दीख पड़ा। वह तीन ओर से खुला था, पर बेलों ने फैलकर उसे बंद कमरे का रूप दे दिया था। अंदर तीन कमरे और थे, बड़े ही सादे, पर कलापूर्ण। एक कमरे में भारत से भेंट में मिले चार रंगीन चित्र लगे थे। सामने दीवार पर फ्रेम में मखमल पर कढ़ा शांति का प्रतीक कपोत था, जो उन्हें आगरे के 'भारत-सोवियत सांस्कृतिक संघ' की ओर से भेंट में मिला था। बराबर के कमरे में अन्य वस्तुओं के बीच कुछ किताबें थीं, जिनमें नेहरूजी की 'मेरी कहानी' के रूसी भाषान्तर पर बड़े आकार के कारण खासतौर पर निगाह जाती थी। वहीं एक ओर को दीवालगिरी पर भारत से लाये कुछ लकड़ी के खिलौने करीने से रक्खे थे। शीशे के एक केस में भारत से भेंट में मिलीं विभिन्न प्रकार की सिगरेटें थीं।

इलिया एक-एक शब्द तौल-तौलकर बोलते थे और बड़े ही धीमे। उनकी सौम्यता हृदय को पुलकित करनेवाली थी और उनकी पारदर्शी निश्छलता बार-बार हमारी आंखों को अपनी ओर खींच लेती थी। उनकी पत्नी उच्चकोटि की चित्रकार हैं। पर कितना अन्तर था दोनों में! इलिया सहज और गंभीर, पत्नी बड़ी ही सजीव और स्फूर्तिवान। एक कमरे में सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी कलाकार पिकासो के चित्रों के साथ श्रीमती इलिया के भी कुछ चित्र लगे थे।

हम लोग उनके घर को देख रहे थे तबतक लता-वल्लरियोंवाले कक्ष में मेज पर चाय की व्यवस्था हो गई। सूचना मिलने पर हम आकर कुर्सियों पर बैठ गये। इलिया तथा उनकी पत्नी के अलावा उनके परिवार की एक छोटी-सी बालिका भी थी। खाने के लिए बहुत-सी चीजें थीं। फलों में सेब, अंगूर, केले, अनन्नास तथा मौसम्मी। खाते-खाते चर्चा चल पड़ी। हममें से एक ने पूछा, "अपनी विदेश-यात्रा में आपको कौन-कौन-से देश खासतौर पर अच्छे लगे?"

इलिया ने उत्तर दिया, "भारत, चीन और जापान। एक-दूसरे से हर बात में अलग होते हुए भी यही तीन देश मिलकर एशिया का निर्माण करते हैं।

"जापान के बारे में आपका क्या विचार है?"

"जापान ने बड़ी उन्नति की है। भौतिक क्षेत्र में वह बहुत आगे बढ़ गया है, लेकिन उसकी आत्मा और संस्कृति अपनी निराली है। जब मैं वहां गया तो लोगों ने और वहां के पत्रों ने मेरा बड़ा अभिनंदन किया और जितने दिन रहा, किसीने

मेरी उपेक्षा नहीं की।"

इसके बाद चाय तथा भोजन की चर्चा चल पड़ी। इलिया ने कहा, "मुझे तेज भारतीय चाय पसंद है। अजंता-एलोरा जाते समय औरंगाबाद में चाय के चूरे से तैयार हुई काढ़े-जैसी जो चाय मिली थी, वह मुझे अबतक याद है। दुर्भाग्य से हमें यहां सर्वोत्तम भारतीय चाय नहीं मिल पाती, क्योंकि हमारे खरीददार प्रायः वही चाय पसंद करते हैं, जो कि रूसी चाय से स्वाद तथा सुगंधि में मिलती-जुलती है।"

इतना कहते-कहते हल्की-सी मुस्कराहट उनके होंटों पर खेल गई। अपनी बात को जारी रखते हुए उन्होंने कहा, "मेरी बहुत-सी आदतें भारतीय हैं। मांस मुझे पसंद नहीं। हरी सब्जियां और चावल अच्छे लगते हैं। मिर्च भी मजेदार लगती है।" फिर कुछ रुककर बोले, "भारत के कुछ होटलों में और रेस्ट्राओं में यूरोपियन खाना दिया जाता है। यह उचित नहीं है, क्योंकि वह अंग्रेजी खाना होता है। भारतीय भोजन ठीक है। भारत में मुझे सबसे अच्छा खाना रामेश्वरी नेहरू के घर में मिला। मुझे जाफरान और इलायची बहुत प्रिय हैं। आम का अचार भी बहुत अच्छा लगता है।'

"भारत का कौन-सा शहर आपको पसंद आया?" विषय बदलते हुए हमने प्रश्न किया।

उन्होंने कहा, "सबसे मजेदार पर भयंकर कलकत्ता लगा। मद्रास उससे अच्छा है। समुद्र की निकटता के कारण वहां का जलवायु अनुकूल है। दिल्ली में कोई विशेष बात नहीं मालूम हुई। नई दिल्ली जैसा शहर संसार में कहीं भी मिल सकता है। पुरानी दिल्ली भारत के किसी भी अन्य नगर की भांति है। लेकिन कला की दृष्टि से मुझे मथुरा सबसे उत्कृष्ट प्रतीत हुआ। वहां के संग्रहालय में गांधार शैली और गुप्त-काल की कला दिखाई दी। आगरे में ताजमहल भी देखा। वह मुसलमानी कला का नमूना है और उसका मुझपर उतना प्रभाव नहीं पड़ा, जितना मथुरा का। एलोरा-अजन्ता भी बहुत अच्छे लगे। नासिक की भी बढ़िया छाप पड़ी। लेकिन सबसे प्रिय लगा महाबलीपुरम का प्राचीन मन्दिर।"

चाय का घूंट भरते हुए उन्होंने कहा, "भारत की अर्वाचीन चित्रकारी में मुझे अमृत शेरगिल के चित्र बड़े प्रिय मालूम हुए। कलकत्ते में जैमिनी राय का संग्रह भी पसंद आया। उसमें लोककला और आध्यात्मिकता की झलक है। कलकत्ता में

महालानोबिस के घर में रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक चित्र लगा था, जिसे देखकर मुझे लिनार्डो ड विंसी का स्मरण हो आया। मेरी शांतिनिकेतन जाने की बड़ी इच्छा थी, लेकिन समयाभाव के कारण वहां न जा सका।"

"भारत में आपको सबसे विशेष क्या लगा?"

इस प्रश्न पर इलिया की आंखें चमक उठीं, बोले, "वहां के लोग।"

"लेकिन वे तो हजारों वर्षों से हैं, उसमें विशेषता क्या है?"

"हजारों सालों से हैं तो उससे क्या, मैंने तो उन्हें पहली बार देखा। मान लो कि आप रूस आओ, अस्सी साल के टाल्स्टाय को देखने और मैं कहूं कि उस बूढ़े आदमी में देखने को क्या रखा है, तो आप यही कहेंगे न कि हम तो उन्हें पहली बार देख रहे हैं। सबसे अधिक प्रभाव मुझपर भारतीय संस्कृति का पड़ा। भारत के लोगों ने आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ी प्रगति की है। लेकिन मेरे सामने सबसे बड़ी कठिनाई भाषा की थी। मैं अंग्रेजी नहीं जानता (हम लोगों की बात-चीत श्रीमती कमलाजी के माध्यम से हुई, जो कई भाषाएं जानती हैं।), न भारतीय भाषाएं। फ्रेंच जानता हूं। सो लोगों से सीधी बात करने के लिए पांडिचेरी गया, पर वहां एक बड़ी विचित्र चीज देखी। वहां के एक फ्रेंच मेयर की मूर्ति संग्रहालय की प्राचीन वस्तुओं के बीच रख दी गई है और भारत के देवी-देवताओं की प्रतिमाओं के बीच विक्टर ह्यूगो तथा अन्य फ्रांसीसियों की मूर्तियां विराजमान हैं। ऐसी मूर्तियों को वहां से हटा देना चाहिए। इसी प्रकार कलकत्ता में मैंने उन सैनिकों का स्मारक देखा, जिन्होंने भारतीयों की हत्या की थी। यह गलत चीज है। कटु स्मृतियों की याद दिलानेवाली वस्तुएं इस तरह नहीं रहनी चाहिए। इस दृष्टि से मद्रास के लोगों में अधिक सुरुचि दिखाई दी। वहां की प्राचीन वस्तुओं के बीच मलका विक्टोरिया की मूर्ति नहीं थी।"

"भारतीयों की किस बात ने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया?"

इलिया ने बड़ी गम्भीरता से कहा, "उनकी दृढ़ संकल्प-शक्ति ने, जो कि आध्यात्मिकता से प्राप्त होती है। भौतिक प्रगति वांछनीय है, आवश्यक भी है, लेकिन आध्यात्मिकता की कीमत देकर उसका विकास उचित नहीं है।"

"हमारे समाज में पिछले दिनों तक आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवन में असंतुलन रहा। अब उसे दूर किया जा रहा है। सामान्य व्यक्ति का जीवन-स्तर हम ऊंचा करना चाहते हैं। इसलिए हमारी अभिलाषा है कि कम-से-कम अगले १५-२०

वर्षों में शांति रहे।" हमने कहा।

"आपकी बात ठीक है," इलिया बोले, "हम सबको शांति चाहिए। पर मुझे लगता है कि यह तभी संभव होगा, जबकि आपके सह-अस्तित्व तथा पंचशील के अनुसार हम चलें। लेकिन आप लोगों के लिए एक चीज़ बड़ी जरूरी है और वह यह कि आप जीवन में नया रस पैदा करें। नये मूल्य लावें। यह ठीक है कि आपके यहां कुछ नई चीजें हैं, लेकिन उनके साथ दो-दो हजार साल की पुरानी मान्यताएं भी हैं।"

थोड़ी देर को खामोशी हो गई। उसे भंग करते हुए इलिया बोले, "आजादी के बाद से आप लोगों ने काफी काम किया है, फिर भी बहुत-सा अभी करने को बाकी है। पाकिस्तान से इतने लोग आये, आपने उनमें से बहुतों को बसा दिया, लेकिन अब भी काफी लोग बेघरबार हैं। रात को रास्ते की पटरी पर सोते हैं। दिल्ली, कलकत्ता में मैंने बहुत-से लोगों को इस तरह सोते देखा। मद्रास में मछुओं की हालत भी बड़ी गई-बीती है। दिल्ली में मैं एक सम्पन्न व्यक्ति के यहां ठहरा। रात को उठकर बाहर गया तो देखता क्या हूं कि कई लोग मकान की सीढ़ियों पर सो रहे हैं। वह जाड़ों की रात थी।"

हममें से एक ने कहा, "हम लोग इस दिशा में काफी कोशिश कर रहे हैं, पर इसके लिए समय चाहिए। संगठित शक्ति से काम करने की आवश्यकता है। इसीलिए हम नहीं चाहते कि हमारी तनिक भी शक्ति झगड़ों के कामों में खर्च हो। हम किसी गुट के साथ बंधना नहीं चाहते। हमारी नीति तटस्थता की है। हमें पूरी आशा है कि अगले पचास वर्षों में हमारा देश काफी आगे बढ़ जायगा।"

इलिया से हम लोग बहुत-से सवाल कर चुके थे। इस बीच श्रीमती इलिया खामोश रहीं। अब हमने अपना ध्यान उनकी ओर दिया। हमने उनसे कहा, "इलिया के साथ आप भी तो भारत गई थीं। आपको हमारा कौन-सा शहर अच्छा लगा?"

वह बोलीं, "यह कहना मुश्किल है कि कौन-सा शहर अच्छा लगा, पर दिल्ली से आगरे की यात्रा बड़ी रुचिकर लगी। देहाती जीवन को देखते हुए यात्रा करने का यह पहला अवसर और पहला अनुभव था। लेकिन सुनिये, मुझे सांपों को देखकर बड़ी हैरानी होती है। मैं जब भारत में थी तो वहां की दिलचस्प चीजों को देखते-देखते सांपों की बात भूल गई थी। लेकिन एक रोज आगरे में घूमते हुए अचानक सांप पर निगाह पड़ ही गई। कोई संपेरा सांप का खेल दिखा रहा था। आप यह

न समझें कि सांपों से मुझे डर लगता है। नहीं, ऐसी बात नहीं है, पर सांप मुझे अच्छा नहीं लगता। नेवला अच्छा लगता है। बड़ा प्यारा होता है।''

इसपर कमलाजी ने वह कहानी सुनाई, जिसमें एक स्त्री अपने बच्चे को पालतू नेवले की देख-रेख में सोता छोड़कर काम पर चली गई थी। लौटने पर जब उसने खून में सने नेवले को बैठे देखा तो उसे ख्याल हुआ कि हो-न-हो, उसीने बच्चे को मार डाला। क्रोध में उसने एक पत्थर उठाकर नेवले के मारा। बेचारा मर गया। तब वह अंदर गई। देखती क्या है कि बच्चा चैन से सो रहा है और उसके पास एक सांप मरा पड़ा है। अब सारी बात उसकी समझ में आई और वह स्वामिभक्त नेवले को मारने की भूल करने पर सिर धुनकर रह गई।

इस कहानी को सुनकर इलिया मुस्करा पड़े। बोले, "हमारे लेखक चेखव भी एक नेवला सीलोन से ले आये थे। उसकी उन्होंने अपनी कई कहानियों और पत्रों में चर्चा की है।''

उनके साहित्य की चर्चा होने पर बताया कि उनकी पुस्तकों में १. आउट ऑव क्योस, २. लव ऑव जानने, ३. एडवेंचर ऑव यूलियो यूनिनीतो, ४. थी, ५. फाल ऑव पेरिस, ६. मास्को स्ट्रीट, ७. स्टोर्म, ८. दी नाइन्थ वे, ९. हाऊ रशा वाज टैम्पर्ड, १०. दी वर्क ऑव राइटर्स, बहुत लोकप्रिय हुई हैं। उनके अनुवाद कई भाषाओं में निकले हैं। अंग्रेजी में कम हुए हैं। एक किताब बंगला में और एक तेलगू में भी अनूदित हुई है। हिन्दी में भी कुछ निकली हैं। सबसे अधिक अनुवाद जापान में हुए हैं। जब वह वहां गये तो उन्हें उनकी पुस्तकों के अस्सी अनुवाद भेंट किये गए। 'फॉल ऑव पेरिस' तथा 'स्टौर्म' पर उन्हें 'स्टालिन पुरस्कार' मिल चुका है।

यह पूछने पर कि आप इस समय क्या लिख रहे हैं, इलिया ने कहा, "मैं इस समय जापान, भारत और ग्रीस पर एक पुस्तक लिख रहा हूं। उसका नाम मैंने 'पूर्व और पश्चिम' रखा है। लेकिन यहां मेरा किप्लिंग से भिन्न मत है। मैं इस बात को नहीं मान सकता कि पूर्व पूर्व है, पश्चिम पश्चिम, और दोनों कभी नहीं मिलेंगे। मेरा विचार है कि पृथ्वी की भांति संसार एक वृत्त है, जिसको मनुष्य अपनी मनमानी पूर्व और पश्चिम की सीमाओं में विभक्त नहीं कर सकता। एक और पुस्तक फ्रांस के साहित्य तथा कला पर लिख रहा हूं।''

"आप लेखन-कार्य कहां किया करते हैं? मास्को के घर में या यहां?"

वह बोले, "शहर में लिखने का कहां मौका मिलता है! छोटा-सा मकान है।

लोगों का आना-जाना बना रहता है, फिर टेलीफोन। लिखना-पढ़ना तो इस एकान्त मकान में होता है।"

"अब आप अपनी लेखनी द्वारा भारत की संस्कृति और आध्यात्मिकता के संदेश को दुनिया के लोगों तक पहुंचाइये।"

"नहीं," इलिया बोले, "यह काम भारतीयों को स्वयं करना चाहिए। मैं तो भारत में एक मास रहा। इस अवधि को देखते मैंने आपके देश के बारे में काफी लिख डाला है। मैं उन लोगों की तरह नहीं हूं, जो किसी स्थान को बिना देखे उसपर पूरी किताब लिख डालते हैं।"

"पूरी किताब ?"

"जीहां, एक नहीं, तीन-तीन ?"

हम सब बड़े जोरों से हँस पड़े।

विषय बदलने के लिए हमने श्रीमती इलिया से पूछा, "क्या कभी-कभी इलिया लिखने में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि खाना-पीना भी भूल जाते हों ?"

"नहीं," वह बोलीं, "मैं ऐसा नहीं होने देती।"

इसपर इलिया को न्यूटन के भुलक्कड़ स्वभाव की बात बताते हुए हमने वह कहानी सुनाई, जिसमें छोटी-बड़ी बिल्लियों के निकलने के लिए किवाड़ में दो छोटे-बड़े सूराख करने का रोचक प्रसंग आता है। इलिया हँस पड़े। बोले, "मैंने भी पेड़ पर चिड़ियों के लिए घर बनाया है। वसन्त के दिनों में फ्रांस, स्विटजरलैण्ड तथा इटली तक से चिड़ियां आती हैं। उनके प्रवेश के लिए मैंने ठीक-ठीक सूराख किया है—न बड़ा न छोटा, जिससे उन्हें यह डर न हो कि बिल्ली भी उस सूराख से आकर उनपर हाथ साफ कर सकती है। मेरी चिड़ियां न्यूटन की बिल्लियों से अधिक चालाक हैं। क्यों, है न ?"

दो घंटे से अधिक हो चुके थे। हम लोगों ने उनका बड़ा आभार माना और विदा चाही। हम सब उठे। बाहर आये। इलिया ने गुलाबों की क्यारी में जाकर जेब से कैंची निकाली और दो फूल बड़ी सावधानी से काटे। मैंने कहा, "इस अवसर पर मुझे गांधीजी का स्मरण हो आया है। वह भी फूल कैंची से काटते थे। फूलों को हाथ से ऐंठकर तोड़ने में उन्हें क्रूरता दिखाई देती थी।"

इलिया ने बड़े प्रेम से हाथ मिलाया, हमें विदा दी और जबतक मोटर आंखों से ओझल नहीं हो गई, पति-पत्नी खड़े-खड़े हम लोगों की ओर देखते रहे।

: १६ :

एक इतिहासज्ञ से भेंट

साहित्य द्वारा भारत और रूस के बीच गहरे सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयोजन से मास्को में जो संस्थाएं महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं, उनमें दो संस्थाएं प्रमुख हैं। एक है —विदेशी भाषा प्रकाशन-गृह (फॉरिन लेंग्वेजेज पब्लिशिंग हाउस), जो रूसी साहित्य को भारतीय तथा अन्य भाषाओं में प्रकाशित करता है। दूसरी है 'प्राच्य संस्थान' (ओरियंटल इन्स्टीट्यूट), जो अन्य भाषाओं की चुनी हुई कृतियों को रूसी भाषा में निकालता है। मास्को पहुंचने के एक-दो दिन बाद ही मैं प्राच्य संस्थान में गया। वहां के भारतीय विभाग के अध्यक्ष श्री चेलिशेव से भेंट हुई। चेलिशेव हिन्दी के अच्छे ज्ञाता हैं। धाराप्रवाह हिन्दी बोलते हैं और लिखने का भी मजे का अभ्यास है। भारत के साहित्य और साहित्यकारों में उनकी विशेष दिलचस्पी है। उन्होंने मुझसे कहा कि आप हमारी संस्था के संचालक प्रो० ए० एम० द्याकोव से अवश्य मिलें। अन्य मित्रों ने भी उनसे मिलने का आग्रह किया। लेकिन मुझे मालूम हुआ कि द्याकोव महोदय वृद्ध हैं और उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। अतः मैंने सोचा कि उन्हें कष्ट देना उचित नहीं होगा। किन्तु इसी बीच प्राच्य संस्थान के हिन्दी-विभाग की तमारा बहन ने अकस्मात् प्रो० द्याकोव से मेरे लिए समय ले लिया। मैं उस बहन को साथ लेकर उनसे मिलने गया। मुझे मालूम हो गया था कि द्याकोव प्राच्य संस्थान के संचालक मात्र नहीं हैं, बल्कि वह उस संस्था के एक प्रमुख स्तम्भ हैं। इतना ही नहीं, रूस के महान् इतिहासज्ञों में उनकी गणना होती है। जिस समय समाजवादी क्रान्ति हुई, उनकी अवस्था २०–२२ वर्ष की थी। उन्होंने अपनी जवानी क्रांति को सफल बनाने और समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने में लगाई। उस समय उनका कार्यक्षेत्र ताशकन्द था। उन्होंने फारसी सीखी, उर्दू का अध्ययन किया और ताशकंद के विद्यालय में मार्क्सवाद और लेनिनवाद की शिक्षा देते रहे।

तमारा बहन ने रास्ते में मुझसे कहा, "भारतीय समस्याओं का जितना गहरा और व्यापक अध्ययन इन प्रोफेसर महोदय का है, उतना कम ही लोगों का आपको मिलेगा। उनकी 'भारत में राष्ट्रीयताओं का निर्माण' अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। मजे की बात यह है कि अच्छी अंग्रेजी जानते हुए भी वह आपसे आपकी भाषा—हिन्दी में ही बात करेंगे। आपको बड़ा आनन्द आवेगा।"

बड़ी सड़क को छोड़कर एक तंग गली में जब हम एक मकान पर रुके और तमारा ने कहा कि यही उनका घर है तो मैं आश्चर्यचकित रह गया। बड़ा मामूली-सा मकान था। मैंने तो स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि इतनी बड़ी संस्था का संचालक और इतना बड़ा इतिहासज्ञ ऐसे छोटे मकान में रहता होगा। पर रूस के आर्थिक संगठन तथा समाज-व्यवस्था की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वहां आवश्यकता के अनुसार चीजें मिलती हैं, पद के अनुसार नहीं।

मकान कई मंजिल का था। द्याकोव ऊपर के एक तल्ले में रहते थे। लिफ्ट से हम लोग उनके तल्ले पर पहुंचे और घंटी बजाई। क्षणभर में एक ऊंचे कद और फुर्तीले शरीर के सज्जन ने दरवाजा खोला और हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए कहा, "नमस्कार! आइये।"

मुझे यह समझते देर न लगी कि यही सज्जन प्रो० द्याकोव हैं। चूंकि तमारा ने मुझे रास्ते में बता दिया था कि वह हिन्दी अच्छी तरह से जानते हैं, इसलिए उनके हिन्दी में अभिवादन करने पर मुझे अचरज नहीं हुआ, उल्टे खुशी हुई।

यह मुझे अपने अध्ययन-कक्ष में ले गये, जो बड़ा ही आडम्बरहीन था। सामान के नाम पर उसमें एक बड़ी मेज, तीन कुर्सियां, एक पलंग तथा अलमारियों में कुछ पुस्तकें। बस! बैठते ही उन्होंने हिन्दी में कहा, "क्षमा कीजिये, मुझे अंग्रेजी में बात करना अच्छा नहीं लगता। हम लोग हिन्दी में बात करेंगे। मेरी भाषा में उर्दू के शब्द अधिक रहते हैं। आशा है, आपको उससे कोई असुविधा नहीं होगी।"

मैंने कहा, "बिल्कुल नहीं। मैं स्वयं उर्दू जानता हूं। इसलिए उर्दू के शब्दों को समझने में मुझे जरा भी कठिनाई या असुविधा नहीं होती।"

इसके उपरान्त मैंने उनकी कुशल-क्षेम पूछी और यह जान लेने के बाद कि अब उनका स्वास्थ्य पहले से कुछ ठीक है, चर्चा प्रारंभ करते हुए कहा, "तमारा बताती हैं कि आप भारत हो आये हैं। वहां कब गये थे?"

बोले, "पिछले २४ दिसम्बर (१९५६) को गया था, ३ मार्च तक वहां

रहा। खूब घूमा। आगरा, लखनऊ, मेरठ, काशी, कलकत्ता, पुरी, भुवनेश्वर, कटक, कोणार्क, मद्रास, त्रिवेन्द्रम, कोयम्बूटर, उटकमण्ड, मैसूर, बैंगलोर, हैदराबाद, औरंगाबाद, अजंता, एलोरा, बम्बई, दिल्ली आदि-आदि देखे।"

मेरे यह पूछने पर कि आपको सबसे अच्छा नगर कौन-सा लगा, उन्होंने कहा, "यह बताना मुश्किल है। मुझे कहीं भी अधिक समय रहने को नहीं मिला। दो-दो, तीन-तीन दिन एक-एक स्थान पर रहा। फिर भी कोणार्क का मन्दिर मुझे बहुत अच्छा लगा। प्राचीन होने के साथ-साथ उसकी कला अद्‌भुत है। एलोरा भी बहुत सुन्दर है। अजंता भी पसन्द आया, लेकिन एलोरा के बराबर नहीं। वहां के कुछ चित्र खराब हो गये हैं। इसके अलावा वहां चित्र-ही-चित्र हैं। एलोरा में मूर्तियां भी हैं। शहरों में सबसे दिलचस्प लखनऊ लगा। कह नहीं सकता, क्यों? काशी अच्छी नहीं लगी। वहां गंदगी बहुत है। साधू-संन्यासी-फकीर मुसीबत करते हैं। पैसा मांगते हैं। घाट वहां काफी हैं और अच्छे हैं। सबसे बुरा मुझे कलकत्ता में काली-घाट पर लगा, जहां बकरों का बलिदान किया जाता है और खून बहता है।"

"आप क्या किसी कान्फ्रेंस में भारत गये थे?"

"जी नहीं, मैं एक बड़ी पुस्तक तैयार कर रहा हूं—हिन्दुस्तान की कौमें। उसीके सिलसिले में सोवियत सरकार ने भेजा था। चूंकि कौमों पर पुस्तक तैयार करनी है, इसलिए मैंने कोशिश की कि ज्यादा-से-ज्यादा घूमकर अधिक-से-अधिक लोगों से मिलूं, वहां की चीजों को देखूं और अपने विषय का अध्ययन करूं। मुझे खेद है कि मैं आसाम और पंजाब नहीं जा सका। केरल मुझे बड़ा अच्छा लगा। वहां नारियल के पेड़ हैं, समुद्र है। कैसा अच्छा लगता है। कन्याकुमारी से कोचीन तक कार में गया, वहां से रेल द्वारा कोयम्बटूर। मैं मलयालम नहीं जानता था, सो अंग्रेजी से काम लेना पड़ा। हैदराबाद में उर्दू से काम चल गया।"

मैंने कहा, "आप इतना घूमे। भारत में आपको क्या विशेषता मालूम हुई?"

उन्होंने तत्काल उत्तर दिया, "वहां के गांव और गांवों का वायुमण्डल। मेरठ के नजदीक के एक गांव में मैं ठहरा और इधर-उधर खूब घूमा। लोगों से मिला। स्कूल देखे। लोग बड़े भले और प्रेमी स्वभाव के लगे। उन्होंने मेरा आदर किया। उनका व्यवहार बड़ा मधुर था।"

मैंने कहा, "भारत के गांवों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वहां के लोग एक विशाल परिवार की भांति रहते हैं। वहां यह जानना बड़ा मुश्किल होता है कि

कौन किस जाति का है।"

वह बोले, "आपका कहना ठीक है। इस ओर मेरा भी ध्यान गया। वहुत-से लोग मेरे साथ थे। वे आपस में एक-दूसरे को ऐसे सम्बोधन करते थे, मानो एक ही घर के हों। हिन्दू-मुसलमानों आदि सबको मैंने ऐसा ही पाया। सबमें अच्छे मुझे भारत के आदमी लगे। वे गांवों में रहते हैं। खूब खुश हैं और खुशी से बात करते हैं। मजे की बात यह है कि भारत के गांवों का आर्थिक संगठन कुछ ऐसा है कि पता ही नहीं चलता कि कौन अमीर है और कौन गरीब। शहरों में यह बात साफ मालूम हो जाती है। वहां अमीर-गरीब के रहन-सहन और पहनावे में बड़ा फर्क है। केरल में कई धर्मों के लोग हैं—ईसाई, हिन्दू, मुसलमान, आदि-आदि; पर उनमें भी मुझे कोई ऊंच-नीच का भेद दिखाई नहीं दिया, न कपड़े-लत्ते से, न रीति-रिवाज से।"

"दिल्ली आपको कैसी लगी?"

"नई दिल्ली बहुत सुन्दर शहर है, पर उसपर यूरोप का बड़ा प्रभाव है। उसमें भारतीयता नहीं है। पुरानी दिल्ली भारतीय है, पर बहुत सुन्दर नहीं है।"

मैंने पूछा, "आपको मन्दिरों में कौन-सा मन्दिर अच्छा लगा?"

कुछ रुककर उन्होंने कहा, "सच बात यह है कि मुझे नये मंदिर नहीं भाये। शहरों के मन्दिर अक्सर गन्दे दिखाई दिये। वहां पण्डे-पुजारियों की भरमार होती है और वे लोगों की जेब से ज्यादा-से-ज्यादा पैसे निकालने की कोशिश करते हैं। दक्षिण का शुचीन्द्रम् का मन्दिर मुझे बहुत ही अच्छा लगा। महाबलीपुरम् तथा कोणार्क के मन्दिर भी बड़े प्रिय मालूम हुए। भुवनेश्वर में तो निरे मन्दिर हैं।"

मैंने कहा, "जीहां", वह 'मंदिरों का नगर' कहलाता है।"

"आपका कहना ठीक है। विदेशी होने के कारण जगन्नाथपुरी के मन्दिर में मुझे नहीं जाने दिया गया। भुवनेश्वर के एक मन्दिर में भी जाने से रोक दिया। मुझे बताया गया कि उसमें विदेशी नहीं जा सकता। मीनाक्षी के मन्दिर की मैंने बड़ी प्रशंसा सुनी थी, लेकिन समयाभाव के कारण वहां जाने का अवसर नहीं मिल पाया।"

"भारत में आप नेहरू आदि नेताओं से मिले?"

"जी नहीं, वे चुनाव के दिन थे। सब लोग इधर-उधर घूम रहे थे। हां, उड़ीसा में श्री हरेकृष्ण मेहताब से मिला। उन्होंने मुझे अपने साथ ही ठहराया। उड़ीसा के

बारे में उनसे बहुत बातचीत हुई।"

विषय बदलने के विचार से मैंने पूछा, "भारत में आपको खाने-पीने में तो कष्ट नहीं हुआ ?"

उन्होंने उत्तर दिया, "बिल्कुल नहीं, बल्कि वहां की खाने-पीने की चीजें मुझे बहुत पसन्द आई। (कुछ हँसकर) लेकिन कलकत्ते का रसगुल्ला और सन्देश अच्छा नहीं लगा। बहुत मीठा था। दक्षिण के भोजन में मिर्चें बहुत थीं, पर वे बुरी नहीं लगीं। वहां की रसम और दही की खट्टी छाछ, जो उनके खाने में जरूर रहती है, अच्छी लगी।"

"यात्रा से लौटकर आपने भारत के बारे में कुछ लिखा ?"

"जीहां, एक लम्बा लेख लिखा, जो अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। लेकिन सुनिये, मैं तो भारतवर्ष के विषय में बहुत पहले से लिखता आ रहा हूं। मेरी कई किताबें हैं। ये रूसी में निकली हैं। 'नेशनल क्वश्चन इन इंडिया एण्ड ब्रिटिश इम्पीरियलिज्म' सन् १९४८ में निकली, 'इंडिया ड्यूरिंग दी सैकिंड वर्ल्ड वार एण्ड आफ्टर' का अनुवाद मलयालम में हुआ है। वहां के 'नवयुगम' पत्र के सम्पादक दामोदरम् ने किया है। तीसरी पुस्तक है 'नेशनल स्ट्रक्चर ऑव दी पॉप्यूलेशन ऑव इंडिया।' इनके अतिरिक्त बहुत-से लेख लिखे हैं, 'जैसे रिपब्लिक ऑव इंडिया एण्ड पाकिस्तान।' मैंने पाकिस्तान के विरुद्ध बहुत लिखा है। वहां के लोग अच्छे हैं, पर उनकी नीति मुझे पसन्द नहीं है।"

मेरे यह पूछने पर कि अब आप क्या लिख रहे हैं, वह बोले, "अब मैं कोई एक हजार पृष्ठ की पुस्तक लिख रहा हूं—'कंटेम्पोररी हिस्ट्री ऑव इंडिया फ्रौम १९१८ टू दी माडर्न टाइम्स।'

"भारत का राष्ट्रीय आंदोलन गांधीजी के नेतृत्व में सन् १९१८ से प्रारम्भ हुआ था। इसीलिए मैंने अपने इतिहास के आरंभ के लिए वह तिथि चुनी है। इस आंदोलन में सारे देश ने भाग लिया, लेकिन एक बड़ी कठिनाई है और वह यह कि हमें उस जन-आंदोलन की सामग्री एक स्थान पर नहीं मिलती। नेहरू की पुस्तकें हैं, तेन्दुलकर की 'लाइफ ऑव महात्मा' की जिल्दें हैं, सुन्दरलाल का 'भारत में अंग्रेजी राज' है। ये सब पुस्तकें अच्छी और उपयोगी हैं, पर भारत के महान आंदोलनों से सम्बन्धित सामग्री उनमें एक जगह नहीं मिलती।"

मैंने डा० पट्टाभि सीतारामैया के 'सस्ता साहित्य मण्डल' से प्रकाशित 'कांग्रेस

का इतिहास' की ओर संकेत किया। वह बोले,"वह बहुत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। उसमें कांग्रेस का इतिहास है, ऐतिहासिक मसविदे हैं, लेकिन उसमें जन-आंदोलन पर कम ध्यान दिया गया है। जो पुस्तकें उपलब्ध हैं, उनमें इतिहास है, जन-आंदोलन की झांकी नहीं है।"

मैंने उनका और अधिक समय लेना उचित न समझकर विदा लेने की दृष्टि से कहा, "मैं कामना करूंगा कि आप चिरायु हों और स्वस्थ रहें, जिससे इतिहास द्वारा रूस और भारत की व्याख्या करके आप दोनों देशों के बीच एक मजबूत कड़ी बन सकें। आपका कार्य निस्संदेह सेतुबन्ध के निर्माण का है। आपके देश ने भारत के सर्वमान्य ग्रंथ—'रामचरित मानस' तथा 'महाभारत' रूसी भाषा में अनूदित करके दोनों देशों को एक-दूसरे के निकट लाने के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। पर गांधीजी के बिना भारत को नहीं जाना जा सकता। अच्छा हो कि आप लोग मास्को में एक गांधी-संग्रहालय स्थापित कर दें और उसमें गांधीजी तथा उनकी विचार-धारा से सम्बन्धित साहित्य रक्खें।"

उन्होंने बड़े ध्यान से मेरी बात सुनी। बोले, "भारत का बहुत-सा साहित्य यहां प्रकाशित हुआ है और हो रहा है। नेहरू की 'आत्मकथा' तथा 'डिस्कवरी ऑव इंडिया' के अनुवाद निकले हैं।"

"गांधीजी की कुछ पुस्तकों का भी अनुवाद कराइये।"

वह बोले, "गांधीजी की 'आत्मकथा' का अनुवाद हुआ है। उल्यानोवस्की ने किया है। द्वितीय महायुद्ध के पहले निकला था। अब प्राप्य नहीं है। नया संस्करण निकालने का विचार हो रहा है।"

उनके छोटे-से कमरे में सात पिंजड़े लगे थे, जिनमें विभिन्न प्रकार की सात चिड़ियां थीं। चलते-चलते मैंने पूछा, "आपको चिड़ियां पालने का शौक है?"

बोले, "जीहां, कोई नौ साल से यह शौक चल रहा है। मैंने पक्षियों के संबंध में बहुत पढ़ा है। भारत से भी इस विषय की बहुत-सी पुस्तकें लाया था।"

"आपने इन्हें अलग-अलग क्यों रक्खा है?"

मेरे इस सवाल पर वह मुस्करा उठे। बोले, "इसलिए कि साथ-साथ रहने पर ये लड़ती हैं और प्यार से एक-दूसरे से नहीं बोलतीं। फिर यह भी तो है कि आदमी की तरह इनको भी अलग-अलग फ्लैट में रहना पसन्द है, भले ही फ्लैट छोटा-सा ही क्यों न हो?"

मैंने विनोद में पूछा, "ये बोलती हैं ?"

वह हँसकर बोले, "जीहां, खूब बात करती हैं। बातचीत में आपने उनकी बात सुनी नहीं। वे बराबर अपनी बात कह रही थीं।"

विनोद को जारी रखते हुए मैंने कहा, "ये कौन-सी भाषा बोलती हैं ? रूसी ?"

वह जोर से हंस पड़े। बोले, "नहीं, रूसी नहीं बोलतीं, उनकी अपनी भाषा है, पर मैं उसे समझ लेता हूं।"

६१ वर्ष के उन युवा से मैंने विदा ली। वह द्वार तक पहुंचाने आये और हाथ मिलाते हुए मैंने देखा, उनके चेहरे पर युवकोचित उत्साह खेल रहा था और आत्मीयता से उनकी आंखें चमक रही थीं।

: १७ :

कुछ बोलते चित्र

कुछ वर्ष पहले रूस में गांधीजी के बारे में बड़ी विचित्र-सी भावना थी। वहां के सामान्य लोग तो अपने देश की चहारदीवारी में इतने बन्द थे कि बाहर के महापुरुषों के विषय में उनका ज्ञान प्राय: नगण्य था; लेकिन वहां के कुछ नेताओं की धारणा थी कि गांधीजी प्रतिक्रियावादी हैं। अपने रूसी-विश्वकोष में उन्होंने बहुत-सी ऊल-जलूल बातें उनके बारे में लिख मारी थीं। किन्तु जमाना बदलता रहता है। आज रूस के सामान्य लोग गांधीजी तथा उनके सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करने के लिए बड़े उत्सुक हैं। ओरियण्टल इंस्टीट्यूट के एक अधिकारी गांधीजी के अहिंसा के सिद्धांत के बारे में कई बार बहुत देर तक चर्चा करते रहे। सोवियत इन्फोर्मेशन ब्यूरो ने अपने यहां गांधीजी के व्यक्तित्व एवं प्रभाव पर मुझसे एक भाषण कराया तथा मास्को रेडियो ने मेरी एक वार्ता गांधीजी पर उनकी जयंती के दिन, २ अक्तूबर को, प्रसारित की। एक दिन एक बड़ी मजेदार घटना हुई, जिससे पता चला कि वहां के सड़क-चलते लोग भी अब गांधीजी के सम्बन्ध में कितने जिज्ञासु हैं। एक दिन शाम को मैं बोल्शाई थियेटर के पास घूम रहा था। सन्ध्या को वहां प्राय: भीड़ रहती है। अचानक एक वृद्ध रूसी मेरे पास आकर रुके और बोले, "इंदिस्की ?" अर्थात्—क्या तुम भारतीय हो ? मेरे 'दा' (हां) कहने पर उन्होंने रूसी में कुछ कहा, जिसे मैं समझ नहीं पाया। लेकिन बीच-बीच में 'गांधी' शब्द सुनकर मुझे लगा कि हो-न-हो, वह गांधीजी के बारे में कुछ कह रहे हैं। वृद्ध ने बार-बार मुझे समझाने की चेष्टा की, लेकिन निष्फल। तभी वहां एक अंग्रेजी जाननेवाले रूसी आये। उन्होंने हमारी मदद की। उनकी मार्फत वृद्ध सज्जन ने मुझसे पूछा, "यह बताओ कि जिस आदमी ने गांधी को मारा उसका क्या हुआ ?"

मुझे उनकी इस जिज्ञासा पर बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने संक्षेप में कह दिया,

"उसे फांसी हो गई।"

मेरा इतना कहना था कि वह सज्जन बच्चे की तरह खुशी से उछल पड़े। बोले, "बहुत अच्छा हुआ। यही होना चाहिए था।"

मैंने पूछा, "इस समाचार से आप इतने खुश क्यों हो उठे ? क्या आपने कभी गांधीजी को देखा था ?"

वृद्ध ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, मैंने उन्हें कभी नहीं देखा, न उनका कुछ साहित्य पढ़ा है; लेकिन मैं जानता हूं कि वह एक महापुरुष थे। उन्होंने साम्राज्यवाद से मोर्चा लिया, एक नये ढंग से भारत को आजादी दिलवाई और शान्ति का सन्देश सारे संसार में फैलाया। ऐसे महापुरुष के हत्यारे को यही सजा मिलनी चाहिए थी, उसे फांसी पर ही लटकाना चाहिए था। बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ।"

इतना कहकर उन सज्जन ने सिर झुकाकर बड़े आदरभाव से नमस्कार किया और उमंग से भरे चले गये।

... ...

अपने वीसे की मियाद बढ़वाने के लिए मैं एक दिन वहां के वैदेशिक विभाग में गया। काम होने के बाद बाहर आया। सोचा कि सीधा घर पहुंच जाऊंगा, लेकिन रास्ता भूल गया। भटकते-भटकते हैरान हो गया। रूसी भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण किसीसे बात कर सकना मेरे लिए सम्भव नहीं था। आखिर बेबस होकर सड़क की पटरी पर खड़े होकर राह देखने लगा कि शायद कोई अंग्रेजी या हिन्दी जाननेवाला आ जाय। प्रतीक्षा करते थोड़ी देर हो गई कि एक रूसी लड़की आई और मेरी परेशानी ताड़कर अंग्रेजी में बोली, "मैं आपकी कुछ सहायता कर सकती हूं ?"

मुझे लगा, मानों भगवान की भेजी मदद मिली। मैंने उसकी ओर देखा और बोला, "रास्ता भूल जाने से मैं तो बहुत हैरान हो रहा था और सूझ ही नहीं रहा था कि क्या करूं ! अच्छा हुआ, तुम मिल गई।"

उसने पूछा, "कहां जायंगे ?"

"वैसे जाना तो मुझे बरोल्स्काया शोस्से है; लेकिन इस समय मेरा कोई कार्यक्रम नहीं है, खाली हूं। तुम जहां कहो, चल सकता हूं।"

हम लोग लाल चौक की ओर बढ़े। चलते-चलते लड़की ने पूछा, "मास्को में कब से हैं ? सन्त बसील का गिरजाघर देखा है ?"

मैंने कहा, "मैं यहां हूं तो कई दिन से, लेकिन यह गिरजा नहीं देखा है।"

"तो चलिये, वहीं चलें। पास ही है। वहां पुरानी वस्तुओं का संग्रह है।"

हम लोग उधर ही बढ़े। रास्ते में बातचीत होने लगी।

"पढ़ती हो?"

"जीहां।"

"कौन-सी क्लास में?"

"दसवीं में।"

"कितनी उम्र है?"

"कोई चौदह साल की।"

मैंने विनोद में कहा, "देखो, कैसा संयोग है! मेरी लड़की भी तुम्हारी ही उम्र की है और दसवीं में पढ़ती है। कितने भाई-बहन हो तुम लोग?"

वह बोली, "मेरे बहन कोई नहीं है। एक छोटा भाई है।"

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा, "मेरी लड़की के भी एक ही भाई है। तुम्हारे पिता क्या करते हैं?"

मेरे इस प्रश्न पर वह लड़की जरा ठिठकी, फिर बोली, "वह द्वितीय महायुद्ध में मारे गये।"

मैं उसके चेहरे की ओर देखता रह गया। विनोद का भाव तिरोहित हो गया। लड़की के साथ की तुलना गायब हो गई। मेरे चेहरे का भाव बदल गया। उदासी छा गई। लड़की ने यह देखा तो झट संभलकर बोली, "घर का आदमी जाता है तो बुरा तो लगता ही है; पर सच मानिये, जो हुआ उसका हमें मलाल नहीं है, क्योंकि पिता की मृत्यु देश के लिए हुई।"

चौदह साल की बालिका के मुंह से यह सुनकर मैं दंग रह गया। उसकी वाणी में शिकायत न थी, उल्टे अभिमान था कि उसके पिता के प्राण देश के लिए काम आये।

...   .

एक दिन बस से घर लौट रहा था। मेरे भारतीय कपड़े देखकर एक महिला अंग्रेजी में बातें करने लगीं। उन्होंने पूछा कि मैं कब से मास्को में हूं? कबतक रहूंगा? कहां ठहरा हूं? मास्को कैसा लगा? आदि-आदि। मैंने सब बातों का उत्तर दे दिया। जब वह उतरने लगीं तो बोलीं, "मेरा घर आपके पास ही है। किसी दिन आइये।"

बात आई-गई हो गई। दो-एक दिन बाद एक रोज मेरे बंगाली साथी ने खबर दी कि वह महिला मेरी याद कर रही थीं।

उसी दिन शाम को उनके यहां जाने का मौका हुआ। वह सातवें तल्ले पर रहती थी। छोटा-सा कमरा था, जिसमें दो पलंग थे, दो कुर्सियां, एक छोटी-सी मेज। हम लोग कुर्सियों पर बैठ गये। अपना परिचय देते हुए उन्होंने बताया कि वह कई वर्ष तक दुभाषिये का काम करती रहीं, इसलिए अंग्रेजी बोलने का उन्हें अच्छा अभ्यास हो गया है। उनके पिता प्रोफेसर थे और मां अंग्रेजी की विदुषी थीं। उनके कमरे में बांई ओर की दीवार के दांये कोने में एक बड़ा रंगीन चित्र लगा था। उसकी ओर संकेत करके वह बोलीं, "यह मेरे पिता हैं।

मैंने पूछा, "अब आपके घर में कौन-कौन हैं ?"

पास बैठे बालक के कंधे पर हाथ रखकर उन्होंने कहा, "यह मेरा लड़का है। दूसरा लड़का फौजी ट्रेनिंग में गया है। वह कभी-कभी आता है।"

"और ?"

"बस !"

इतना कहकर उन महिला ने एक लम्बी सांस ली, फिर कुछ ठहरकर बोलीं, "मेरे पति बड़े अच्छे थे। वह भी प्रोफेसर थे। क्रीमिया में लड़ाई में मारे गये। उनके जाने का मुझे उतना दुःख नहीं है, क्योंकि जब देश पर मुसीबत आई तो हर आदमी का कर्त्तव्य था कि देश की रक्षा करे। पर मुझे बड़ा भारी दुःख है अपने आठ बरस के मासूम बालक का, जो बमबारी में हमेशा के लिए चला गया।"

महिला की आंखें डबडबा आईं। रुंधे कंठ से बोलीं, "मैं नहीं जानती, बड़े होने पर वह क्या बनता; पर सच कहती हूं, वह बड़ा होनहार था !"

पिता के चित्र से पांच-छः फुट के फासले पर लगे दूसरे चित्र को हमारी गीली आंखें बड़ी देर तक देखती रहीं।

... ...

एक दिन मास्को से कुछ दूर एक सामूहिक फार्म (कलेक्टिव फार्म) देखने गये। साथ में लखनऊ के मेरे नामरासी की पत्नी श्रीमती प्रकाशवतीजी तथा विदेशी भाषा प्रकाशन-गृह में काम करनेवाले हमारे मित्र शंकर गौड़ थे। फार्म के एक परिवार के निमंत्रण पर हम लोग गये थे। वहां पहुंचने पर उन्होंने हमें अपना बगीचा दिखाया, खेत दिखाया, घर दिखाया, तीस-पैंतीस सेर दूध देनेवाली श्यामा

गाय दिखाई और अन्त में हम लोग जलपान करने मेज पर बैठे। जलपान क्या, पूरा खाना था। खाते-खाते विनोद चलता रहा। कोई घंटे-डेढ़ घंटे हम लोग वहां ठहरे होंगे। घर के लोगों की आत्मीयता तथा आतिथ्य को देखकर बड़ी खुशी हुई। जब विदा लेने लगे तो शंकर ने इशारे से कहा कि इनके बच्चों को कुछ दे देना चाहिए। प्रकाशवतीजी ने अपने बटुए में से कुछ सिक्के निकाले और मेरी ओर बढ़ा दिये। उसमें से सोविनीर के रूप में मैंने स्वतन्त्र भारत का एक पैसा एक बालक को दे दिया। उसपर अशोक-स्तम्भ था। बालक को मैंने वह बताया तो वह प्रसन्न हो गया। प्रकाशवतीजी ने एक इकन्नी दी। एक महिला ने बालक को देने के लिए ज्योंही उसे अपनी हथेली पर रक्खा कि कुछ देखकर उसे उठाकर मेज पर पटक दिया, जैसे वह कोई अस्पृश्य अथवा अवांछनीय वस्तु हो। बोलीं, "इसपर देखते हैं, किसकी तस्वीर है? सम्राट् जार्ज की। वह साम्राज्यवाद के द्योतक थे। फिर इन लोगों ने आपपर कितने दिन हुकूमत की। आपने उसे बर्दाश्त किया, लेकिन स्वतंत्र होने के बाद आप ऐसी चीजों को कैसे सहन करते हैं, यह हमारी समझ में नहीं आता।"

... ...

हमारे देश के बहुत-से लोग विदेशों में जाते हैं। उनमें से कुछ विदेशियों को खुश करने के लिए अपने यहां के बारे में कुछ-का-कुछ कह आते हैं। सोवियत इन्फॉर्मेशन ब्यूरो में जब मैं बोलने गया तो मेरे भाषण के पश्चात् एक सज्जन ने प्रश्न किया, "हमें बताया गया कि आपके देश के ८५ प्रतिशत आदमी गरीब हैं और बड़ी तबाही का जीवन बिता रहे हैं। क्या यह सच है?"

मैं समझ गया कि यह सूचना हमारे ही किसी देशवासी ने उन्हें दी है। मैंने तुरन्त उत्तर दिया, "आपके प्रश्न का पहला भाग सही है, दूसरा बिल्कुल गलत। हमारे यहां के ८५ फीसदी लोग देहातों में रहते हैं, लेकिन वे तबाही की जिन्दगी नहीं बिताते। उनका मानदंड ऊंचा उठाने की जरूरत हम अनुभव करते हैं, लेकिन उनका जीवन तबाही का है, यह नितांत असत्य है। शहरों की अपेक्षा वे कहीं अधिक सुखी और संतुष्ट हैं।"

मुझे लगा, देश के बाहर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम अपने राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं।

... ...

एक दिन शाम को मैं भारतीय दूतावास गया। वहां भोजन करने और बातचीत में रात के ११ बज गये। मुझे मेरे स्थान पर छोड़ आने के लिए दूतावास के एक भाई भेजे गये। हम दोनों ट्राम से रवाना हुए। मैं तो उस शहर के लिए नया था, लेकिन दूतावास के वह सज्जन तीन वर्ष से वहां रहने पर भी रास्ता भूल गये और हम लोग गलत दिशा में बहुत दूर निकल गये। उसी ट्राम में कहीं से एक रूसी महाशय सवार हुए। वह खूब चढ़ाये हुए थे। अन्दर आते ही उन्होंने भारतीय दूतावास के युवक को हाथ पकड़कर उठा दिया और मेरे बराबर बैठ गये। उनके चेहरे की भाव-भंगिमा तथा व्यवहार से मुझे यह समझते देर न लगी कि वह हजरत होश में नहीं हैं। फिर भी मैंने कुछ नहीं कहा और उन्हें बैठ जाने दिया। उनके मुंह से तेज दुर्गंध आ रही थी। बैठकर उन्होंने बांहें फैलाकर अंगड़ाई ली और खट-से अपना सिर मेरे कंधे पर रख दिया। मैं फिर भी चुप बैठा रहा, लेकिन ट्राम में बैठे रूसी भाई-बहनों ने उसकी इस हरकत को बर्दाश्त नहीं किया। एक भाई उठकर आये। उन्होंने उस आदमी के रोकते-रोकते उसे हाथ पकड़कर उठाकर एक ओर को खड़ा कर दिया और अगले पड़ाव पर गाड़ी रुकने पर कन्डक्टर लड़की ने उसे नीचे उतार दिया। अपने देश की मर्यादा का प्रश्न जो था!

... ...

हम लोग लेनिन के आखिरी वर्षों में रहनेवाले गांव गोर्की को देखकर कार से मास्को लौट रहे थे। ड्राइवर ने परिवाचिका के द्वारा मुझसे पूछा कि क्या उस गांव को नहीं देखोगे, जहां रूस के महान् लेखक मैक्सिम गोर्की रहे थे? मुझे भला इसमें क्या उज्र हो सकता था! 'नेकी और पूछ-पूछ।' मैंने कहा, "जरूर चलो।" वह स्थान (गोर्की की गोर्की) मास्को से दूसरी दिशा में ४०-५० किलोमीटर पर था। शहर आकर हम लोग सीधे उधर ही बढ़े। समय की बचत के ख्याल से बस्ती से निकलने पर ड्राइवर ने गाड़ी की रफ्तार तेज़ कर दी। सड़क अधिक चौड़ी नहीं थी। ज्यादा भीड़-भाड़ न होने पर भी बसें-मोटरें आ-जा रही थीं। ड्राइवर बड़ी कुशलता से अपना रास्ता निकालता गया। आठ-दस मील इस तरह गये होंगे कि अचानक हमारी गाड़ी के सामने माल-लदा एक ट्रक आ गया। उससे आगे निकालने के लिए हमारे ड्राइवर ने गाड़ी को जरा किनारे किया। अकस्मात ट्रक के ड्राइवर ने अपनी गाड़ी को अनजाने तनिक उसी ओर को मोड़ दिया, जिधर से हमारी कार निकल रही थी। हमारे ड्राइवर को अपनी गाड़ी को और किनारे

करना पड़ा। इस प्रयत्न में मोटर के बांए पहिए सड़क के किनारे की नाली में चले गये। जोर का झटका लगा। बेचारी दुबली-पतली परिवाचिका पीछे की सीट पर से ऐसी उछली कि आगे ड्राइवर की सीट पर जा गिरी। गाड़ी की रफ्तार काफ़ी तेज थी। मुझे लगा कि गाड़ी अब उलटी, अब उलटी। एक ओर के पहिये नाली में निचाई पर, दूसरी ओर के सड़क के किनारे ऊंचाई पर। कुछ गज तक गाड़ी इसी अवस्था में चलती रही। हमारे दिल कांप रहे थे, पर ड्राइवर ने किसी प्रकार की घबराहट नहीं दिखाई और बड़ी होशियारी से गाड़ी की रफ़्तार को एक साथ तेज करके झट से उसे नाली से बाहर कर लिया और सड़क पर लाकर खड़ा कर दिया।

गाड़ी के रुकते ही हम लोग उतर पड़े। मुझे चिन्ता हुई कि कहीं ड्राइवर के चोट न आई हो। मैंने परिवाचिका के द्वारा उससे पूछा, "क्यों भाई, तुम्हारे कहीं लगी तो नहीं!"

ड्राइवर ने बड़ी व्यग्रता से कहा, "आप बतायें। आप तो सकुशल हैं न?"

मेरे 'हां' कहने पर उसने चैन की सांस ली। बोला, "शुक्र है। आप सही-सलामत बच गये। आप हमारे मेहमान हैं। अगर आपको कुछ हो गया होता तो हमारा मरना हो जाता। हम और हमारे मुल्क का मुंह सदा के लिए काला हो जाता!"

: १८ :

वाणी की स्वाधीनता !

मुझसे अक्सर पूछा जाता है कि रूस का राजनैतिक जीवन कैसा है? क्या वहां के लोगों को वाणी की स्वाधीनता है? वहां का शासन किस प्रकार चलता है? क्या उसमें इस बात की गुंजाइश है कि लोग जो चाहें कह सकें, जो चाहें कर सकें? ये तथा ऐसे ही प्रश्न पूछे जाना बिल्कुल स्वाभाविक है, कारण कि वहां की राजनीति में आये दिन विचित्र घटनाएं घटती रहती हैं और कभी-कभी तो ऐसे परिवर्तन होते हैं, जिनकी बाहर के तो क्या, स्वयं वहां के लोग भी स्वप्न तक में कल्पना नहीं कर सकते।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रूस का सामाजिक जीवन जितना उन्मुक्त और आर्थिक जीवन जितना सन्तोषप्रद है, राजनैतिक जीवन उतना ही अनिश्चित एवं बन्धनयुक्त है। सामान्यतया वहां के लोग राजनीति पर बात ही नहीं करते। बाहर के लोग उनसे कोई सवाल पूछते हैं तो बड़ी विनम्रता से वे कह देते हैं—"खेद है, आपने जो बात पूछी है, मुझे उसकी कोई जानकारी नहीं है।" कोई-कोई कह देता है, "आप बुरा न मानें, हम इस बारे में बाद में बात करेंगे।" बस में, ट्राम में, रेल में या सड़क पर पैदल चलते शायद ही कोई राजनीति के बारे में बात या बहस करता दिखाई देता हो। सवारी में बैठने को जगह मिल गई तो लोग झट अखबार या पुस्तक निकालकर पढ़ने लगते हैं। मैं इतने दिन रूस में रहा, इतना घूमा, लेकिन मैंने राजनीति के बारे में कहीं भी जोरदार चर्चा या गर्मागर्म बहस नहीं सुनी। इतना ही नहीं, बाहर से आनेवाले पर्यटक जब वहां के लोगों को राजनैतिक चर्चा में घसीटना चाहते हैं तो उनकी परेशानी उनके चेहरे से साफ दिखाई देने लगती है। मैंने कई बार अपनी परिचारिका या परिचारक से अथवा अन्य किसी अंग्रेजी या हिन्दी जाननेवाले व्यक्ति से राजनीति के बारे में बात चलाई तो वे न केवल टाल गये, अपितु कुछ बेचैन-से हो उठे। मेरे साथ जो बंगाली भाई वहां थे, उनका

सम्पर्क किसी रूसी परिवार से हो गया और उन्होंने किसी दफ्तर में उस परिवार का टेलीफोन नम्बर दे दिया। मुझे इसका पता न था। एक दिन उस परिवार की महिला मिलीं तो बोलीं, "इस भले आदमी ने सरकारी दफ्तर में तथा दूसरी कई जगहों पर मेरा फोन नम्बर दे दिया है। बार-बार फोन आने से एक तो मेरे काम में हर्ज होता है, दूसरे मुझे वैसे भी बड़ी परेशानी होती है।" इतना कहकर वह चुप होगई, मानों किसीने आगे कुछ कहने से उन्हें रोक दिया हो। पर उनके चेहरे से स्पष्ट था कि आज नहीं तो कल, ये हजरत तो चले जायंगे, पर पीछे उसकी मुसीबत हो जायगी। तरह-तरह के सवाल पूछे जायंगे—यह कौन सज्जन थे? यहां उन्होंने क्या-क्या किया? वह इन्हें कैसे जानती हैं? आदि-आदि। वह बड़ी हैरानी में पड़ जायगी। ऐसी हालत मैंने इस घर में ही नहीं, और भी अनेक परिवारों में देखी।

रूस के लोग काफी जागरूक हैं। अपने काम के बारे में इतनी जानकारी रखते हैं, उसकी बारीकियों को इतनी अच्छी तरह से समझते हैं कि कभी-कभी उनकी बात सुनकर दंग रह जाना पड़ता है। तब यह मानना कि राजनीति की उन्हें जानकारी नहीं है अथवा कि राजनीति में उनकी रुचि नहीं है, ठीक नहीं जान पड़ता। प्रश्न उठता है कि फिर ऐसा क्यों होता है? क्या वहां की सरकार की ओर से उनपर प्रतिबन्ध लगाये गये हैं या वे स्वेच्छा से ऐसा करते हैं?

इस सवाल का जवाब देने के लिए रूस के पीछे के इतिहास पर निगाह डालनी होगी। पीछे हम संकेत कर चुके हैं कि कुछ वर्ष पहले तक रूस के चारों ओर 'लोहे की दीवार' खड़ी हुई थी। वहां के शासकों ने इन वर्षों में अपना ध्यान तथा साधन अपने देश के आर्थिक निर्माण पर केन्द्रित किये। देश की समृद्धि के लिए योजनाएं बनाईं और ऐसी भावना पैदा की कि वहां के कोटि-कोटि निवासी एकनिष्ठ होकर काम में लग गये।

लेकिन यातायात के साधनों ने दुनिया को बहुत छोटा बना दिया और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति ने पारस्परिक सम्पर्क अनिवार्य कर दिया तो रूस के कर्णधारों ने अनुभव किया कि उनके चारों ओर का घेरा उनके लिए अब आगे हितकर नहीं होगा और वे दुनिया की दौड़ में पिछड़ जायंगे। नतीजा यह हुआ कि उन्होंने अपना दरवाजा खोला, लेकिन बहुत थोड़ा और बड़े ही धीमे, क्योंकि वे जानते थे कि उनके द्वार के बाहर विरोधी तत्त्व मौजूद हैं। यही कारण है कि अपने द्वार को पूरा

खोल देने में रूस के शासक आज भी हिचकिचाहट अनुभव करते हैं, लेकिन साथ ही उन्हें यह भी लगता है कि दुनिया से कटकर अलग रहना अब किसी भी राष्ट्र के लिए संभव नहीं है।

रूस के शासकों की इसी भावना का प्रभाव वहां के लोगों पर है। वे विदेशियों के निकट आने, उनसे सम्पर्क स्थापित करने के लिए आतुर हैं, लेकिन साथ ही वे सावधान भी हैं कि उनका देश बाहरी लोगों के स्वार्थ-साधन का निशाना न बने।

रूस में केवल एक पार्टी है—कम्यूनिस्ट पार्टी। उसीके हाथ में सारी शक्ति और सत्ता है। विरोधी दल वहां एक भी नहीं है और न कोई विरोधी पत्र ही। सारा देश पन्द्रह प्रजातन्त्रों में विभाजित है, जिनका चुनाव वहां के नागरिक करते हैं। रूस की सर्वोच्च संस्था सुप्रीम सोवियत है, जिसे देशव्यापी चुनाव के द्वारा चार वर्ष के लिए चुना जाता है।

सुप्रीम सोवियत में दो सदन हैं। संघ की सोवियत और जातियों की सोवियत। संघ की सोवियत के लिए प्रति तीन लाख व्यक्तियों पर एक प्रतिनिधि चुना जाता है। जातियों की सोवियत का चुनाव यूनियन के नागरिक करते हैं। हर संघ प्रजातन्त्र से २५ प्रतिनिधि, हर स्वायत्त प्रजातन्त्र से ११, हर स्वायत्त क्षेत्र से ५ और हर जातीय क्षेत्र से १, इस प्रकार मतदान होता है।

दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में सुप्रीम सोवियत अपने प्रिसीडियम (अध्यक्ष-मंडल) का चुनाव करती है, सोवियत यूनियन सरकार बनाती है और सोवियत यूनियन की सुप्रीम कोर्ट आदि का चुनाव करती है। वस्तुतः यही सुप्रीम सोवियत है, जो राज्य-सत्ता की सभी ऊंची संस्थाओं के काम का संचालन करती है और उनपर कड़ी निगरानी रखती है। उसके दोनों सदनों को समान अधिकार होते हैं। दोनों में से कोई भी कानून बनाने का प्रस्ताव पेश कर सकता है। जब कोई भी कानून दोनों सदनों में आधे से अधिक बहुमत से पास हो जाता है तब वह स्वीकृत समझा जाता है।

सुप्रीम सोवियत के साल में दो अधिवेशन होते हैं। वास्तव में सुप्रीम सोवियत का मुख्य काम तो इन नियमित अधिवेशनों के अवसर पर होता है, लेकिन स्थायी संस्था है प्रिसीडियम और उसीके हाथ में सबकुछ रहता है। वही सोवियत के नये चुनाव का आदेश देता है, अंतर्राष्ट्रीय संधियों की परिपुष्टि करता है, सोवियत यूनियन पर फौजी आक्रमण होने की स्थिति में युद्ध की घोषणा करता है, आम फौजी

भर्ती की आज्ञा देता है, सेना के संचालकों और विदेशों में सोवियत यूनियन के विशेष अधिकार-प्राप्त प्रतिनिधियों को नियुक्त करता है और सम्मान की पदवियां, उपाधियां एवं पदक निर्धारित तथा प्रदान करता है।

प्रिसीडियम में १ सभापति, १५ उपसभापति (प्रत्येक प्रजातंत्र से एक-एक) १ मंत्री तथा १५ सदस्य होते हैं।

१८ वर्ष के प्रत्येक व्यक्ति को मत देने का अधिकार है। इस अवस्था का प्रत्येक नागरिक स्थानीय सोवियत का प्रतिनिधि चुना जा सकता है, लेकिन संघ-प्रजातन्त्र या स्वायत्त प्रजातन्त्र की सुप्रीम सोवियत के लिए २१ और सोवियत यूनियन की सुप्रीम सोवियत के लिए २३ वर्ष की उम्र का प्रतिबंध है। चुनाव गुप्त मतदान द्वारा किये जाते हैं। मतदाता बंद स्थान पर जाकर, जहां अन्य कोई व्यक्ति नहीं होता, पेटी में अपनी पर्ची डाल आता है।

अपना मत देने के बारे में वहां के लोग बड़े सजग हैं। सन १९४६ से अबतक के चुनावों को देखने से पता चलता है कि ९९ फीसदी से अधिक लोगों ने मतदान किया।

चुनाव के लिए वहां की कम्यूनिस्ट पार्टी अपने उम्मीदवार खड़े करती है। इसके अतिरिक्त वहां की सार्वजनिक संस्थाओं के भी उम्मीदवार खड़े होते हैं। मजदूर अपने कारखानों के मजदूरों की आम सभा में, किसान अपने गांवों या सामूहिक खेतों के किसानों की आम सभा में और सैनिक अपनी टुकड़ियों के सैनिकों की आम सभा में अपने-अपने उम्मीदवार नामजद करते हैं।

चुनाव में कोई भी जीते, लक्ष्य सबका एक ही है—किसान-मजदूरों की सरकार बनाना और कम्यूनिस्ट विचार-धारा के आधार पर देश के शासन का संचालन करना।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, रूस की सर्वोच्च सत्ता सोवियत संघ का अध्यक्ष-मण्डल (प्रिसीडियम) है। उसीके स्वर पर सारा देश चलता है। उसकी संयुक्त निष्ठा में जब कोई भी सदस्य विघ्न उपस्थित करता है तो शेष सदस्य उसे कठोर-से-कठोर दण्ड देने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते। विगत वर्षों में जो हुआ है, उसे पाठक भूले न होंगे। सच पूछा जाय तो यह कठोर दण्ड देश में एक प्रकार का आतंक उत्पन्न कर देता है। आम लोग सोचने लगते हैं कि जब बड़े-से-बड़े व्यक्ति के साथ इस प्रकार का व्यवहार हो सकता है तो हम किस खेत की मूली हैं!

यह तो नहीं कहा जा सकता कि रूस के लोग अपनी वर्तमान राजनैतिक स्थिति

से संतुष्ट है। आने या जानेवाले पत्र जब सैंसर होकर अप्रत्याशित विलम्ब से मिलते हैं तो निश्चय ही वहां के लोगों को क्षोभ होता होगा, ५० किलोमीटर से दूर जाने पर जब उन्हें या किसीको भी विदेशी विभाग की परवानगी लेनी पड़ती है तो उन्हें अवश्य ही झुंझलाहट होती होगी, अपने पत्रों में रोज अपने ही देश के अधिकांश समाचार पढ़-पढ़कर उनका जी जरूर ऊबता होगा, लेकिन इन तथा ऐसे ही अन्य अनेक प्रतिबंधों के बावजूद वहां के लोगों के राष्ट्र-प्रेम में कोई अंतर नहीं दिखाई देता। जिसे जो काम मिला है, उसमें वह ऐसी एकाग्रता से संलग्न रहता है, मानो वह उसका निजी काम हो। देश-हित उनके लिए सर्वोपरि है, निजी स्वार्थ गौण है।

रही आलोचना की बात। मुझे बताया गया है कि समय-समय पर सरकारी मंत्रालय के विभिन्न विभागों के कर्मचारियों की बैठकें होती रहती हैं। उनमें वे अपने कार्य का सिंहावलोकन करते हैं और मंत्री तथा अन्य उच्च कर्मचारियों की उपस्थिति में खूब जोरों की आलोचनाएं होती हैं। छोटे-से-छोटा कर्मचारी भी बड़े-से-बड़े व्यक्ति की आलोचना करने के लिए स्वतन्त्र होता है, लेकिन ये सारी आलोचनाएं और विरोध उस विभाग की सरकारी सीमा से बाहर नहीं आ सकते।

प्रत्येक आदर्श समाज में उसके हर नागरिक को स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह जो ईमानदारी से अनुभव करे सो कहे, उसे जो उचित लगे सो करे, लेकिन हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि वाणी की स्वाधीनता के साथ-साथ यह भी जरूरी है कि लोगों में अपना कर्त्तव्य समझने और परिश्रम से उसे पूरा करने की वृत्ति उत्पन्न हो। तभी वाणी की स्वतंत्रता सार्थक हो सकती है और देश के लिए वरदान बन सकती है।

: १६ :

"क्या रूस में धार्मिक स्वतंत्रता है ?"

सामान्यतया विश्वास किया जाता है कि रूस भौतिकता-परायण देश है और वह 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' के सिद्धान्त का अनुयायी होने के कारण मानता है कि यदि किसी देश को उन्नति करनी है तो आर्थिक धरातल पर असंतोष और द्वेष रहना आवश्यक है। आम लोगों की यह भी धारणा है कि रूस की शक्ति और साधन आर्थिक क्षेत्र पर केन्द्रित हैं। अतः प्रायः पूछा जाता है—"वहां धर्म का क्या स्थान है ? क्या वहां धार्मिक स्वतंत्रता है ? लोग जिस धर्म को चाहें मान सकते हैं ? क्या वहां पूजा-उपासना के स्थान हैं और लोग उनमें जाते हैं ?"

वस्तुतः रूस जाने से पूर्व ये तथा कुछ ऐसे ही प्रश्न मेरे मन में भी उठा करते थे। इसलिए जब मैं रूस पहुंचा तो इस सम्बन्ध में मैंने अधिक बारीकी से खोज-बीन तथा चर्चाएं कीं।

रूस में कोई भी सरकारी धर्म नहीं है। वहां धर्मालयों, जैसे गिरजाघर आदि को राज्य-सत्ता से पृथक कर दिया गया है। न गिरजाघर राजनैतिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकते हैं और न राज्य-सत्ता ही गिरजाघरों की आंतरिक समस्याओं में किसी प्रकार की दखलंदाजी करती है। राज्य की ओर से गिरजाघरों को आर्थिक सहायता नहीं दी जाती। उनका तथा पादरियों का खर्चा गिरजों के सदस्यों के चंदे से चलता है।

यह ठीक है कि राज्य की ओर से किसी भी धर्म को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता, लेकिन फिर भी वहां धर्म का अपना स्थान है। प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है कि वह जिस धर्म को चाहे, माने, न चाहे तो न माने। राज्य की ओर से धर्म की बुनियाद पर नागरिकों में किसी प्रकार का भेद नहीं किया जाता। सरकारी कागजों में कहीं भी नागरिक का धर्म नहीं लिखा जाता, न नौकरी आदि देने के समय धर्म के विषय में कोई पूछताछ की जाती है। वहां धर्म प्रत्येक व्यक्ति का निजी मामला है।

किसी दूसरे व्यक्ति अथवा संस्था या राज्य को उसकी आजादी पर दबाव डालने का अधिकार नहीं है। जो लोग सामूहिक रूप में पूजा करना चाहते हैं, वे वैसा करने को स्वतंत्र हैं। यदि बीस व्यक्ति शामिल होने को तैयार हों तो धार्मिक सभा का संगठन किया जा सकता है। ये धार्मिक सभाएं या संस्थाएं कोई नया उपासना-केन्द्र बनवाना चाहें तो बनवा सकती हैं।

रूस में सबसे अधिक ईसाई धर्मावलम्बी हैं। उनके कई गिरजे हैं, जिनमें वे रविवार को तथा अन्य अवसरों पर एकत्र होकर प्रार्थना करते हैं। उनके सबसे बड़े अधिकारी लाटपादरी हैं, जो एक सलाहकार-समिति के परामर्श से सारी व्यवस्था करते हैं।

ईसाइयों के बाद दूसरा नम्बर आता है इस्लाम का। मुसलमानों के चार मुख्य केन्द्र हैं। पहला अजरबाइजान सोवियत प्रजातंत्र की राजधानी बाकू में, दूसरा उजबिकिस्तान की राजधानी ताशकंद में, तीसरा बशकीर प्रजातंत्र की राजधानी ऊफा में और चौथा दागिस्तान प्रजातंत्र के बुइनाक्स्क नगर में। लेकिन अन्य कई स्थानों में भी मुसलमान फैले हुए हैं और उनकी मस्जिदें हैं। लेनिनग्राड में घूमते हुए सहसा मैं एक इमारत के सामने रुक गया और परिचारिका से पूछने पर मालूम हुआ कि यह मस्जिद है।

मुसलमानों में बहुमत प्रायः सुन्नियों का है, किंतु अजरबाइजान तथा कुछ अन्य प्रजातंत्रों में शीयों की संख्या भी काफी है। सबसे संतोष की बात यह है कि दोनों फिरकों के अनुयायियों में किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं है। ये आपस में मेल-जोल से रहते हैं और धार्मिक सिद्धान्तों की पृथकता उनके दिलों के बीच दीवार नहीं बनती।

ईसाई और मुसलमानों के अतिरिक्त वहां दूसरे धर्मावलम्बी भी हैं। बौद्ध धर्म भी वहां के प्रमुख धर्मों में से है। बौद्धों की केन्द्रीय धार्मिक संस्था के अध्यक्ष एक प्रख्यात बौद्ध हैं, जो बुर्यात-मंगोलिया के इवोलगिस्क नामक नगर में स्थायी रूप से रहते हैं।

यहूदियों की संख्या भी रूस में पर्याप्त है। उनके अनेक उपासना-गृह—सिनेगॉग हैं। इनके अलावा रिफार्मिस्ट, मेथॉडिस्ट, सेबिन्थडे, एडवेन्टिस्ट आदि-आदि अल्पसंख्यक मतावलम्बी भी पाये जाते हैं।

गिरजाघरों के आंतरिक मामलों पर विचार करने के लिए समय-समय पर

धार्मिक संस्थाओं के सम्मेलन व परिषदें होती रहती हैं, जिनमें पादरी तथा अन्य लोग भाग लेते हैं। अनेक धर्मों की अकादमियां, धर्म-दीक्षा की पाठशालाएं तथा पादरियों को शिक्षण देने के स्कूल हैं। इन संस्थाओं पर दूसरे मतावलम्बियों अथवा राज्य की ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अपने मत के लोगों के साथ वे स्वतंत्रता-पूर्वक संपर्क रख सकते हैं। इनमें कुछ संस्थाएं तो ऐसी हैं, जो अपने प्रतिनिधि अन्य देशों में रखती हैं।

धार्मिक मामलों में सरकार की हस्तक्षेप की नीति न होने पर भी कभी-कभी ऐसे मसले आ सकते हैं, जिनका फैसला स्वयं न किया जा सके और सरकारी सहायता अपेक्षित हो। ऐसी संभावना को ध्यान में रखकर सोवियत सरकार ने दो समितियां बना रक्खी हैं। एक तो है रूसी ऑरथाडॉक्स गिरजा के मामलों की समिति, दूसरी धार्मिक सम्प्रदायों के मामलों की समिति। वास्तव में इन समितियों का मुख्य काम उन समस्याओं को हल करना है, जिनमें सरकारी अधिकारियों तथा धार्मिक संस्थाओं के बीच विचार-विनिमय की आवश्यकता पड़ती है। ये समितियां इस बात पर भी निगरानी रखती हैं कि धार्मिक स्वतंत्रता तथा उपासना की स्वतंत्रता से सम्बन्धित नियमों का ठीक-ठीक पालन होता रहे। धार्मिक मसलों से सम्बन्ध रखनेवाले नियमों को तैयार करने का काम भी इन्हीं समितियों द्वारा होता है।

धर्म के प्रति रुचि तथा निष्ठा उत्पन्न करने के लिए पादरी सेमिनार करते हैं तथा अन्य साधनों के द्वारा धर्म-भावना के प्रसार का प्रयत्न करते हैं।

शहरों से बाहर की आबादी के लिए भी स्थान-स्थान पर गिरजे हैं। मैं कई सामूहिक खेतों (कलेक्टिव फार्मों) को देखने गया। मुझे बताया गया कि उनकी बस्ती के पास ही, कहीं-कहीं एक-दो मील पर, गिरजाघर हैं।

यह सब होते हुए भी नई पीढ़ी के बीच से धर्म-भावना बड़ी तेजी से लुप्त होती जा रही है। गिरजों, सिनेगॉगों तथा अन्य उपासना-गृहों में वृद्ध नर-नारियों की संख्या अधिक दीख पड़ती है। युवकों को उनके शिक्षालयों अथवा घरों में धर्म के प्रति आस्था रखने के लिए प्रोत्साहन नहीं मिलता। उनकी पुस्तकों में जहां राष्ट्रीय भावना को विकसित करने के लिए पाठ-पर-पाठ रक्खे जाते हैं, वहां धर्म के प्रति उनकी रुचि पैदा करने या उस रुचि को बढ़ावा देने के लिए कोई सामग्री नहीं दी जाती। मास्को में मुझे एक महिला मिलीं। वह बड़ी अच्छी कलाकार थीं।

उन्होंने एक दिन बड़ी वेदना के साथ मुझसे कहा, "मेरे पति तो लड़ाई में मारे गये, पर मुझे उससे भी अधिक रंज इस बात का है कि मेरी लड़की पगली-सी है।"

मैंने पूछा, "क्यों, क्या बात है ?"

महिला ने बड़े निराश स्वर में कहा, "अजी, क्या बताऊं। वह दिन में दो-दो बार गिरजा जाती है और हर घड़ी धार्मिक पुस्तकें पढ़ती रहती है।"

मैंने कहा, "इसमें पागलपन की क्या बात है ? उसे अच्छी-अच्छी धार्मिक पुस्तकें पढ़ने को दीजिये और उसकी धार्मिक वृत्ति को विकसित कराइये।"

वह बोलीं, "आपने भी यह खूब कहा ! उसकी यह उमर तो काम करने की है, धर्म के चक्कर में पड़ने की नहीं। आप जानते नहीं, लड़की बड़ी होशियार है। सात-आठ भाषाएं जानती है। उसकी प्रतिभा का राष्ट्रोपयोगी प्रवृत्तियों में उपयोग होना चाहिए।"

मैंने कई परिवारों में लड़के-लड़कियों से धर्म के बारे में बातें कीं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि धर्म तो बड़े-बूढ़ों की चीज है। जबतक हमारे शरीर में बल है, तबतक हमें अपने कामों में लगे रहना चाहिए। जब शरीर थक जायगा, हाथ-पैर नहीं चलेंगे तब धर्म का सहारा लेंगे। मैंने उनसे कहा कि अगर तुम जरा गहराई और गंभीरता से सोचोगे तो तुम्हें पता चलेगा कि हमारे कामों में धर्म से बड़ी शक्ति मिलती है और उससे हमारी काम करने की क्षमता बढ़ती है। लेकिन यह बात उनकी समझ में नहीं आई। असल में उनका विकास कुछ दूसरे ही वायुमंडल में हो रहा है।

मास्को तथा अन्य नगरों के बहुत-से गिरजे संग्रहालयों में परिवर्तित कर दिये गए हैं। क्रेमलिन के गिरजे, जो कलापूर्ण स्थापत्य-कौशल के अच्छे नमूने हैं, अब पूजा-उपासना के केन्द्र नहीं हैं। उनके विशाल एवं भावपूर्ण चित्र तथा अन्य वस्तुएं अब इतिहास की सामग्री हैं। लाल चौक में, मास्को नदी के तट के निकट का संत बसील का मनोहारी गिरजाघर अब प्राचीन अस्त्रों, चित्रों तथा कतिपय पांडुलिपियों का संग्रह मात्र है। और कई गिरजाघर हैं, जिनके गगनचुम्बी शिखर इंगित करते रहते हैं कि इस दुनिया की शक्ति से भी अधिक बलवती कोई सत्ता है, पर इस तथ्य की ओर ध्यान देनेवाले लोग वहां बहुत थोड़े हैं। अधिकांश व्यक्तियों का जीवन भौतिक धरातल पर बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है और वे अनुभव करते

हैं कि मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म यह है कि वह सुखी रहे। धर्म अथवा अध्यात्म असली सुख की प्राप्ति में किस प्रकार सहायक हो सकते हैं, यह वे नहीं समझ पाते। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि उनकी शिक्षा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास पर अधिक जोर देती है और उन्हें विज्ञान की शक्ति पर अधिकाधिक निर्भर होना सिखाती है। दूसरे, विभिन्न धर्मों की असहिष्णुता तथा रूढ़िगत अन्धविश्वासों की बातों को जानकर उसका मन उस ओर से उदासीन हो गया है। तीसरी एक बात शायद यह है कि उनके देश का समूचा वायुमंडल उनमें नये प्रकार के संस्कार पैदा करता है। स्थान-स्थान पर आपको विशाल मूर्तियां मिलेंगी; लेकिन ये धर्माचार्यों की नहीं हैं। वे हैं श्रमरत-कर्मीजनों की, साहित्यकारों की, वैज्ञानिकों की, इतिहासज्ञों की, राष्ट्रीय नेताओं की। वहां का युवक उनसे कर्त्तव्य-परायण बनने की प्रेरणा लेता है।

क्रेमलिन में जब मैं एक गिरजे को देख रहा था, जिसमें ईसा तथा मरियम के बड़े हृदयस्पर्शी चित्र हैं, एक अंग्रेजी जाननेवाली बहन मेरे पास आई और बोली, "यह गिरजा आपको कैसा लगा?"

मैंने उत्तर दिया, "बहुत अच्छा!"

इसके बाद उसने जो प्रश्न किया, उसपर मुझे हँसी आये बिना न रही। उन्होंने पूछा, "क्या आपके देश में भी पूजा के स्थान हैं?"

मैंने उसे बताया कि हमारे देश में उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक अनगिनत मंदिर हैं और कुछ मंदिर तो इतने सुंदर और कला-पूर्ण हैं कि बाहर के लोग भी उनकी कारीगरी को देखकर दंग रह जाते हैं।

पता नहीं, उन बहन को इसपर विश्वास हुआ या नहीं, पर उनके लिए यह विस्मय की बात थी कि भारत में भी पूजागृह हैं।

इतना होने पर भी, ज्यों-ज्यों रूस का संपर्क अन्य देशों से, विशेषकर भारत से बढ़ रहा है, वहां के बहुत-से युवकों और युवतियों में धर्म के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है। मुझे एक भारतीय मित्र ने बताया कि कई रूसी भाई-बहन जैन धर्म, बौद्ध धर्म, हिंदू-दर्शन आदि में बड़ी रुचि रखते हैं और उनके बारे में भांति-भांति के प्रश्न करते हैं। उनकी इस जिज्ञासा को देखने से पता चलता है कि वे इस ओर अग्रसर हो रहे हैं।

: २० :

रूसी नगरों का आर्थिक संगठन

जर्मनी के आक्रमण से रूस की जो क्षति हुई, वह किसीसे छिपी नहीं है। कहते है, नाजी सेनाओं ने सोवियत संघ के लगभग १७०० नगरों को बर्बाद कर डाला और ७० हजार से अधिक गांवों को जलाकर राख कर दिया। इतना ही नहीं, कोई साठ लाख मकान उनके द्वारा धराशायी किये गए, ढाई करोड़ व्यक्ति बेघरबार हो गये। ऐसे आड़े समय में रूस के निवासियों ने असाधारण साहस से काम लिया और रात-दिन एक करके, अपने अथक परिश्रम से, राख के ढेर को लहलहाते राष्ट्र के रूप में परिवर्तित कर दिया। उनकी उजड़ी दुनिया एक बार फिर ऐसे बस गई, मानों कुछ हुआ ही न हो। संहार-शक्ति से भी बढ़कर सृजन-शक्ति है, इस कहावत को उन्होंने सिद्ध करके दिखा दिया।

रूस के वर्तमान आर्थिक संगठन के विषय में विस्तार से कुछ कहना संभव नहीं है। उसके लिए विभिन्न भागों में स्थित नगरों, गांवों तथा उनके निवासियों की वास्तविक स्थिति का अध्ययन आवश्यक है। फिर भी जितना जो कुछ मैंने देखा, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि वहां के लोग सामान्यतया अपनी आर्थिक स्थिति से संतुष्ट हैं। वे जो कुछ पाते हैं, उससे उनकी दैनिक आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं। भले ही उनके रहन-सहन का स्तर इंग्लैण्ड, फ्रांस अथवा अमरीका की भांति ऊंचा न हो, भले ही उन्हें छोटे-छोटे मकानों में गुजर-बसर करनी पड़ती हो, भले ही उनमें से अधिकांश के पास अपनी मोटर न हो, पर कुल मिलाकर उन्हें आर्थिक दृष्टि से कोई खास लाचारी अनुभव नहीं होती। प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को काम मिल जाता है, खाने को अन्न, पहनने को कपड़े, रहने को मकान, प्रायः निःशुल्क शिक्षा और चिकित्सा की सुविधा। इससे अधिक सामान्य व्यक्ति को और चाहिए भी क्या?

कुछ अपवादों को छोड़कर सोवियत संघ में सबकुछ राज्याधीन है। छोटी-

से-छोटी दुकान से लेकर बड़े-से-बड़े कल-कारखाने आदि सबका संचालन राज्य द्वारा होता है। मकान, शिक्षालय, यातायात के साधन इत्यादि सभी कुछ सरकार के हाथ में हैं। व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसी कोई भी चीज वहां नहीं है। प्रश्न उठता है कि यदि ऐसा है तो व्यक्ति को कार्य करने और देश की सम्पत्ति को बढ़ाने की प्रेरणा कैसे मिलती है? आखिर कोई भी आदमी अपना पसीना तभी तो बहा सकता है जबकि उसे व्यक्तिगत रूप से लाभ हो। सामान्यतया यह बात सही है; लेकिन यह भी सत्य है कि कोई भी राष्ट्र तब आगे बढ़ता है, जबकि उसके नागरिक निजी स्वार्थ को न देखकर देशहित के लिए कार्य करते हैं। रूस ने इन वर्षों में जो आश्चर्यजनक भौतिक प्रगति की है, वह उसके कोटि-कोटि नर-नारियों के निजी स्वार्थों को त्यागकर देश के व्यापक हित में अपनेको खपा देने के कारण ही संभव हो सकी है। यह कहना गलत होगा कि रूस का प्रत्येक निवासी वैयक्तिक स्वार्थ से एकदम ऊपर उठ गया है, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि अपने देश को नीचे गिराकर अपना स्वार्थ साधने की दूषित मनोवृत्ति वहां के अधिकांश लोगों में नहीं है।

राष्ट्रीय भावना के अतिरिक्त रूस का आर्थिक ढांचा भी कुछ इस प्रकार का है कि लोगों को स्वतः ही अपनी पूरी क्षमता से काम करने की प्रेरणा होती है। कुछ लोगों को निश्चित मासिक वेतन दिया जाता है, लेकिन यदि वे काम के साधनों में बचत करके अधिक परिणाम निकालकर दिखा देते हैं तो उन्हें बोनस दिया जाता है, जिसकी राशि उनके वेतन के १० प्रतिशत से लेकर ५० प्रतिशत तक होती है। इसके अलावा अन्य व्यक्तियों को कुछ तो वेतन दिया जाता है और कुछ काम में उनका हिस्सा रहता है। यदि वे अधिक काम कर डालते हैं तो उनकी आमदनी भी उसी अनुपात में बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह २० सेर दूध निकालकर दे। लेकिन वह दे देता है एक मन, तो एक ही दिन में उसके काम की दो इकाइयां (नार्म) उसके हिसाब में दर्ज हो जायंगी और उसीके अनुसार उसे पैसा मिलेगा।

कार्य तथा वेतन की दृष्टि से वहां स्त्री-पुरुषों के बीच भेदभाव नहीं किया जाता। 'समान कार्यों के लिए समान वेतन' का सिद्धांत लागू होता है। हमने कई कारखाने तथा संस्थाएं देखीं। उनमें अधिकांश स्त्रियां काम करती मिलीं। पूछने पर इसका कारण यह बताया गया कि द्वितीय महायुद्ध में लगभग ढाई करोड़ आदमी मारे

गये, फलतः पुरुषों का उपयोग कुछ विशेष विभागों में, जैसे सेना आदि में, अधिक किया जाता है।

चीजें वहां बहुत मंहगी हैं। सामान्य जूता ५-६ सौ रूबल से कम में नहीं मिलता। ओवरकोट में पांच हजार रूबल लग जाते हैं। मामूली कपड़े की कमीज दोसौ रूबल से कम में क्या मिलेगी? ऐसी चीजें, जो कि रोजमर्रा के काम में नहीं आतीं, और भी मंहगी हैं। मुंह पर पाउडर या होटों पर लाली लगाये हजार पीछे एक लड़की भी मुश्किल से मिलेगी, लेकिन उपभोक्ता वस्तुएं अपेक्षाकृत सस्ती है, जैसे रोटी, मांस, साग-तरकारी। दूध डेढ़ रुपये सेर के करीब। प्रयत्न हो रहा है कि दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं के दाम और कम किये जायं। जिन खाद्य पदार्थों के लिए सन् १९४७ में १०० रूबल खर्च करने पड़ते थे, अब उनके लिए ४३ रूबल लगते हैं। पिछले एक वर्ष में रोटी के मूल्य में १४ प्रतिशत, साग-सब्जी में १९, दूध में २१ तथा मक्खन में २८ प्रतिशत की कमी हुई है। रूबल की सरकारी विनिमय-दर एक रुपये तीन आने के बराबर है, लेकिन व्यवहार में एक रुपये के दो रूबल मिल जाते हैं।

जो भी व्यक्ति ३७० रूबल से अधिक पाता है, उसे आयकर देना होता है, जो वेतन के १.५ से लेकर १३ प्रतिशत तक होता है। यह कर प्रायः आमदनी की राशि तथा आश्रितों की संख्या पर निर्भर करता है। यदि किसी व्यक्ति को तीन से अधिक व्यक्तियों का भरण-पोषण करना होता है तो उसके आयकर में ३० प्रतिशत की कमी कर दी जाती है। अधिकतम कर उन व्यक्तियों से लिया जाता है, जिनकी आमदनी १२ हजार रूबल से अधिक है। चिकित्सकों, वकीलों आदि को श्रमिकों की अपेक्षा अधिक कर देना होता है। यदि किसीके कोई बच्चा न हो तो उसे अपनी आमदनी का ६ प्रतिशत कर देना होगा, एक बच्चेवाले को १ प्रतिशत तथा दो बच्चोंवालों को ½ प्रतिशत।

सारे श्रमिकों तथा कर्मचारियों का, भले ही वे कोई हों और कहीं भी काम करते हों, राज्य द्वारा बीमा किया जाता है। सामाजिक बीमे के अन्तर्गत बीमारी-हारी के लिए आवश्यक धन दिया जाता है। इतना ही नहीं, निर्योग्यता एवं वृद्धावस्था-पेंशनें भी सामाजिक बीमे में से दी जाती हैं। जिन परिवारों के जीविकोपार्जक मर गये हैं, वे भी उसी निधि से सहायता पाते हैं। ६० वर्ष की अवस्थावाले पुरुष, जो कि २५ वर्ष तक लगातार कार्य कर चुके हैं और ५५ वर्ष की स्त्रियां जो

कि २० वर्ष तक कार्य कर चुकी हैं, वृद्धावस्था-पेंशन पाने की अधिकारिणी होती हैं। भूमि के भीतर अथवा गर्म दूकानों आदि पर भारी काम करने की स्थिति में पुरुष के लिए ५० या ५५ वर्ष के होने पर तथा २०-२५ वर्ष के सेवा-काल के पश्चात् और स्त्रियों के लिए ४५-५० वर्ष की उम्र तथा १५-२० वर्ष के सेवा-काल के बाद पेंशन की सुविधा हो जाती है। पेंशन की राशि वास्तविक वेतन के ५० से लेकर १०० प्रतिशत तक होती है। कम-से-कम ३०० रूबल प्रति मास।

प्रत्येक व्यक्ति को ८ घंटे प्रतिदिन काम करना होता है। शनिवार को छः घंटे। वर्ष में बारह दिन की छुट्टियां होती हैं। कठिन तथा जटिल कार्यों के लिए ४८ दिन तक की। स्त्रियों के लिए मातृत्व-अवकाश की अवधि ११२ दिन है।

शहरों में कुल मिलाकर शायद ही कोई ऐसा परिवार होगा, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति ७०० रूबल प्रति मास से कम कमाता हो। चूंकि परिवार का हर व्यक्ति काम करता है, इसलिए आमदनी बढ़ जाती है और घर का काम मजे में चल जाता है। ख्रु्श्चेव जैसे उच्च सत्ताधिकारियों को छोड़कर सामान्यतया अधिकतम वेतन सात हजार रूबल प्रति मास है, जो विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों आदि को मिलता है। लेकिन सबसे अधिक आमदनी होती है लेखकों को, जिनकी पुस्तकें लाखों की संख्या में छपती हैं। बाल-साहित्य के प्रमुख प्रणेता कर्नें चकोव्स्की की एक पुस्तक की ३ करोड़ प्रतियां छपीं। राज्य की ओर से लेखकों को अन्य सुविधाएं भी प्राप्त हो जाती हैं।

हमें यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि रूस के लोग बड़ी निष्ठा, तत्परता तथा परिश्रम से काम करते हैं। दुकान, कारखाना, रेडियो, बस, ट्राम, कहीं भी देख लीजिये, स्त्री-पुरुष बड़ी फुर्ती और लगन से काम करते मिलेंगे, यहांतक कि काफी उम्र के बूढ़े स्त्री-पुरुष भी कुछ-न-कुछ करते दिखाई देते हैं। वृद्ध लोग स्थान-स्थान पर जूतों की पालिश लेकर सड़क की पटरी पर बैठ जाते हैं या फूल लेकर अथवा चाकू-कैंची पर धार रखने के लिए चक्के लेकर। बूढ़ी स्त्रियां सड़क पर झाड़ू या ऐसा ही कोई दूसरा हल्का काम करती दिखाई देती हैं। कहने का तात्पर्य यह कि प्रायः लोग काम से बचते नहीं हैं और अंगीकृत कार्य को पूरी शक्ति और दक्षता से करने का प्रयत्न करते हैं।

सवारी के भाड़े सस्ते हैं। भूगर्भ-रेल में कहीं भी चले जाइये, पचास कापक का

टिकट लेना होता है। बस, ट्राम अथवा ट्राली बस का भाड़ा फासले पर निर्भर करता है।

मकान-भाड़ा वेतन के हिसाब से लगता है। लेकिन इधर सरकार लोगों को अपने मकान बनाने की सुविधा एवं साधन दे रही है। इस्त्रा तथा अन्य स्थानों की यात्रा करते समय हमने रास्ते में देखा कि निजी सम्पत्ति के रूप में कुछ लोगों के अपने मकान बन रहे थे।

चूंकि लोगों को काम, रोटी, घर, कपड़े, निःशुल्क शिक्षा तथा चिकित्सा की सुविधा प्राप्त है और वृद्धावस्था की पेंशन भी, इसलिए वे प्रायः लालची नहीं हैं और न पैसा बचाने की ही उनमें वृत्ति है। जो पाते हैं, खर्च कर डालते हैं। सिनेमा-घरों, थियेटरों में अक्सर भीड़ दिखाई देती है, बल्कि मास्को के सबसे बड़े थियेटर बोल्शाई थियेटर आदि के टिकट के लिए हफ्तों प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

वहां की अर्थ-व्यवस्था में एक बात बड़ी विचित्र लगती है। कमाई हजारों में होती है, पर बचता क्या है? कुछ भी नहीं। एक हाथ मिलता है, दूसरे हाथ निकल जाता है। यह स्थिति स्वाभाविक नहीं है। रूबल के प्रति लोगों के मन में कोई ममता नहीं है। वे उसे बहुतायत से मिलनेवाली किसी भी अन्य वस्तु की भांति मानते हैं और वैसा ही उसका उपयोग करते हैं।

कुछ परिवार हमें ऐसे भी मिले, जो सर्वहारा वर्ग की सत्ता स्थापित होने के पूर्व सम्पन्नता का जीवन व्यतीत करते थे। अब उनका तंग स्थान में रहना और सीमित सुविधाएं पाना निश्चय ही उनके लिए सुखकर नहीं है, फिर भी कुल मिला-कर हमें बहुत कम लोग ऐसे मिले, जिन्हें वर्तमान अर्थ-अवस्था से विशेष असंतोष हो।

शहरों की अपेक्षा गांवों का आर्थिक संगठन कुछ भिन्न है। इसकी चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे।

: २१ :

रूस की समृद्धि में ग्रामों का स्थान

रूस के आर्थिक संगठन की बुनियाद को मजबूत करने तथा उसकी समृद्धि को बढ़ाने में वहां के सामूहिक खेतों—कलेक्टिव फार्मों—का प्रमुख हाथ है। इन खेतों को रूसी भाषा में 'कोलखोज' कहते हैं,जो 'कोलक्तिव्नोये खोज्येस्तवो' का संक्षिप्त रूप है। इन फार्मों में किसान-परिवार मिलकर रहते हैं और खेती-बाड़ी करते हैं। ये एक प्रकार से हमारे ग्राम जैसे हैं। अन्तर केवल इतना है कि हमारे यहां के किसान अपने-अपने हल-बैलों से खेती करते हैं, वहां के किसान सारी भूमि को संयुक्त परिवार की मानकर सामूहिक रूप से काम करते हैं। दूसरे, फार्मों की समूची व्यवस्था प्रत्येक फार्म के सदस्यों पर ही निर्भर करती है।

मास्को के हवाई अड्डे से शहर जाते समय दूर से कुछ फार्म मेरी आंखों के सामने से गुजरे थे। बाद में कई फार्म अंदर जाकर देखे। पता लगाने पर मालूम हुआ कि सोवियत संघ में लगभग ८५ हजार ७०० सामूहिक फार्म हैं, जिनमें कोई दो करोड़ किसानों के परिवार सम्मिलित हैं। सन् १९४० में प्रत्येक फार्म में कृषक-परिवारों का औसत ८१ पड़ता था, १९५५ में यह संख्या बढ़कर २२९ हो गई। ये फार्म स्वस्थ जलवायु वाले स्थानों पर बसे हैं। फार्मों में किसानों के घर लकड़ी के बने हैं और बहुत ही साफ-सुथरे हैं। बच्चों की पढ़ाई के लिए हर फार्म में एक हाईस्कूल है और चिकित्सा के लिए ओषधियों के साथ-साथ पेशाब, खून आदि की जांच के लिए आवश्यक प्रसाधनों एवं एक्सरे-प्लाटों से युक्त क्लिनिक है। सारे फार्म के निवासियों के सामूहिक आमोद-प्रमोद के लिए क्लब, पठन-पाठन के लिए पुस्तकालय आदि की भी व्यवस्था है। इस प्रकार हर फार्म अपने-आपमें एक परिपूर्ण इकाई है।

अन्य वस्तुओं की भांति रूस की सारी भूमि राज्याधीन है, लेकिन निःशुल्क उपयोग के हेतु राज्य द्वारा वह फार्मों को अनिश्चित काल के लिए दे दी जाती है।

जो परिवार फार्म में शामिल हो जाते हैं, उनके प्रत्येक सदस्य के लिए आवश्यक नहीं होता कि वे यहां काम करें ही। शहरों के निकटवर्ती फार्मों के अनेक स्त्री-पुरुष शहर में जाकर कल-कारखानों में काम करते हैं।

फार्मों की व्यवस्था उनके सदस्यों की आम सभा तथा प्रबन्ध-मंडल के हाथों में होती है। आम सभा की दो बैठकों के बीच की अवधि में प्रबन्ध-मंडल कार्य-भार संभालता है। प्रबंध-मंडल का एक सभापति होता है, जिसका चुनाव सभी सदस्य मिलकर करते हैं। आम सभा की बैठकों में प्रबन्ध-मंडल की वार्षिक रिपोर्ट, वर्षभर के उत्पादन की योजना तथा प्रत्येक कार्य की इकाई (नार्म) तथा उन कार्यों का काम के दिनों की इकाइयों के हिसाब से मूल्य निर्धारण करने के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। यह भी तय किया जाता है कि कुल आमदनी में से कितनी खेत में ही लगा दी जाय और काम के दिन की प्रति इकाई के लिए नकद या चीजों के रूप में कितना दिया जाय।

प्रत्येक फार्म की सामान्यतया तीन प्रवृत्तियां होती हैं। १. कृषि तथा साग-भाजी की खेती २. फलों का उत्पादन तथा ३. पशु-पालन। इन तथा भूमि एवं चारे-दाने की देख-रेख के लिए पृथक-पृथक 'ब्रिगेड' होते हैं।

हर परिवार के लिए कुछ निजी भूमि भी होती है। इस भूमि का आकार आम सभा की बैठक में इस आधार पर निश्चित होता है कि कृषक-परिवार में काम करने योग्य सदस्य कितने हैं। वह सभा यह भी तय करली है कि प्रत्येक किसान-परिवार निजी रूप में कितने पशु रख सकता है। इस प्रकार जो भूमि मिलती है, उसपर हर परिवार का घर होता है, जिसके इर्द-गिर्द साग-भाजी तथा फल-फूल पैदा किये जाते हैं। हमने बीसियों फार्म देखे होंगे। उनमें एक भी घर ऐसा नहीं दिखाई दिया, जिसके पार्श्व में सुन्दर फूलों की क्यारियां तथा साग-भाजियों की खेती न हो। फूलों से फार्मों की शोभा बढ़ती है और तरकारियों के उत्पादन से खाने के लिए ताजी साग-भाजी मिल जाती है। बहुत-से लोग फूलों को शहर में आकर बेच जाते हैं। रूस में घर को फूलों से सजाने का आम रिवाज है। छोटे-से-छोटे घरों में भी फूलों की बहार दिखाई देती है। इस निजी भूमि की पैदावार तो वैयक्तिक सम्पत्ति होती ही है, यदि कोई चाहे तो उस भूमि को बेच भी सकता है।

सामूहिक फसल पर सारे फार्म का अधिकार होता है। उसकी बिक्री फार्मों द्वारा ही होती है। वे अपनी फसल को जिसे चाहें दे सकते हैं, लेकिन सामान्यतया वे उसे

सरकार को देते हैं, कारण कि एक तो सरकार के पास बहुत बड़ी मात्रा में फसल को खरीदने के साधन होते हैं, दूसरे वह अपने ट्रक आदि भेजकर खेतों से माल मंगा लेती है। यदि फार्मों के व्यवस्थापक अलग-अलग दुकानों को माल बेचें तो उन्हें एक साथ पैसा नहीं मिलता। चीजों के बिकने पर वसूली होती है। इसमें कभी-कभी यह भी खतरा रहता है कि टमाटर आदि बिगड़नेवाली चीजें खराब हो जाती हैं और उनका पैसा नहीं मिलता। इसलिए लोग १५ प्रतिशत कम दाम लेकर भी अपनी वस्तुओं को सरकार के हाथ बेचना ही अधिक लाभदायक मानते हैं। सरकार को जो १५ प्रतिशत मिलता है, उसमें से यह फार्मों को आवश्यकता पड़ने पर कर्ज देती है तथा ट्रैक्टर आदि की सुविधा करती है। ऋण पर २॥ प्रतिशत ब्याज लेती है। राज्य की ओर से भूमि-सुधार, उत्पादन-वृद्धि तथा पैदावार के सुगम विक्रय के लिए जो सुभीते दिये जाते हैं, उनको देखते हुए मूल्य में १५ प्रतिशत की कमी अथवा २॥ प्रतिशत का ब्याज कुछ भी नहीं है।

प्रत्येक फार्म में सामान्यतया १५०० से लेकर ६००० हैक्टर तक भूमि बोवाई के लिए रखनी होती है। कुछ सामूहिक खेतों में अनाज की फसल १० हजार हैक्टर से भी अधिक भूमि में की जाती है।

हिसाब की व्यवस्था बड़ी विचित्र है। हर काम के लिए दैनिक इकाई (नार्म) निश्चित कर दी जाती है। आसान कामों की इकाई को पूरा करने पर उस किसान के नाम आधा दिन लिख दिया जाता है, सामान्य काम के लिए पूरा दिन। यदि काम कठिन या जटिल हो तो उसके लिए अपेक्षाकृत बड़ी इकाई रक्खी जाती है, जो २ से लेकर २॥ तक होती है। प्रत्येक कृषक के नाम जितनी इकाइयां लिखी होती हैं, उन्हींके हिसाब से फार्म की समूची आय में से उसे हिस्सा दिया जाता है। किसान की आमदनी कृषि के परिणाम पर निर्भर करती है। खेत में जितनी अधिक पैदावार होगी, दिन के काम का मूल्य उतना ही अधिक बढ़ जायगा। अतः हर किसान का प्रयत्न होता है कि वह खूब श्रम करे और पैदावार को बढ़ावे, जिससे उसकी आमदनी में वृद्धि हो। सामूहिक कृषि से होनेवाली आय पर किसानों को कोई भी कर नहीं देना पड़ता। मशीनों, औजारों, बीज, खाद आदि पर जितना खर्च आता है, वह संयुक्त होता है। उसे निकालकर जो आमदनी होती है, वही विभाजित की जाती है। इसके अतिरिक्त निजी भूमि पर हुए उत्पादन से भी थोड़ी-बहुत आय हो जाती है। पशु-पालन में दक्षता दिखाने तथा उनके उत्पादन में बढ़ोतरी

करने पर पृथक पारिश्रमिक मिलता है। इस प्रकार कुल मिलाकर किसान संतुष्ट दीख पड़ता है। वृद्धावस्था में पेंशन आदि की सुविधा तो शहरों की भांति उन्हें है ही।

इन सामूहिक फार्मों के अतिरिक्त कुछ फार्म ऐसे भी हैं, जिनका संचालन राज्य की ओर से होता है। ये 'सोव्खोज' कहलाते हैं, जो रूसी भाषा के 'सोवियेत्स्कोवे खोज्येस्तवो' का संक्षिप्त रूप है। इनका उत्पादन भी राज्य के हाथ में रहता है। सोवियत संघ में इस प्रकार के फार्मों की संख्या ५००० के लगभग है, जिनमें अन्न-उत्पादन, कपास की पैदावार, पशु-पालन, फल-उत्पादन, चाय की पैदावार आदि के फार्म भी सम्मिलित हैं।

राज्यीय फार्म का औसत क्षेत्रफल १७,४०० हैक्टर होता है और फलों की भूमि का ५००० हैक्टर। इन फार्मों के कार्य का दायित्व 'राज्यीय फार्मों के सोवियत मन्त्रालय' पर रहता है। उसीके द्वारा निर्देशकों की नियुक्ति होती है। विगत पांच वर्षों में इन फार्मों ने अनाज के उत्पादन में ६० प्रतिशत, साग-भाजियों में १७० प्रतिशत, पशु-धन तथा दूध में दुगने तथा ऊन में ६० प्रतिशत की वृद्धि की है। छठी पंचवर्षीय योजना में निश्चय किया गया था कि देश में उत्पन्न होनेवाले कुल अनाज का ११ वां भाग राज्यीय फार्मों द्वारा जुटाया जायगा।

मास्को से कोई २५ किलोमीटर पर एक फार्म है, जिसे रूसी में 'पामियते इलिच', अर्थात् 'इलिच फार्म' कहते हैं। इसका नामकरण लेनिन के नाम पर किया गया है। यह फार्म हमें विशेष रूप से दिखाया गया। हमारी टोली में कई देशों के लोग थे। वहां पहुंचने पर फार्म के अध्यक्ष रामान्यूक ने हम लोगों का स्वागत किया। उन्होंने हमें एक कमरे में बिठाकर बताया कि उस फार्म की स्थापना २५ जनवरी १६३० में हुई थी। आरम्भ में फार्म में बहुत थोड़ी भूमि थी और बिजली आदि की सुविधा नहीं थी। जमीन उपजाऊ न होने के कारण उसपर बड़ा परिश्रम करना पड़ा। आज उस फार्म के पास ८०० हैक्टर भूमि है, फलों के बगीचे हैं, साग-भाजियां बहुत बड़ी मात्रा में पैदा होती हैं और सैकड़ों गायों, घोड़ों, मुर्गियों आदि का पालन होता है। तीनसौ से अधिक परिवार वहां रहते हैं। उनके अपने ६ ट्रैक्टर और १६ ट्रक हैं। अपनी असाधारण प्रगति और उपलब्धि के कारण सन् १६३६ में इस फार्म को 'आर्डर ऑव लेनिन' प्राप्त हुआ।

फार्म के कार्य को पांच विभागों में विभक्त कर दिया गया है। १. अन्नो-

त्पादन २. फल ३. सागभाजी ४. चारा-दाना और ५. पशु-पालन। प्रत्येक विभाग का कार्य एक-एक ब्रिगेड़ के सुपुर्द है। व्यवस्था के लिए १७ सदस्यों का, जिसमें ६० प्रतिशत महिलाएं हैं, एक बोर्ड है। उसका चुनाव ग्राम सभा के द्वारा होता है।

अन्न की खेती-बारी देखने के उपरान्त हम लोग साग-भाजी का विभाग देखने गये। उसमें अनेक प्रकार की चीज़ें उग रही थीं। जाड़ों में शीत और पाले से बचाव करने के लिए खेतों में गहरी क्यारियों में फसल बोई जाती है। उन्हें ढकने के लिए शीशे के ५ × ३ फुट के चौखटे लगे हुए थे। गर्मियों में चौखटों को एक ओर से उठा देते हैं, जिससे हवा और धूप भीतर पहुंच जाती हैं। कई तरकारियां बारहों महीने मिलती हैं। जाड़े के दिनों में पौधों और बेलों को गर्मी पहुंचाने की भी व्यवस्था है। पाइपों द्वारा तरल खाद दिया जाता है।

खीरे और टमाटर का वह मौसम था। हमारी परिचायिका छोटे-छोटे मुलायम खीरे तोड़कर लाई, जो हमारे यहां के खीरों की तरह थे। उन्हें खाते-खाते हमें लगा कि ऐसे स्थान पर दूसरों के श्रम का उपयोग न करके स्वयं पुरुषार्थ करना चाहिए। फिर क्या था! हमारी टोली लगी खीरों की बेलों को टटोलने। पतले-पतले खीरे तोड़कर खुद खाये, दूसरों को खिलाये। अधिकारियों ने बताया कि इस फार्म में सन् १९५६ में साग-भाजियों की बिक्री से लाखों रूबल की आय हुई। आठ लाख रूबल फलों से प्राप्त हुए।

साग-भाजियों के हरे-भरे खेतों से चलकर हम लोग गोशाला में पहुंचे। वहां बहुत-सी गायें थीं। बड़ी ही हृष्ट-पुष्ट। एक-एक गाय ३०-३०, ३५-३५ सेर दूध देती है। इतना दूध आदमी हाथ से कबतक निकालेगा! अतः दूध मशीन से निकाला जाता है। पानी पीने के लिए हर गाय की नांद के पास एक-एक नल इस ढंग से लगाया गया है कि गाय के मुंह लगाने पर उसमें से पानी निकलने लगता है। नीचे एक कुंडी-सी लगी है, जिसमें गिरनेवाले पानी को गाय सुविधा से पी लेती है। नल अपने-आप बन्द हो जाता है। इससे पानी बिखरने नहीं पाता और गन्दगी नहीं होने पाती। बछियों और बछड़ों को रखने की अलग व्यवस्था है।

गोशाला देखने के बाद हम सेबों के बगीचे में पहुंचे। पेड़ सेबों से लदे थे। फार्म के अधिकारी ने एक पेड़ के पास ले जाकर कहा, "वैसे तो इस सारे बगीचे के ही सेब मीठे हैं, लेकिन इस पेड़ के फलों को ज़रा खाकर तो देखिये। आपकी तबीयत खुश हो जायगी।" फिर कुछ रुककर उन्होंने कहा, "पककर जो फल अपने-आप टूटकर

नीचे गिर जाते हैं, उनकी मिठास निराली होती है। पक्षियों के खाये हुए फल भी बड़े मीठे होते हैं। आपको तो पता होगा ही कि पक्षी बड़ी होशियारी से फलों का चुनाव करते हैं। उन्हें फौरन पता चल जाता है कि सबसे बढ़िया फल कौन-सा है।"

हम लोगों ने पेड़ के नीचे पड़े हुए सेबों को उठाकर खाना शुरू किया, लेकिन उससे संतोष न हुआ तो ऊपर से तोड़ने लगे। जितने वहां खा सकते थे, खाये। कुछ साथ में भी ले लिये।

वहां से चलकर हम एक राजीय फार्म देखने गये। जंगल में होने के कारण स्थान बड़ा रमणीक था। सन् १९१८ में लेनिन वहां कुछ दिन रहे थे। पेड़ काटकर कुछ भूमि खेती के योग्य बनाई गई। प्रारम्भ में कुल ४० हैक्टर भूमि थी, अब १४०० हैक्टर है। खेती-बारी के अतिरिक्त गायें, घोड़े, मुर्गी आदि के पालन का भी इस फार्म में प्रबन्ध है। २२४ दूध देनेवाली गायें थीं। पूछने पर मालूम हुआ कि एक-एक आदमी २०-२५ गायों की देखभाल करता है। तीन बार दूध निकाला जाता है। चारे की दृष्टि से फार्म स्वावलम्बी है।

फार्म में ३०० व्यक्ति काम करते हैं। उनको ७० प्रतिशत वेतन मिलता है और ३० प्रतिशत काम का लक्ष्य पूरा होने पर दिया जाता है। डाइरेक्टर को महीने में १४०० रूबल मिलते हैं, उसी अनुपात से। लक्ष्य से अधिक काम होने पर अधिक आमदनी होती है। गोशाला में काम करनेवाली स्त्रियां ८०० से १००० रूबल प्रतिमास तक कमा लेती हैं।

जाड़ों में जब खेती का काम नहीं होता या कम होता है तो लोग अपने समय का खाली बैठकर अपव्यय नहीं करते। चटाई या टोकरियां आदि बुनते हैं अथवा अन्य पूरक धंधे करते हैं। विशेषज्ञों को तो पूरे साल फार्म का ही काम रहता है।

देश के उत्पादन को बढ़ाने में सामूहिक फार्मों का महत्वपूर्ण स्थान है। फार्मों के निवासी बड़े तन्दुरुस्त दिखाई दिये। भूमि के साथ आत्मीयता का नाता होने के कारण वे खूब मेहनत करते हैं और इस प्रकार निजी लाभ के साथ-साथ राज्य की समृद्धि को भी बढ़ाने में योगदान करते हैं। जो लोग अधिक परिश्रम करके उत्पादन का आदर्श उपस्थित करते हैं, उनके चित्र क्लबों में लगाये जाते हैं। अन्य चीजों को दिखाते समय सब फार्मों के अधिकारी उन चित्रों का परिचय देते हैं तो उनकी आंखें उमंग तथा उछाह से चमक उठती हैं। सामूहिक फार्मों का इतिहास बहुत पुराना नहीं है, लेकिन कुछ ही वर्षों में उनकी जड़ें बहुत ही गहरी हो गई हैं।

: २२ :

सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन

रूस के निवासियों का सामाजिक जीवन बड़ा उन्मुक्त है। उसमें संकीर्णता प्रायः नहीं दिखाई देती। यह ठीक है कि वहां के अधिकांश व्यक्तियों के पास आलीशान मकान नहीं हैं, यह भी ठीक है कि उनके पास यूरोप के अन्य देशों की भांति बढ़िया पोशाकें नहीं हैं, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि जो मिलनसारिता, आत्मीयता तथा सेवा-वृत्ति रूस के लोगों में मैंने पाई, वह अन्यत्र दिखाई नहीं दी।

बहुत-से लोगों की धारणा है कि रूस के निवासियों में परिवार-भावना नहीं है। उनकी धारणा है कि लड़का बड़ा हुआ, उसने शादी की कि मां-बाप से उसका सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है और फिर वे एक-दूसरे के सुख-दुःख में काम नहीं आते। इस बात में आंशिक सत्य है। विवाह के बाद अक्सर लोग मां-बाप से अलग हो जाते हैं, लेकिन उनके सम्पर्क और स्नेह-सम्बन्ध बराबर बने रहते हैं। मुझे याद है कि भाई सोमसुन्दरम की पत्नी, जो रूसी हैं, कितनी चिंतित थीं, जबकि उनकी माताजी अस्वस्थ थीं और अस्पताल में चिकित्सा करा रही थीं। वह प्रतिदिन शाम को उन्हें देखने जाती थीं। कहने का तात्पर्य यह कि दुःख में वे लोग एक-दूसरे के काम आते हैं और खुशी के अवसरों पर भी वे सामूहिक रूप से एकत्र होकर अवसर की शोभा और आनन्द में वृद्धि करते हैं।

इसी प्रकार लोग यह भी कहा करते हैं कि रूस में पति-पत्नी के सम्बन्ध बहुत स्थायी नहीं होते। जबतक कोई बात नहीं, दम्पत्ति साथ रहते हैं, लेकिन जरा-सी बाधा उपस्थित हुई कि अलग हो जाते हैं। यह बात सही नहीं है। रूस में तलाक को अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता और एक बार विवाह के सूत्र में बंध जाने पर उसे निभाने का भरसक प्रयत्न किया जाता है। पति-पत्नी एक-दूसरे को प्रेम करते हैं, लेकिन उनके प्रेम में संकीर्णता नहीं है। जरा-सी बात पर सन्देह की निगाह से एक-दूसरे को देखने की दूषित वृत्ति उनमें नहीं है। वे सुविधानुसार साथ-साथ

और कभी-कभी अपने-अपने मित्रों, सम्बन्धियों के साथ सांस्कृतिक कार्यक्रमों आदि में जाते हैं, खुलकर दूसरों से मिलते हैं, लेकिन उसका उनके वैवाहिक सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। बहुत गंभीर कारण उपस्थित होने और अदालती कार्रवाई के बाद ही तलाक की अनुमति मिलती है। एक पत्नी के रहते दूसरी शादी करना कानूनन अपराध है।

अविवाहित लड़कियों पर वहां कड़े प्रतिबन्ध नहीं हैं। वे जब जहां जाना चाहें, जा सकती हैं। मां-बाप की ओर से उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता है। लेकिन वे उस आजादी का दुरुपयोग प्रायः नहीं करतीं, यों अपवाद सब जगह निकल आते हैं। वहां क्वारी कन्या के संतान होना अच्छा नहीं माना जाता, लेकिन यदि इस प्रकार की लाचारी कभी उपस्थित हो जाती है तो लड़की को पतित या हीन नहीं माना जाता। उसकी प्रसूति की भली प्रकार व्यवस्था की जाती है और उस संतान को मां के नाम के साथ जोड़ दिया जाता है।

विवाहों की रजिस्ट्री होती है। इस कार्य के लिए सिविल रजिस्ट्री ब्यूरो है। उसमें रजिस्ट्री होने के बाद ही शादी पक्की होती है। पति-पत्नी के पासपोर्टों में दर्ज हो जाता है कि वे विवाहित हैं। शादी के बाद अक्सर अपनी हैसियत के अनुसार दावत दी जाती है।

विवाह के बाद जमा की गई सम्पत्ति पर पति-पत्नी दोनों का समान अधिकार होता है। यदि दोनों में से कोई शारीरिक रूप से अशक्त हो जाय तो उसकी देख-भाल की जिम्मेदारी दूसरे पर होती है।

स्त्रियों का प्राधान्य होने के कारण प्रत्येक विभाग में ज्यादातर लड़कियां काम करती हैं। वे छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े काम को संभालने की क्षमता रखती हैं, यहांतक कि टेकनीकल कामों में भी वे अग्रणी रहती हैं। चिकित्सा आदि के क्षेत्रों में तो स्त्रियों का प्रतिशत बहुत अधिक है।

बाजार से खरीद-फरोख्त का काम मुख्यतः स्त्रियां ही करती हैं। दुकानों पर सामान लेने का वहां अपना ढंग है। प्रत्येक वस्तु के दाम निश्चित हैं। अधिकांशतः चीजों के सामने दाम लिखे रहते हैं। आपको जो चीज चाहिए, देख लीजिये, दाम जान लीजिये और उतने दाम का काउंटर से कूपन खरीद लीजिये। उस कूपन को जब आप बेचनेवाली बहन या भाई को देंगे तब आपको वह वस्तु मिलेगी। इसमें कभी-कभी बहुत विलम्ब हो जाता है और यदि भीड़ अधिक हो तो व्यक्ति के

धीरज की परीक्षा हो जाती है। मैंने बीसियों दुकानों पर खरीद-फरोख्त होते देखी, लेकिन क्या मजाल कि कोई भी स्त्री उतावली होकर दूसरी को धक्का देकर स्वयं आगे बढ़ने का प्रयत्न करे। फलों या साग-भाजियों की दुकानों पर तो हमेशा लम्बी कतार लगी रहती है, किन्तु हरकोई अपनी बारी की प्रतीक्षा करता है। एक रोज रात को मेरे एक भारतीय मित्र अंगूर खरीदने गये। दुकान पर बड़ी लम्बी लाइन लगी थी। मित्र उसीमें जाकर खड़े हो गये। मुझे कुछ खरीदना नहीं था, अतः खिड़की के पास खड़े होकर तमाशा देखने लगा। इतने में एक सज्जन आये और पंक्ति में न खड़े होकर सीधे खिड़की पर पहुंच गये और अंगूरों की मांग करते हुए पैसे हाथ में लेकर खिड़की के अंदर हाथ बढ़ा दिया। लड़की ने सामान देने से इन्कार कर दिया। इतना ही नहीं, एक दस-बारह साल का बालक पंक्ति में से निकलकर आया और उस आदमी की बांह पकड़कर संकेत किया कि लाइन में आ जाओ, पर वह भला आदमी अपने स्थान से नहीं हिला। इसपर उस बालक ने धीरे-से उसकी बांह पर एक मुक्का मारा और फिर अपनी बारी लेने का इशारा किया। इतने पर भी जब वह नहीं माना तो सब समझ गये कि वह हजरत चढ़ाये हुए हैं।

दुकानों पर हिसाब लगाने की पद्धति बड़ी सुगम है। हर दुकान पर जोड़ के लिए बड़े-बड़े दानों का एक बोर्ड होता है। उसमें रूबल तथा कापेक के जोड़ की पंक्तियां निर्धारित होती हैं। उनकी मदद से सैकड़ों-हजारों के जोड़ बात-की-बात में लग जाते हैं। बीसियों चीजें ले लीजिये। आपको हिसाब की हैरानी हो सकती है, पर बेचनेवाली बहन बड़े आराम से उस बोर्ड के दानों की सहायता से आपको योग बता देंगी। बड़ी-बड़ी दुकानों पर जोड़ लगाने की मशीनें हैं।

उपभोक्ता वस्तुएं वहां बहुतायत से मिल जाती हैं, लेकिन आराम तथा ऐश्वर्य की चीजों की बड़ी कमी है। हम बता चुके हैं कि पाउडर तथा होठों की लाली जैसी चीजें वहां बड़ी महंगी मिलती हैं। धूप का चश्मा भी मैंने बहुत कम क्या, शायद ही किसीको लगाये देखा हो। बिजली का टोस्टर अथवा सिगरेट सुलगाने का लाइटर भी वहां दुर्लभ है।

लोगों में प्रायः फैशनपरस्ती नहीं है। अपने देश में उन्हें जो वस्त्र सुलभ हैं, उसे पहन लेते हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि जो प्राप्य नहीं है, उसके लिए वे शिकायत नहीं करते, न बड़बड़ाते हैं। स्त्रियों में सिगरेट पीने की प्रथा नहीं है। वे धूम्रपान को बुढ़ापे की निशानी मानती हैं और उससे बचने की भरसक चेष्टा

करती हैं।

घरों को साफ-सुथरा रखने तथा सजाने में वहां के लोग बड़े तत्पर हैं। छोटे-से-छोटे घर का व्यवस्था-कौशल देखने योग्य होता है। कम-से-कम आयवाला व्यक्ति भी एक-दो रूबल के फूल खरीदकर फूलदान में अवश्य रखता है। नवीनता बनाये रखने के लिए वे कमरे में सामान का क्रम तथा स्थान अक्सर बदलते रहते हैं।

रूस में कबूतरों को चुगाने की प्रथा का बड़ा प्रचलन है। कबूतर सारे संसार में शांति का प्रतीक माना जाता है, अतः यह स्वाभाविक है कि शांति के लिए प्रयत्नशील रूस शांति के इन प्रतीकों का आदर करे और उनके प्रति आत्मीय भाव रक्खे। लाल चौक में, लेनिन पुस्तकालय के पास के मैदान में तथा अन्य स्थानों में कबूतरों के झुंड-के-झुंड देखे जा सकते हैं। कबूतरों को चुगाने की यह प्रथा यूरोप के अन्य देशों में भी पाई जाती।

रूस में साप्ताहिक छुट्टी रविवार की रहती है। शनिवार की शाम को लोग बड़े ही हर्षोन्मत्त दिखाई देते हैं। स्त्री-पुरुषों की टोलियां हँसती, गाती, विनोद करती घर से निकलती हैं और कुछ घंटों के लिए जीवन के भार को और नीरसता को भूल जाती हैं। उल्लास की अवस्था में होने पर भी अमर्यादित शायद ही किसी-को पाया जा सके। शनिवार की रात को वे लोग मित्रों को खाने पर बुलाते हैं और उनके साथ खूब नाच-गान होता है। घर के छोटे-बड़े सब उसमें हिस्सा लेते हैं। विनोद की मात्रा रूसी लोगों में काफी होती है। चेहरे पर मनहूसियत का जामा पहने कम ही लोग मिलेंगे।

बाजार वहां सोमवार को बन्द रहता है। इससे लोगों को बड़ी सुविधा होती है। रविवार की छुट्टी के दिन लोग जाकर आराम से सामान खरीद लाते हैं।

रूस में बहुत-से स्त्री-पुरुषों के दांत लगे हुए होते हैं। लेकिन मजे की बात यह है कि नकली दांत स्टेनलैस स्टील के होते हैं। मुंह खोलते ही साफ दिखाई दे जाते हैं। सोने के दांत बहुत कम लोग लगवाते हैं। सफेद दांत, पता नहीं, वहां क्यों नहीं मिलते। मैंने एक भी व्यक्ति को सफेद दांत लगाये नहीं देखा।

धर्म को वहां राज्य की ओर से प्रोत्साहन न मिलने पर भी विभिन्न धर्मों के अनुयायी समय-समय पर धार्मिक उत्सव करते रहते हैं। पर उनमें प्रायः वृद्ध स्त्री-पुरुषों की संख्या अधिक रहती है, युवकों और युवतियों की कम।

सांस्कृतिक कार्यक्रम वहां बहुत लोकप्रिय हैं। कुशल-से-कुशल अभिनेता,

संगीतज्ञ, गीतकार, नृत्यकार आपको मिल जायंगे। ऑपेरा-भवन तो जितने रूस में हैं उतने संसार के किसी भी देश में नहीं हैं। मास्को का बोल्शाई थियेटर, लेनिनग्राड का किरोव थियेटर तथा मैर्ली ऑपेरा थियेटर, कीव का शीवशेंको थियेटर दूर-दूर तक विख्यात हैं।

रूस के बेले (नृत्य-नाट्य) सारी दुनिया में मशहूर हैं। जिन दिनों मैं मास्को पहुंचा, वहां का सबसे लोकप्रिय बेले 'स्वान लेक' चल रहा था। उसे देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी, लेकिन हफ्तों पहले टिकट लेना होता है। मुझे सुविधा नहीं हुई। बाद में बोल्शाई थियेटर कुछ दिन के लिए बन्द हो गया। जब मैं अन्य देशों में घूमकर मास्को लौटा तो बोल्शाई थियेटर खुल गया था और उसमें 'फाउण्टेन' बेले चल रहा था। वह भी 'स्वान लेक' की टक्कर का है। संयोग से एक मित्र की सहायता से टिकट की व्यवस्था हो गई। देखने गये। जैसा सुना था, वैसा ही निकला। एक तो थियेटर-भवन बड़ा कलापूर्ण है। दूसरे, उसका मंच अपने ढंग का एक ही है। इतना विशाल मंच मैंने अन्यत्र नहीं देखा। तीसरे, खेल बड़ा ही भावपूर्ण तथा हृदय-स्पर्शी था। एक उजबेक अमीर एक लड़की पर आसक्त हो जाता है, लड़की बहुत ही सुन्दरी है। जब अमीर की बेगम को इसका पता चलता है तो वह उसका मन उधर से हटाने के लिए प्रयत्न करती है, पर निष्फल। उसकी ईर्ष्या बढ़ती जाती है। अन्त में वह उस कोमलांगी सुन्दरी की हत्या करवा देती है। अमीर को जब यह मालूम होता है तो उसे बड़ी वेदना होती है और उसकी स्मृति में वह एक 'फाउण्टेन' (निर्झर) का निर्माण कराता है। बस इतनी-सी कहानी है, लेकिन अमीर का प्रेम और मानसिक संघर्ष, बेगम की ईर्ष्या, लड़की का सौंदर्य तथा युद्ध आदि नृत्य-नाट्य द्वारा इतने प्रभावशाली ढंग से दिखाये गए हैं कि दर्शक मुग्ध रह जाते हैं। बीच-बीच में नृत्य तो कमाल के हैं। पैर के अंगूठे के छोर पर सारे शरीर को संतुलित करके थिरकना और गति-पूर्वक नृत्य करना, एक युवक का जरा-से सहारे से नर्तकी को ऊपर इस सहजता से उठा लेना, मानों वह स्वतः ही हवा में उड़ गई हो, शरीर से विभिन्न अंगों को फैलाकर भांति-भांति की आकृतियां बनाना, ये सब चीजें ऐसी हैं कि जिनकी बिना देखे कल्पना नहीं की जा सकती।

मंच घूमनेवाला होने से दृश्यों के बदलने में देर नहीं लगती। आप नवाब का महल देख रहे हैं। पर्दा गिरते ही मिनटों में एकदम दूसरा ही दृश्य सामने आ जाता है। यदि मंच घूमनेवाला न हो तो उस दृश्य की तैयारी में घंटों लग जायं। एक

विशेषता और है। और वह यह कि मंच और पर्दों की ऐसी व्यवस्था की गई है कि दृश्यों में गहराई भी साफ अनुभव होती है। सड़क है तो लगता है, मीलों लम्बी चली गई है। उसपर दौड़ते घोड़े को देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानों वह किसी वास्तविक सड़क पर दौड़ रहा है।

इसी प्रकार ऑपेरा (संगीत नाट्य) भी वहां की विशेषता है। सीधे-सादे दृश्य, पर इतने सजीव कि लगता है, मानों हम वास्तव में उन स्थानों को देख रहे हैं, मंच पर नहीं। अभिनय इतना भावपूर्ण कि बिना भाषा समझे भी आप ऊब नहीं सकते। पात्रों की भाव-भंगिमा से कहानी अपने-आप स्पष्ट हो जाती है।

बच्चों के थियेटर-भवन पृथक् हैं। उनमें बच्चों के मनोरंजन तथा चरित्र-निर्माण के लिए उन्हींके अनुरूप नाटक किये जाते हैं।

सर्कस रूस में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। लगभग पचास स्थायी सर्कस-गृह हैं। छुट्टियों के ही दिनों में नहीं, अन्य दिनों में भी वहां लोगों की बेहद भीड़ रहती है। टिकट की व्यवस्था पहले से करानी होती है।

यही हाल सिनेमा-घरों का है। अनेक सिनेमाघर स्थायी हैं, कुछ चलते-फिरते सिनेमाघर हैं। लेनिन सिनेमा को बहुत महत्व देते थे। बड़े-बड़े लेखकों की कृतियों की वहां काफी फिल्में बनी हैं, इतिहास की घटनाओं को भी चित्रों का विषय बनाया गया है। सिनेमाघर बड़े ही सुरुचिपूर्ण तथा आरामदेह हैं।

कठपुतली के खेल तो वहां बहुत ही लोकप्रिय हैं। उनकी कला को विकसित करने के लिए राज्य ने बहुत खर्च किया है। तभी वे आज इतनी उन्नत अवस्था में हैं कि अन्य देशों के लोग भी उन्हें देखकर दंग रह जाते हैं।

रूस के निवासी बड़े ही कला-प्रेमी हैं। सामान्य-से-सामान्य परिवार भी सिनेमा, नाटक आदि पर खूब खर्च करते हैं।

छुट्टियों में लोग प्रायः शहर से बाहर चले जाते हैं। छोटे-बड़े सभी घूमने के शौकीन हैं। यातायात की सुविधा के कारण इधर-उधर आने-जाने में विशेष कठिनाई नहीं होती। दर्शनीय स्थानों तक जाने के लिए बसें आदि सुलभ रहती हैं।

चित्रकारी, संगीत, नृत्य आदि के शिक्षण को राज्य की ओर से बराबर प्रोत्साहन मिलता है। इनके विकास के लिए वहां छोटी-बड़ी अनेक संस्थाएं है। इतना ही नहीं, वहां बहुत-से ऐसे केन्द्र भी हैं, जो इन विषयों में प्रयोग और अनुसंधान करते रहते हैं।

: २३ :

शिक्षा की प्रगति

पिछले वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में रूस ने जो प्रगति की है, वह निस्संदेह प्रशंसनीय है। सन् १८९७ की जनगणना के अनुसार रूस में केवल २७ प्रतिशत प्रौढ़ साक्षर थे। जार के जमाने में शिक्षा के प्रसार की विशेष सुविधाएं नहीं थीं, बल्कि यह कहना अधिक ठीक होगा कि उस ओर शासन की कोई खास रुचि नहीं थी। कुछ स्थानों की तो बड़ी ही अजीब-सी हालत थी। कजाकों में केवल दो प्रतिशत लोग लिखना-पढ़ना जानते थे। किरगिजों की दशा तो और भी बदतर थी। कोई भी देश बिना शिक्षा की समुचित व्यवस्था और प्रसार के ऊपर नहीं उठ सकता। क्रांति के बाद रूस में भी शिक्षा के देशव्यापी प्रचार के लिए जोरों से प्रयत्न किया गया। बिना स्त्री, पुरुष और राष्ट्रीयता के भेद के सबको सामान सुविधाएं दी गई। नई शिक्षा-संस्थाएं खोली गई, अध्यापक तैयार किये गए। इन सब प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि आज वहां शत-प्रतिशत शिक्षित हैं। प्रारंभिक, माध्यमिक, उच्चतर तथा विश्वविद्यालय अथवा इन्स्टीट्यूट की शिक्षा सभीको उपलब्ध है। सन् १९२० और ४० के बीच लगभग ५ करोड़ प्रौढ़ों को शिक्षित किया गया। १९३९ की जन-गणना के अनुसार ९ वर्ष की अवस्था से लेकर ४९ वर्ष की अवस्था तक के ८९ प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हो गये। १९३० में प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य की गई, १९३९ में देशव्यापी माध्यमिक शिक्षा का प्रबन्ध किया गया और देहातों में भी माध्यमिक स्कूल खोले गये। द्वितीय महा-युद्ध के कारण १९४१ से १९४५ तक के काल में यह प्रगति रुक-सी गई, लेकिन सन् १९४९-१९५१ के बीच सात वर्ष की शिक्षा सबके लिए अनिवार्य कर दी गई।

शिक्षा की पद्धति सारे देश में एक-सी है। ३ वर्ष की उम्र से लेकर २३ वर्ष की अवस्था तक पूरी शिक्षा प्राप्त की जा सकती है, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि हरेक व्यक्ति ऐसा करे ही। उदाहरण के लिए कोई भी लड़का या लड़की प्रारंभिक

७ वर्ष का पाठ्य-क्रम पूरा करके या तो आगे की पढ़ाई करती रह सकती है, अथवा किसी विशेष माध्यमिक स्कूल में दाखिला करा सकती है। किसी उद्योग-संस्था में जाना चाहे तो उसमें जा सकती है।

शिक्षा वहां ३ वर्ष की आयु से प्रारंभ होती है। शिक्षा की यह पहली पारी सात वर्ष की उम्रतक चलती है। कक्षाएं सबेरे से ही शुरू हो जाती हैं। बाल-शिक्षा के ये केन्द्र प्रायः सभी दोमों (गृह-समूहों) में हैं। सबेरे नाश्ता करने के बाद जब मैं घूमने के लिए निकलता था तो किसी भी केन्द्र के आगे मेरे पैर अपने-आप रुक जाते थे। छोटे-छोटे स्वस्थ बच्चे बड़े ही मगन होकर खेलते दिखाई देते थे। वहां खेल द्वारा उन्हें शिक्षा दी जाती है। तरह-तरह के खिलौने बच्चों को सुलभ रहते हैं। कभी-कभी बच्चे आपस में लड़ पड़ते हैं, कभी-कभी मारपीट हो जाती है। ऐसे अवसरों पर अध्यापिका की परीक्षा होती है। बीसियों बार मैंने बच्चों में मारपीट या लड़ाई होते देखी, लेकिन क्या मजाल कि उनके झगड़े को निबटाने के लिए अध्यापिका उनपर हाथ उठावे। बड़े प्यार और धीरज के साथ वह उनके बीच समझौता करा देती है। ये केन्द्र खुले मैदान में बने हैं। उससे बच्चों को खेल-कूद के साथ ताजी हवा का भी लाभ मिल जाता है। वस्तुतः इन केन्द्रों का मुख्य उद्देश्य बच्चों का शारीरिक विकास करना और स्कूल जाने के लिए उन्हें तैयार करना है। बच्चे वहां लगभग १२ घंटे रहते हैं। उनका खर्चा मुख्यतः सरकार देती है।

इसके बाद प्रारम्भिक स्कूलों की व्यवस्था है। उनमें अलग-अलग पाठ्यक्रम हैं—४ वर्ष का—७ से ११ वर्ष के बच्चों के लिए; ७ वर्ष का—७ से १४ वर्ष तक के बच्चों के लिए; १० वर्ष का—७ से १७ वर्ष के बच्चों के लिए। १४ से लेकर २५ साल के ऐसे युवक या युवतियां, जो किसी विशेष कारण से आगे सामान्य शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकें, अपना काम निबटाने के बाद विशिष्ट स्कूलों में पढ़ाई-लिखाई कर सकते हैं।

पढ़ाई प्रत्येक सोवियत संघ की अपनी भाषा में होती है। मातृ-भाषा के विकास तथा अभिवृद्धि पर विशेष जोर दिया जाता है। मातृ-भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी, जर्मन या फ्रेंच में से एक विदेशी भाषा भी सीखनी होती है। रूसी तो सीखनी ही पड़ती है।

स्कूली पढ़ाई के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धन के लिए बच्चों को अन्य सुविधाएं भी प्राप्त हैं, जैसे पुस्तकालय, वाचनालय, आदि। उनके लिए आरोग्य-भवनों में जाकर

रहने तथा विभिन्न स्थानों का पर्यटन करने का भी सुभीता रहता है। मुझे कई स्थानों पर स्कूल के बच्चों की टोलियां मिलीं। उनके अनुशासन को देखकर मैं दंग रह गया। संग्रहालयों में मैंने किसी भी बच्चे को शोर मचाते, धक्का-मुक्की करते अथवा चीजों को छूते या बिगाड़ते नहीं देखा, हालांकि उनकी टोली में छोटी उम्र के भी बहुत-से बच्चे थे।

ऐसे बच्चों के लिए, जिनके मां-बाप गुजर गये हैं, राज्य पृथक् व्यवस्था करता है। वे अनाथालय में रहते हैं और उनका सारा खर्च सरकार उठाती है।

अपने देश के औद्योगिक विकास की दृष्टि से शासन को उद्योग-धंधों के विशेषज्ञ प्राप्त हों, इसके लिए वहां के माध्यमिक स्कूलों से ही बहुकोशलीय प्रशिक्षण चालू कर दिया गया है। उससे बच्चों को आधुनिक उद्योगों तथा कृषि-उत्पादन की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक शिक्षा मिलने लगती है और आगे चलकर वे अपने विषय में पारंगत हो जाते हैं।

माध्यमिक स्कूलों को यथासंभव घरों के पास ही बनाया जाता है, जिससे छात्रों को आने-जाने में असुविधा न हो और उनका समय नष्ट होने से बच जाय।

युद्ध के दौरान में युवकों को स्कूल छोड़कर काम पर जाना पड़ता था। उनकी पढ़ाई चालू रहे, इसलिए संध्याकालीन तथा पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षा देनेवाले स्कूल खोले गये।

स्कूली बच्चों को पाठ्य पुस्तकें राज्य की ओर से दी जाती है। पाठ्य पुस्तकों की प्रतिवर्ष २० करोड़ से अधिक प्रतियां प्रकाशित होती हैं।

शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए अलग व्यवस्था है। वस्तुतः बिना ट्रेंड अध्यापकों के पढ़ाई का काम ठीक से नहीं चल सकता। उससे भी जरूरी बात यह है कि अध्यापक ऐसे होने चाहिए, जिनकी अध्यापन में विशेष रुचि हो। अध्यापन के शिक्षण के लिए लोगों का चुनाव करने में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है।

माध्यमिक शिक्षा पूरी कर लेने के बाद १७ से ३५ वर्ष तक की आयु का कोई भी नागरिक उच्च शिक्षालय में प्रवेश पा सकता है, लेकिन एक शर्त है। जिस विषय का उसने अध्ययन किया है, उसकी गहरी जानकारी उसे होनी चाहिए। इसके लए उसकी परीक्षा होती है। जो उसमें उत्तीर्ण होते हैं, वे ही प्रवेश पाते हैं।

१९५६ के बाद से सभी उच्च शिक्षालयों में निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। ग्रीष्मकालीन छुट्टियों में छात्र-छात्राओं को आरोग्य-भवनों और सैरगाहों में रहने

के लिए निःशुल्क स्थान दिया जाता है।

रूस में ३६ विश्वविद्यालय हैं। उनमें सबसे पुराने ये हैं—१. मास्को विश्व-विद्यालय, (सन् १७५५ में स्थापित), तार्तू विश्वविद्यालय (१८०२), कजान विश्वविद्यालय (१८०४), खारकोव विश्वविद्यालय (१८०५), लेनिनग्राड विश्व-विद्यालय (१८१६), और कीव विश्वविद्यालय (१८३४)। इनमें सबसे अधिक ख्याति मास्को विश्वविद्यालय की है।

बहुत-से छात्र-छात्राएं विश्वविद्यालय में न जाकर इन्स्टीट्यूटों में चले जाते हैं, जहां उन्हें शिक्षा के साथ-साथ विभिन्न उद्योगों की उच्च शिक्षा मिलती है।

विश्वविद्यालय अथवा इन्स्टीट्यूट में दाखिला बड़ी कड़ाई से होता है। हर परीक्षार्थी को एक टैस्ट देना होता है। जो पास हो जाते हैं, उन्हें दाखिल कर लिया जाता है। लेकिन अनुत्तीर्ण होनेवाले छात्रों को एक या दो अवसर टैस्ट में बैठने के लिए और मिलते हैं। उनमें से बहुत-से तो आगे पढ़ने का विचार छोड़कर कारखानों आदि में काम करने चले जाते हैं; कुछ शहर में रहकर पढ़ाई करने और पुनः परीक्षा में बैठने के विचार से वहीं किसीके यहां नौकरी कर लेते हैं। अनेक भारतीय मित्रों के यहां ऐसी ही रूसी बहनें काम करती हुई मैंने देखीं। वे बड़ी इज्जत के साथ नौकरी करती हैं। सबसे बड़ी बात मैंने उनमें यह देखी कि कोई भी काम वे ओछा या छोटा नहीं मानतीं। वे जूतों पर पालिश कर देती हैं, कपड़े धो देती हैं, घर की सफाई, खाना आदि तो करती ही हैं। उनमें स्वाभिमान मैंने बेहद पाया। किसी लड़की से जरा तेज बात कह दीजिये, वह काम छोड़कर चली जायगी और उनका संगठन ऐसा है कि एक लड़की के चले जाने पर दूसरी मिलना मुश्किल होता है।

रूस में सबसे अधिक मान लेखकों और शिक्षकों का है। शिक्षकों को अच्छा वेतन मिलने के अतिरिक्त समाज में उन्हें बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है। उन्हें अनेक सुविधाएं दी जाती हैं। मास्को विश्वविद्यालय के कई प्रोफेसर मुझे मिले। उनमें विज्ञान-विभाग के प्रोफेसर वी० जी० जूबोव की स्मृति सदा बनी रहेगी। वह पढ़ाने जा रहे थे। अचानक सड़क पर मिल गये। साथ हो गये। लगभग दो घंटे साथ रहे। वह भारत हो गये हैं और सर सी० वी० रमन के बड़े प्रशंसक हैं। मैंने कई बार उन्हें स्मरण दिलाया कि उनके छात्र प्रतीक्षा कर रहे होंगे, लेकिन वह नहीं माने। बड़े ही भले और मिलनसार थे, बड़े ही निरभिमानी।

शिक्षितों की संख्या अधिक होने के कारण पुस्तकों की बिक्री वहां खूब होती है। मामूली-से-मामूली पुस्तक लाखों की संख्या में निकल जाती है। वैसे भी वहां पुस्तकें खूब पढ़ी जाती हैं। लिफ्ट के पास बैठी वृद्धा प्रायः उपन्यास या अन्य कोई पुस्तक पढ़ती मिलती है। सुरंग की रेल में, बस में, ट्राम में जगह मिली कि लोग पुस्तक निकालकर पढ़ने लगते हैं। पुस्तकें खरीदकर पढ़ने की वहां बड़ी ही स्वस्थ परिपाटी है। हजार रूबल प्रति मास कमानेवाले व्यक्ति की आमदनी का भी कुछ भाग पुस्तकें खरीदने पर चला जाता है।

रूस में प्रत्येक क्षेत्र में जो प्रगति हो रही है, उसका मुख्य श्रेय वहां के लोगों की अनुसंधान-वृत्ति को है। अपने-अपने कार्य को वे आगे बढ़ा सकें, नई-नई खोजें कर सकें, इसके लिए स्थान-स्थान पर अनुसंधान-केन्द्र हैं, जहां सब प्रकार की सुविधाएं दी जाती हैं। विज्ञान ने वहां जो असाधारण उन्नति की है, वह इसीका परिणाम है। शिक्षा के क्षेत्र में भी बराबर अनुसंधान होते रहते हैं कि किस प्रकार शिक्षा को और अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है, किस प्रकार उसका स्तर ऊंचा किया जा सकता है और किस प्रकार छात्रों और अध्यापकों की क्षमता को और बढ़ाया जा सकता है। सच बात यह है कि शिक्षा वहां के शासकों की दृष्टि में सबसे अधिक महत्व की चीज है, क्योंकि वे मानते हैं कि बिना शिक्षा के उनके देश की प्रतिभा विकसित नहीं हो सकती। उनकी शिक्षा-पद्धति नई पीढ़ी को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाती है और वहां की तरुणाई को कर्मठ बनाने का प्रयत्न करती है।

: २४ :

साहित्यिक आदान-प्रदान

हमारे देश की विभिन्न भाषाओं में रूस के अनेक साहित्यकारों तथा चिंतकों की रचनाओं के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। कुछ लेखक तो भारत में इतने लोकप्रिय हैं कि उनकी पुस्तकों के एक ही भारतीय भाषा में कई-कई रूपान्तर हुए हैं। टाल्स्टाय, गोर्की, तुर्गनेव, पुश्किन, डास्टोवस्की, क्रोपाटकिन, प्रभृति के नाम शायद ही कोई ऐसा सुशिक्षित भारतीय हो, जो न जानता हो। इधर तो बहुत-सा रूसी साहित्य रूस से ही विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित और प्रकाशित होकर आ रहा है, फिर भी हमारे देश में वहां के अनेक ग्रंथकारों की कृतियों के अनुवाद तथा प्रकाशन का कार्य यथावत् चल रहा है।

रूस और भारत के बीच आदान-प्रदान का इतिहास बड़ा पुराना है। इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं कि पंद्रहवीं शताब्दी में वास्को डी गामा से भी लगभग ३० वर्ष पूर्व अफानासी निकितन नामक रूसी सौदागर भारत आया था। वह यहां काफी घूमा और रूस लौटकर उसने 'तीन समुद्रों के पार की यात्रा' पुस्तक लिखी। 'परदेशी' फिल्म ने, जो कि भारत तथा रूस के संयुक्त प्रयत्न से बनी है, इस सौदागर का नाम देश के कोने-कोने में पहुंचा दिया है। इसमें संदेह नहीं कि इस साहसी व्यक्ति ने भारत और रूस के बीच, उस प्रारंभिक अवस्था में, एक शृंखला स्थापित करने का प्रयास किया। भारत से भी अनेक व्यापारी रूस गये।

इसके पश्चात् चेर्निश्वस्की तथा दोब्रल्यूबोव ने भारत की १८५७ की क्रांति पर लेखनी चलाई। उसी काल में रूसी कवि जूकोव्स्की ने नल-दमयन्ती के आख्यान को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। १६ वीं शती के अन्त में धार्मिक साहित्य के विद्वान् मिनायेव भारत आये। उनकी डायरी रूसी में प्रकाशित हुई। रूसी चित्र-कार वेरेश्चागिन ने भारतीय जीवन पर अनेक चित्रों की रचना की।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से भारतीय साहित्य के अध्ययन तथा रूपान्तर का

कार्य बड़ी तेजी से शुरू हुआ। आज मास्को, लेनिनग्राड तथा ताशकंद में न केवल भारतीय साहित्य के अध्ययन, अनुवाद एवं प्रकाशन का काम हो रहा है, अपितु वहां के महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में हिन्दी, उर्दू, बंगला, संस्कृत, मराठी तथा पंजाबी भाषाओं के शिक्षण की भी व्यवस्था है। इन नगरों में भारतीय भाषा-विज्ञान-संबंधी शोध का कार्य विधिवत रूप से हो रहा है। इस क्षेत्र में सोवियत संघ की 'विज्ञान अकादमी' के 'प्राच्य संस्थान' (ओरियंटल इन्स्टीटयूट) की सेवाएं विशेष रूप से उल्लेखयोग्य हैं। यह संस्था भारतीय भाषाओं के अध्ययन तथा भारतीय साहित्य-सम्बन्धी समस्याओं के अनुसन्धान में बड़े ही परिश्रम से संलग्न है। इस समय इस संस्था द्वारा हिन्दी, उर्दू, बंगला, पंजाबी, तमिल, तेलगु, मराठी, मलयालम तथा सिंहली में व्याकरण, शब्दकोश-विज्ञान तथा ध्वनि-शास्त्र एवं इतिहास-सम्बन्धी समस्याओं पर कार्य हो रहा है। आधुनिक भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत एवं पाली के साहित्य को भी महत्व दिया जा रहा है। हिन्दी, उर्दू तथा बंगला में विशाल शब्दकोश तथा व्याकरणों की रचना हो रही है। पंद्रह भाषा-विदों का एक मंडल हिन्दी-व्याकरण तैयार कर रहा है।

मास्को के 'प्राच्य संस्थान' में हमें अनेक वार जाने का अवसर मिला। हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष श्री चेलिशेव धारा-प्रवाह हिन्दी बोलते हैं और अच्छी लिख भी लेते हैं। इस संस्था का मुख्य कार्य भारतीय साहित्य की कृतियों का रूसी में अनुवाद करना है। लेनिनग्राड में भी 'प्राच्य संस्थान' है। उसका उल्लेख हमने लेनिनग्राड के प्रसंग में विस्तार से किया है। इन दोनों संस्थानों ने अबतक जो कुछ शोध तथा अनुवाद-कार्य किया है, वह अभिनंदनीय है। महाभारत (आदि-पर्व), रामचरित-मानस, मुद्राराक्षस, मृच्छकटिक, वैताल पंचविंशत, पंचतंत्र, हितोपदेश, जातककथा, भगवद्गीता आदि के अनुवाद हो चुके हैं। पाठक जानते हैं कि प्रो० बारान्निकोव ने, जो अब इस संसार में नहीं हैं, दस वर्ष तक अथक परिश्रम करके रामायण का पहले रूसी गद्य में, फिर पद्य में अनुवाद किया। उसमें छंद भी उन्होंने वही रक्खा है, जो मूल भाषा में है। पहला संस्करण हाथों-हाथ बिक गया। द्वितीय संस्करण आज बाजार में है। प्रो० कल्यानोव ने, जो संस्कृत के प्रगाढ़ पंडित हैं और धाराप्रवाह संस्कृत बोलते हैं, बड़े परिश्रम से महाभारत के 'आदिपर्व' का अनुवाद किया और अब 'सभा-पर्व' का कर रहे हैं।

भारतीय लेखकों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा प्रेमचन्द का बहुत-सा साहित्य

रूसी में प्रकाशित हुआ है। अन्य लेखकों में दो-एक लेखकों को छोड़कर शेष वे लेखक हैं, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से साम्यवादी विचार-धारा के पोषक हैं और जिन्होंने अपने साहित्य द्वारा उस विचारधारा के प्रचार में पर्याप्त सहायता की है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहां के सुशिक्षित व्यक्तियों में से अधिकांश की जबान पर केवल पांच-सात साम्यवादी लेखकों के नाम हैं। जब मैंने उन्हें यह बताया कि भारत में उनके अलावा और भी बहुत-से उच्च कोटि के लेखक हैं तो उन्होंने स्पष्ट कहा कि उनके अज्ञान का कारण यह है कि हमारे भारतीय बन्धुओं ने उनका परिचय केवल उन्हीं नामों तथा उनके साहित्य से कराया है। लेकिन उन्होंने आशा व्यक्त की कि पारस्परिक सम्पर्कों के बढ़ने से उनके एकांगी ज्ञान में वृद्धि होगी और उनका क्षेत्र निश्चय ही व्यापक बनेगा। मुझे हर्ष है कि अब प्रसाद, निराला, वृन्दावनलाल वर्मा, विष्णु प्रभाकर, सुदर्शन आदि लेखकों की ओर भी उनका ध्यान गया है और इनकी कुछ रचनाओं के अनुवाद हुए हैं और हो रहे हैं। श्री चेलिशेव तथा प्रो० कल्यानोव को इस कार्य में अनेक रूसी तथा भारतीय व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त है।

यहां मुझे एक प्रसंग याद आता है। जब मैं पहली वार मास्को के 'प्राच्य संस्थान' में गया तो मेरे साथ वह बंगाली सज्जन भी थे, जिनका उल्लेख पहले हो चुका है। संयोग से उसी दिन रूसी भाषा में हिन्दी के चुने हुए कवियों की कविताओं का एक संग्रह छपकर आया था। उसकी चर्चा करते हुए श्री चेलिशेव ने बड़े प्रसन्न होकर कहा, "यशपालजी, आप अच्छे मौके पर आये हैं। लीजिये, पहली प्रति आपको भेंट करता हूं।" उन्होंने हिन्दी में "श्री यशपाल जैन को चेलिशेव की ओर से सप्रेम भेंट" लिखकर एक प्रति बड़े स्नेह से मुझे दी। उसके पश्चात् उन्होंने बंगाली महोदय से कहा कि एक कागज पर आप अपना नाम लिखकर मुझे दे दें, जिससे मैं दूसरी प्रति पर आपका शुद्ध नाम लिखकर आपको दे सकूं। उन सज्जन ने अपना नाम अंग्रेजी में लिखकर दिया। उसे देखकर चेलिशेव के चेहरे पर जो भाव उभरा, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। क्षणभर स्तब्ध-से रहकर उन्होंने पूछा, "क्या आप हिन्दी नहीं जानते, जो आपने अपना नाम अंग्रेजी में लिखा है?"

उन्होंने जवाब दिया, "जी, मैं हिन्दी बोल तो लेता हूं, पर लिख नहीं पाता।"

चेलिशेव ने किंचित व्यंग्य से कहा, "आप भारतीय हैं और हिन्दी नहीं लिख पाते! खैर, कोई बात नहीं, मैं आपका नाम हिन्दी में ही लिखूंगा और शुद्ध लिखने

का प्रयत्न करूंगा।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि चेलिशेव ने हिन्दी में शुद्ध नाम लिखकर पुस्तक उन्हें दी। यह प्रसंग वास्तव में बड़ा कटु है और हम भारतीयों के लिए उसमें एक बड़ी शिक्षा निहित है। जब हम भारत से बाहर जाते हैं तो हम न बंगाली रहते हैं न पंजाबी, न गुजराती रहते हैं न मराठी, न उड़िया रहते हैं न मद्रासी, हमें एक ही नाम से जाना जाता है और वह है 'भारतीय'। साथ ही यह भी माना जाता है कि स्वतंत्र भारत का नागरिक अपनी राष्ट्रभाषा से अवश्य परिचित होगा। हम अपने अंग्रेजी के ज्ञान पर और हिन्दी के अज्ञान पर भले ही गर्व अनुभव करें, लेकिन बाहर के लोगों पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है, उसका अनुमान उपरोक्त घटना से किया जा सकता है।

मास्को का 'विदेशी भाषा-प्रकाशन-गृह' रूसी साहित्य को भारतीय भाषाओं में प्रकाशित कर रहा है। वहां हमारे कई भारतीय मित्र कार्य करते हैं। इस समय वहां हिन्दी, बंगला तथा उर्दू में अनुवाद की समुचित व्यवस्था है। शीघ्र ही मराठी, तमिल आदि में भी हो जायगी। इस संस्था से अबतक टाल्स्टाय; गोर्की, तुर्गनेव, डास्कोवस्की आदि का काफी साहित्य भारतीय भाषाओं में निकल चुका है और निकल रहा है। रूस की विभिन्न क्षेत्रीय प्रगति की जानकारी देनेवाला भी बहुत-सा साहित्य निकला है। अर्वाचीन लेखकों की भी अनेक रचनाओं का अनुवाद हुआ है। हिन्दी-विभाग के प्रमुख श्री ग्लादिशेव से मैं मिला। उन्होंने अपनी प्रकाशन-योजना बताई और पूछा कि उनके यहां से हिन्दी में जो अनुवाद हुए हैं, उनके विषय में मेरी क्या राय है। मैंने उन्हें बताया कि जो अनुवाद मेरी निगाह से गुजरे हैं, उनमें से अधिकांश शाब्दिक हैं, इसलिए भाषा तथा शैली में जितना प्रवाह होना चाहिए, नहीं है। दूसरे, मैंने उनसे कहा कि आप अब मुख्यत: आधुनिक रूसी लेखकों की कृतियों के अनुवाद करा रहे हैं। उस साहित्य में से अधिकांश में गहराई कम है, वह प्रचारात्मक अधिक है। अत: वह भारत में विशेष लोकप्रिय होगा, इसकी संभावना नहीं है। बाद में मुझे मालूम हुआ है कि मेरी यह बात उन्हें रुचिकर नहीं लगी। उन्होंने मेरे एक मित्र से कहा कि यह भी खूब है, जो हमारे अर्वाचीन लेखकों को पसन्द नहीं करते! सोवियत संघ के उदय तथा विकास में आधुनिक लेखकों का योग अधिक माना जाता है और अनुभव किया जाता है कि टाल्स्टाय, डास्टोवस्की, गोर्की आदि तो जैसे कुछ पुराने युग के हैं।

संभवतः ग्लदिशेव की अप्रन्नता का यही कारण रहा होगा। उन्होंने मुझे गोर्की की 'मेरे विश्वविद्यालय' तथा चेखव की 'कुत्तेवाली महिला' पुस्तकें भेंट में दीं। आदमी भले लगे। उनके प्रकाशन के पीछे कोई सुसम्बद्ध योजना नहीं दिखाई दी। जिसने जो सलाह दी, उसीके अनुसार अनुवाद करवा डाला। वैसे सन् १९६० तक की प्रकाशन-योजना उन्होंने बना रखी है, पर पुस्तकों के चुनाव आदि में कोई खास विवेक नहीं है। ग्लदिशेव भारतीय बन्धुओं में 'बड़े भाई' के नाम से पुकारे जाते हैं। हिन्दी मजे की बोल लेते हैं।

बंगला-विभाग के अध्यक्ष से भी भेंट हुई। उन्होंने अपने विभाग की योजना बताई। उनका बंगला का अभ्यास अच्छा है। कई पुस्तकें उन्होंने प्रकाशित की हैं। बड़े सरल और सज्जन व्यक्ति जान पड़े।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त 'चिल्ड्रन्स हाउस ऑव बुक्स' अपने ढंग की एक निराली संस्था है। ३ से लेकर १७ वर्ष तक के बच्चों तथा किशोरों के लिए इस संस्था से हजारों पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। विश्व की ४९ भाषाओं में से पुस्तकें चुन-कर उनके रूसी अनुवाद किये गए हैं। भारतीय लोककथाएं वहां के पाठकों में बड़ी लोकप्रिय हैं। 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' की कहानियां भी बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। १८५७ के गदर पर कई किताबें निकली हैं। 'ए डेन्जरस इवेडर', 'फायर ऑव दी फ्यूरी' आदि-आदि। स्टेनबर्ग की 'इंडियन ड्रीमर' ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध है। स्टेनबर्ग ने भारत की यात्रा करने के बाद यह उपन्यास लिखा था।

जिस समय मैं इस संस्था के वाचनालय में गया, आठ-दस वर्ष की एक बालिका कोई पुस्तक पढ़ रही थी। मैंने परिवाचिका से पूछा तो उसने बताया कि वह एक भारतीय लोक-कथा पढ़ रही है। मैंने उस बालिका से सवाल किया कि उसे वह कहानी कैसी लग रही है। बालिका ने जवाब दिया, "बहुत अच्छी।" मैंने फिर पूछा कि उसमें अच्छाई की क्या बात है। बालिका ने तत्काल उत्तर दिया—"यह बड़ी ही रोचक है और कुतूहल इसमें खूब है।"

एक और संस्था है 'सोवियत इन्फार्मेशन ब्यूरो', जिसका काम वैसे मुख्यतः अपने देश की जानकारी देना है, लेकिन वह अंग्रेजी का एक पाक्षिक पत्र निकालता है 'सोवियतलैण्ड'। इस पत्र के हिन्दी, उर्दू, बंगला, तेलगु, तमिल, मलयालम, पंजाबी मराठी, कन्नड़, गुजराती तथा उड़िया संस्करण भी प्रकाशित होते हैं। यह संस्था भारत तथा अन्य देशों की जानकारी प्राप्त करने के लिए विदेशियों के व्याख्यानों

की व्यवस्था करती रहती है । मुझसे भी उन्होंने दो व्याख्यान कराये । एक था गांधीजी के व्यक्तित्व तथा प्रभाव के विषय में, दूसरा भारतीय साहित्य के बारे में। भाषण के बाद लोगों ने जो प्रश्न किये, उनसे मालूम होता था कि हमारे देश तथा यहां के साहित्य के सम्बन्ध में उनमें बड़ी जिज्ञासा है और वे अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने को बहुत ही उत्सुक रहते हैं।

सोवियत नारी-सभा तथा सोवियत संघ की ट्रेड यूनियनों की केन्द्रीय परिषद् द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सोवियत नारी' सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं पर प्रकाश डालने के साथ-साथ साहित्य और कला की अच्छी सेवा कर रही है। उसके संस्करण विश्व की अनेक भाषाओं में प्रकाशित होते हैं। भारतीय भाषाओं में वह हिन्दी तथा उर्दू में निकलती है।

लेखकों को सहायता तथा प्रोत्साहन देने के लिए जो संस्थाएं काम कर रही हैं, उनमें दो का उल्लेख करना आवश्यक है। एक है 'सोवियत लेखक संघ' । रूस के बड़े-बड़े लेखक उससे सम्बद्ध हैं । किसी समय में गोर्की उसके अध्यक्ष रहे थे। मुझे उसके उपाध्यक्ष श्री अप्लातीन तथा श्रीमती रोमानोवा अनेक बार मिलीं। संघ की सक्रिय कार्यकर्त्री मरियम सल्गानिक से भी कई बार भेंट हुई। इन तीनों ने तथा इनके अन्य सहयोगियों ने मेरी जो सहायता की, उसके प्रति मैं हमेशा कृतज्ञ रहूंगा। उन्होंने न केवल अनेक स्थानों एवं संस्थाओं को देखने का कार्यक्रम बनाया, अपितु कार एवं परिवाचिका की सुविधा भी प्रदान की। यों तो जो भी लेखक बाहर से आते हैं, संघ के पदाधिकारी उनकी पूरी-पूरी मदद करते हैं, लेकिन भारतीय लेखकों के प्रति इनकी विशेष आत्मीयता है।

दूसरी संस्था है वाक्स। यह भी लेखकों की काफ़ी सहायता करती है और साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उत्सव आदि करने में इसका प्रमुख हाथ रहता है। भारतीय मित्रों के सहयोग से इस संस्था ने मास्को में अनेक भारतीय सन्तों तथा लेखकों की जयन्तियां मनाने की योजना बनाई है । कई जयन्तियां जैसे प्रसाद-जयन्ती, कालिदास-जयंती आदि मास्को में मनाई जा चुकी हैं।

हिन्दी की पढ़ाई की ओर रूस के अधिकारियों का ध्यान अधिकाधिक जा रहा है। मास्को, लेनिनग्राड, ताशकन्द के अतिरिक्त अन्य कई स्थानों के कालेजों में हिन्दी के अध्ययन की व्यवस्था हो गई है। दूसरी जगहों पर भी शीघ्र ही की जा रही है। भाषा के साथ-साथ भारतीय साहित्य का भी प्रवेश होना स्वाभाविक है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रूस में भारत तथा भारतीय साहित्य की ओर उत्तरोत्तर रुचि बढ़ रही है; लेकिन सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि वहां के अधिकारियों को उचित तथा निष्पक्ष मार्ग-दर्शन मिले। उन लोगों में जिज्ञासा है और वे अपने कार्य-क्षेत्र तथा दृष्टिकोण को व्यापक भी करना चाहते हैं। मास्को लेनिनग्राड तथा अन्य जिन स्थानों में मैं गया, वहां की विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं के अधिकारियों ने कहा कि हमारा ज्ञान सीमित इसलिए है कि जिन भारतीय मित्रों से हमारा सम्पर्क रहा, उन्होंने विचार-धारा विशेष के अतिरिक्त अन्य विचार-धाराओं के लेखकों तथा उनके साहित्य से हमारा परिचय नहीं कराया। पर अब स्थिति बदल रही है, और पारस्परिक आदान-प्रदान की वृद्धि से भारत-सम्बन्धी हमारे ज्ञान में भी अभिवृद्धि होगी।

रूस के विभिन्न पत्रों में कभी-कभी भारत के समाचार प्रकाशित होते रहते हैं, लेख और कहानियां आदि भी। 'आग्न्योक' ऐसा ही एक पत्र है। और भी कुछ पत्र हैं। पर चूंकि वे रूसी में निकलते हैं, इसलिए उनकी उपयोगिता रूस की परिधि तक ही सीमित है।

: २५ :

रूस की पत्र-पत्रिकाएं

रूस में मुझे सबसे अधिक असुविधा समाचार-पत्रों के सम्बन्ध में अनुभव हुई। वहां जितने पत्र निकलते हैं, उनमें से दो-एक को छोड़ शेष सब रूसी भाषा में हैं। शहर में घूमते हुए मैं प्राय: देखता था कि जगह-जगह दीवारों पर बोर्ड लगे हैं, जिनमें 'प्रावदा', 'इज़वेस्तिया' या अन्य कोई पत्र लगा है और आने-जानेवाले लोगों में से बहुत-से रुककर उनपर निगाह डालते जाते हैं। ललचाई आंखों से मैं उनकी ओर देखता था और कभी-कभी स्वयं किसी बोर्ड के सामने खड़े होकर कुछ पढ़ने और समझने का प्रयत्न करता था, लेकिन सिवा चित्रों के, यदि वे होते थे तो, और कुछ पल्ले नहीं पड़ता था। हां, हफ्ते में एक बार अंग्रेजी का 'मास्को न्यूज' मिल जाता था, लेकिन उसमें खबरें इतनी संक्षिप्त रहती हैं कि उनसे संतोष नहीं होता था। पहला स्पूतनिक जब छोड़ा गया, मैं लेनिनग्राड में था। मास्को लौटा तो देखता हूं कि 'मास्को न्यूज' के सारे पन्ने उसीके समाचार से भरे पड़े हैं। वैज्ञानिकों, राजनेताओं, इतिहासकारों तथा विद्वानों के मत देने के साथ-साथ स्पूतनिक के निर्माण तथा उसमें योग देनेवालों का विस्तृत परिचय भी दिया गया था।

रूस में पत्र-पत्रिकाओं का जाल-सा बिछा हुआ है। वहां की जितनी भाषाएं हैं, उन सबमें पत्र निकलते हैं। इस समय वहां की विभिन्न भाषाओं में ७२०० से अधिक समाचार-पत्र तथा २००० से अधिक पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। पत्रिकाओं में ६० ऐसी हैं, जिनका प्रकाशन सन् १९५५ में प्रारंभ हुआ है। सन् १९५५ के आंकड़ों के अनुसार समाचार-पत्रों की प्रतिदिन की औसत बिक्री ४ करोड़ ९० लाख थी।

मास्को से प्रकाशित होनेवाले केन्द्रीय समाचार-पत्रों में सबसे प्रमुख पत्र है, 'प्रावदा' जिसका प्रकाशन ५ मई १९१२ को शुरू हुआ था। उसकी स्मृति में ५ मई का दिन आज भी 'प्रेस डे' के रूप में मनाया जाता है। यह पत्र दैनिक है और सोवियत संघ की कम्यूनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति द्वारा प्रकाशित होता है।

मास्को के अलावा रूस के बारह अन्य नगरों से भी वह निकलता है। मास्को में इस पत्र का विशाल भवन है। सन् १९५५ में इसकी लगभग ५० लाख प्रतियां छपती थीं। बड़े आकार में यह चार पृष्ठ का निकलता है और प्रकाशन के बाद जरा-सी देर में उसका प्रचार सारे शहर में हो जाता है। यह पत्र यहां बड़ा लोकप्रिय है। लेकिन मुझे बताया गया कि उसमें मुख्यतः रूस की ही खबरें रहती हैं। इससे रूस के निवासियों को पता चलता है कि उनके देश में किस क्षेत्र में कहां क्या हो रहा है। मुझे यह भी बताया गया कि सामान्यतया उसमें समाचारों के रोमांचकारी शीर्षक नहीं दिये जाते, बल्कि खबरें संयत ढंग से दी जाती हैं। पार्टी का पत्र होने के कारण वह पार्टी की नीति का प्रतिनिधित्व करता है।

लाखों प्रतियां प्रतिदिन छापने के लिए कितने विशाल साधनों की आवश्यकता पड़ती होगी, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। 'प्रावदा' के अपने भवन में छपाई की बड़ी-बड़ी मशीनें लगी हैं, जिनपर मशीनों के विशेषज्ञ काम करते हैं। पत्र की छपाई बड़ी साफ-सुथरी होती है।

दूसरा दैनिक पत्र है 'इज़वेस्तिया', जो कि सुप्रीम सोवियत के प्रिसीडियम की ओर से निकलता है अर्थात् सरकारी पत्र है। सन् १९१७ से निकल रहा है। सोमवार को बन्द रहता है। इस पत्र को भी बड़ी लोकप्रियता प्राप्त है और इसकी नीति सरकारी नीति की बोधक होती है।

'त्रुद' ट्रेड यूनियनों की केन्द्रीय परिषद् अर्थात् मजदूर-वर्ग का समाचार-पत्र है। सन् १९२१ से प्रकाशित हो रहा है। इस प्रकार ये तीन पत्र रूस की तीन शक्तियों अर्थात् कम्यूनिस्ट पार्टी, सरकार और मजदूर-वर्ग के पत्र हैं।

'कोम्सोमोल्स्काया प्रावदा' तरुण कम्यूनिस्ट-लीग की केन्द्रीय परिषद् का मुख-पत्र है। १९२५ से निकलता है। 'क्रास्नाया-ज्वेज्दा' (लाल सितारा) सोवियत यूनियन के प्रतिरक्षा-मंत्रालय की ओर से प्रकाशित होता है। दैनिक-पत्र है, सोमवार की छुट्टी रहती है।

अन्य दैनिक पत्रों में 'सेल्स्कोये खोज्यॆस्तवो' कृषि-मंत्रालय का पत्र है। 'गुदोक' रेल्वे मंत्रालय से निकलता है। पहले का प्रकाशन सन् १९२९ से और दूसरे का १९२० से हो रहा है।

सप्ताह में दो बार प्रकाशित होनेवाला पत्र है 'मेडितसिन्स्की रेबोतनिक', जो स्वास्थ्य-मंत्रालय का मुखपत्र है। हफ्ते में तीन बार निकलनेवाले पत्र हैं—

'प्रोमिशलेनो एकानामिकेस्काया', 'लितरेचर्नाया गाज्येता' तथा 'सोवियेत्स्काया कुल्तूरा'। इनमें पहला उद्योग तथा अर्थशास्त्र से सम्बन्ध रखता है, दूसरा साहित्य से और तीसरा संस्कृति से। 'लितरेचर्नाया गाज्येता' 'सोवियत लेखक संघ' की ओर से सन् १९२९ से निकल रहा है और 'सोवियेत्स्काया कुल्तूरा' को रूस का सांस्कृतिक मंत्रालय १९५३ से प्रकाशित कर रहा है।

मास्को से निकलनेवाले इन पत्रों के अतिरिक्त लगभग १५० पत्र सोवियत संघों की विभिन्न राजधानियों से तथा ४८०० पत्र नगरों तथा जिलों से निकलते हैं। ये पत्र अपने-अपने संघों की भाषा में होते हैं। यूक्रेन के १००० पत्रों में ८०० पत्र यूक्रेनियन भाषा में प्रकाशित होते हैं।

सन् १९५५ में तरुण कम्युनिस्ट लीग ने तरुणों के लिए १०३ तथा बच्चों और लड़कियों के लिए २२ समाचार-पत्र निकालने शुरू किये, जिनमें 'पायोनरस्काया प्रावदा' भी सम्मिलित है। इन पत्रों का उद्देश्य बच्चों तथा युवकों को अपने देश की प्रगति की जानकारी देना है।

अंग्रेजी के 'मास्को न्यूज' के अतिरिक्त मास्को से एक-एक पत्र फ्रेंच तथा जर्मन में भी निकलते हैं।

समाचार-पत्रों को सम्वाद तास (टेलीग्राफ एजेंसी ऑव दी सोवियत यूनियन) तथा देश-विदेश के सम्वाददाताओं एवं अन्य साधनों से प्राप्त होते हैं। मजदूरों, किसानों आदि के पत्रों तथा लेखों को भी पत्रों में स्थान मिलता है।

रूस में मुद्रित समाचार-पत्रों के अलावा टाइप किये हुए अथवा हाथ से लिखे पत्रों का भी प्रचलन है। वे औद्योगिक केन्द्रों, सामूहिक खेतों, कार्यालयों, स्कूलों आदि में लगा दिये जाते हैं। प्रमुख स्थानों पर लगे होने के कारण वे खूब पढ़े जाते हैं। ऐसे पत्र महीने में दो-तीन बार निकलते हैं। कुछ अधिक बार भी।

मासिकों तथा अन्य पत्रों की भी रूस में कमी नहीं है। अधिकांश पत्र सामाजिक एवं अर्थशास्त्र-सम्बन्धी विषयों को लेकर निकलते हैं और कुछका सम्बन्ध कला एवं साहित्य से रहता है। इन पत्रों में 'कम्युनिस्ट', 'रेबतनित्सा', 'क्रेस्त्यान्का', 'आग्न्योक' आदि लाखों की संख्या में छपते हैं। सन् १९५७ में मासिकों की संख्या ढाई हजार से अधिक थी और वे रूस की ५६ भाषाओं में निकलते थे। अब तो उनकी संख्या और भी बढ़ गई होगी।

'आग्न्योक' के कार्यालय में कई बार जाने का मुझे अवसर मिला। 'प्रावदा

स्ट्रीट' पर 'प्रावदा कार्यालय' के निकट ही उसका आफिस है। पत्र के वैदेशिक सम्पादक एल० चर्न्याव्स्की तथा उनके अनेक सहयोगी मिले। चर्न्याव्स्की भारत में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। उन्होंने बताया कि उनके प्रधान सम्पादक श्री सोफरोनोफ भारत हो गये हैं। यहां वह खूब घूमे और उन्होंने अपने पत्र में प्रकाशित करने के लिए पर्याप्त सामग्री एकत्र की। चर्न्याव्स्की ने यह भी बताया कि वह अपने पत्र 'आगन्योक' में ऐसी सामग्री विशेष रूप से देना चाहते हैं, जिसमें आधुनिक भारत की बहुमुखी प्रगति का चित्र हो। "सामुदायिक योजना, स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, उद्योग-धंधे आदि की दृष्टि से आपके देश में जो उन्नति हुई है, उसपर हमें कुछ सचित्र लेख दीजिये। हम उन्हें सहर्ष छापेंगे। हमारे देश के लोगों की उनमें बड़ी दिलचस्पी है।" उन्होंने मुझसे कहा।

मैंने उत्तर दिया, "आप जो कहते हैं, सो ठीक है, पर आप कुछ रचनाएं गांधीजी और उनकी विचारधारा पर भी छापिये। विनोबाजी और भूदान-यज्ञ ने हमारे देश में अद्‌भुत चेतना उत्पन्न की है। उनके बारे में भी लेख दीजिये। उससे हमारे देशवासी आपके साथ अधिक निकटता अनुभव करेंगे।"

लेकिन मैंने देखा कि उनकी रुचि उनके बताये विषयों में अधिक थी। वैसे उन्होंने कुछ भारतीय लेखकों की कहानियां भी समय-समय पर अपने पत्र में प्रकाशित की हैं और अब भी करते हैं, लेकिन उनका खास झुकाव भारत की भौतिक प्रगति से अपने देशवासियों को अवगत कराने की ओर है। वह मानते हैं कि भारत में जो काम आज हो रहा है, उसमें यहां के किसानों और मजदूरों का विशेष हाथ है। शायद यही कारण है कि इन चीजों को वह अधिक प्रचारित करना चाहते हैं।

बच्चों के लिए भी वहां कई मासिक पत्र निकलते हैं। 'मेय पिक्चर्स' छोटी आयु के बालकों के लिए बड़ा उपयोगी पत्र है। उसका रूप-रंग बड़ा आकर्षक रहता है। उसमें मैत्री, ईमानदारी, कर्त्तव्य-पालन आदि के बारे में ऐसे सरल लेख रहते हैं, जिन्हें बच्चे आसानी से समझ सकें। विनोद की भी बहुत-सी चीजें रहती हैं।

स्कूल जाने की उम्रवाले बच्चों के लिए बड़े महत्व का पत्र है 'मुर्जिलका'। उसमें कहानियां, कविताएं तथा रेखा-चित्र रहते हैं। बड़े-बड़े और आकर्षक चित्र भी इस पत्र को लोकप्रिय बनाने में सहायक होते हैं। बारह से लेकर पन्द्रह वर्ष तक के बालकों के लिए 'पायोनर' अच्छा पत्र है। इसमें बालकों की सब प्रकार की जिज्ञासा को खुराक देने का प्रयत्न किया जाता है। एक बार मेक्सिम गोर्की ने रूस के पढ़नेवाले

बच्चों से पूछा था, "तुम लोगों के लिए सबसे अधिक रुचिकर क्या है ?" उन्होंने उत्तर दिया, "सबकुछ।" इसका तात्पर्य यह है कि बालकों की रुचि किसी एक विषय तक सीमित नहीं रहती। वे बहुत-सी चीजों के विषय में जानने को उत्सुक रहते हैं।

बड़ों की भांति बच्चों में भी वहां पढ़ने का बड़ा शौक है। मुझे यह जानकर आश्चर्य-मिश्रित हर्ष हुआ कि बच्चों का 'पायोनरस्काया प्रावदा' ३० लाख छपता है और 'मुर्जिलका' १० लाख से ऊपर।

सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि पत्रों के लेखकों तथा सम्पादकों के बीच बड़ी सद्भावना है। सम्पादक रचनाओं को बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं और यदि उन्हें उसमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होती है तो उसे लेखक को समझाते हैं और लेखक बड़ी खुशी से उसे कर देते हैं। इसके अतिरिक्त एक विशेष बात यह भी है कि बड़े-से-बड़े लेखक भी बच्चों के पत्रों में बच्चों के लिए लिखते हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि बच्चों के लिए लिखना बड़ी जिम्मेदारी का काम है।

चूंकि वहां कोई विरोधी दल नहीं है, इसलिए विरोधी पत्र भी नहीं है; फिर भी पत्रों में वहां के काम तथा व्यक्तियों की आलोचना भी रहती है। उस आलोचना पर अधिकारी लोग गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं और जहां कहीं दोष रहता है, उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

रूस के सारे पत्र राज्य की सम्पत्ति नहीं हैं। उनका प्रकाशन विभिन्न जन-संगठनों जैसे कम्यूनिस्ट पार्टी, ट्रेड यूनियन, लेखक-संघ आदि के द्वारा होता है। कुछ पत्र मंत्रालयों की ओर से निकलते हैं।

रूस में एक ही विचार-धारा है और सारे पत्रों का एक ही उद्देश्य है—उस विचार-धारा को प्रोत्साहन देना, उसका प्रचार करना। यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि एक ही लीक पर करोड़ों चेतन व्यक्तियों को कैसे चलाया जा सकता है! सच बात यह है कि वहां की प्रत्येक वस्तु लोगों को अपनी एक ही विचार-धारा के प्रति निष्ठावान् बनने की प्रेरणा देती है।

मास्को का सबसे बड़ा प्रेस प्रावदा प्रेस है। उसकी स्थापना सन् १९३४ में हुई। 'प्रावदा' के अतिरिक्त और भी अनेक पत्र-पत्रिकाएं उसमें छपती हैं। प्रेस में लगभग चार दर्जन लाइनो टाइप मशीनें हैं और छपाई के लिए करीब दो दर्जन रोटरी मशीनें हैं, जो तीन घंटे में २०-२५ लाख प्रतियां छापकर और तह करके निकाल देती हैं। प्रेस में अधिकांशतः महिलाएं काम करती हैं।

: २६ :

यातायात के साधन

मास्को में आवागमन के साधन बहुत ही सुविधाजनक हैं। सारे नगर में सुरंग की रेलों—मीत्रो, बिजली से चलनेवाली ट्राली बसों और ट्रामों तथा टैक्सियों एवं बसों का जाल बिछा हुआ है। क्या मजाल कि आपको पांच मिनट भी कहीं प्रतीक्षा करनी पड़े। लम्बी-से-लम्बी कतारें देखते-देखते समाप्त हो जाती हैं। रात के दो घंटों (एक बजे से तीन तक) को छोड़कर सवारियां वहां बराबर चलती रहती हैं।

यातायात की यह सुविधा पिछले तीस वर्षों के भीतर हुई है। उससे पहले वहां केवल ट्राम और घोड़ा-गाड़ियां चलती थीं। आज घोड़ा-गाड़ियां मुश्किल से दीख पड़ती हैं और उनका उपयोग मुख्यत: माल ढोने के लिए किया जाता है।

आवागमन सबसे अधिक ट्रामों द्वारा होता है, क्योंकि विकसित होते-होते वे आज शहर के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गई हैं। प्रत्येक ट्राम में दो डिब्बे होते हैं—अपर और लोअर। अपर में किराया कुछ अधिक लगता है। पिछले बीस वर्षों में ट्राली बसों की भी लोकप्रियता बढ़ी है। उनका विस्तार लगभग ढाईसौ मील के क्षेत्रफल में हो गया है। जहां-जहां बिजली के तार जा सकते हैं, वहां-वहां ट्राली बसें जाती हैं। उनकी संख्या हजार के आस-पास पहुंच गई है। सामान्य बसें ढाई हजार के लगभग हैं, टैक्सियां कोई तीन हजार। प्राय: लोग सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करते हैं। टैक्सियां विशेष महंगी नहीं हैं, फिर भी वे कम ही काम में ली जाती हैं।

सुविधा के अतिरिक्त जिस चीज से मास्को की शान बढ़ी है, वह है वहां की सुरंग की रेल, जिसे 'मीत्रो' कहते हैं। मीत्रो की ख्याति मैं पहले ही सुन चुका था। इसलिए उसे देखने को उत्सुक था। मास्को पहुंचने पर अनेक व्यक्तियों ने आग्रह किया कि मीत्रो अवश्य देखो। अत: वहां पहुंचने के तीसरे दिन शाम को

समय निकालकर मीत्रो देखने गया। वास्तव में उसकी जैसी ख्याति सुनी थी, वैसा ही उसे पाया। बाद में पेरिस, लंदन और जर्मनी की सुरंग की रेलें देखकर यह धारणा और भी पुष्ट हुई कि मास्को की मीत्रो की बराबरी कोई नहीं कर सकता। मास्को में जहां-जहां मीत्रो के स्टेशन हैं, वहां-वहां ऊपर एक इमारत बनी हुई है, जिसके बाहर M चिह्न बना हुआ है। रात में वह लाल प्रकाश से दहकते अंगारे की तरह चमकता रहता है, जिससे यात्रियों को दूर से ही पता चल जाता है कि वहांपर मीत्रो का स्टेशन है। अंदर टिकट की व्यवस्था है। टिकट लेने के पश्चात् सीढ़ियों पर जाने से पहले एक घूमनेवाला अथवा रोकदार गेट होता है, जहां टिकट जांचनेवाली महिला खड़ी रहती है। उसे टिकट दिखाने के बाद आप बिजली से चलती सीढ़ियों पर, जिन्हें ऐक्सकलेटर कहते हैं, जाकर खड़े हो जाइये। सीढ़ियों को बराबर चलते देखकर शुरू में थोड़ा डर-सा लगता है, खासकर पहली सीढ़ी पर पैर रखने और तीन-चार सीढ़ियों के चलकर संभलने तक और अंत में आखिरी तीन-चार सीढ़ियों को पार करने तक, लेकिन दो-चार बार उनपर चल लेने के बाद फिर कुछ नहीं लगता। जरा अभ्यास हुआ कि फिर तो खड़े होकर निश्चिंत भाव से कोई चीज पढ़ सकते हैं, अथवा आराम से इधर-उधर की कला या यात्रियों की चहल-पहल को देख सकते हैं। हर जगह सीढ़ियों की कम-से-कम दो कतारें होती हैं। एक ऊपर से नीचे जानेवाली, दूसरी नीचे से ऊपर आनेवाली। जिन्हें जल्दी होती है, या जो तेज चलने के अभ्यस्त होते हैं, वे स्वयं भी चलकर तेजी से उतर जाते हैं। लेकिन सामान्यतया उतावली दिखानेवाले कम ही लोग पाये जाते हैं। सीढ़ियों के दोनों ओर ऊपर से नीचे तक लकड़ी के लम्बे चिकने हत्थे लगे रहते हैं। जानेवाले लोग बाएं हाथ की ओर हत्थे पर हाथ टिकाकर खड़े हो जाते हैं। उनके खड़े होने के बाद सीढ़ियों पर इतनी जगह बची रहती है कि पीछे से कोई जल्दी-जल्दी उतरे तो उसे रुकावट नहीं होती।

जिन-जिन देशों में सुरंग की रेलें हैं, उन-उनमें इसी प्रकार की बिजली से चलनेवाली सीढ़ियां हैं। यदि ये सीढ़ियां न होतीं तो कल्पना कीजिये कि भूमि के अंदर इतनी निचाई पर चलनेवाली रेलों तक पहुंचने और फिर बाहर आने में लोगों को कितना परिश्रम करना पड़ता और कितनी उनकी शक्ति और समय खर्च होता!

. पेरिस, लंदन, जर्मनी आदि की तुलना में सबसे अधिक सुविधाजनक और

अच्छी सीढ़ियां मास्को की हैं। उनमें न तो झटका लगता है और न किसी प्रकार की आवाज होती है। शायद इसका कारण यह है कि अन्य देशों की तुलना में मास्को की सीढ़ियां नई हैं और उनमें सामान भी अच्छी किस्म का लगा है।

सीढ़ियां उतरने के बाद नीचे प्लेटफार्म पर पहुंच जाते हैं। मास्को के प्लेट-फार्म सफाई की दृष्टि से तो बेजोड़ हैं हीं, कला तथा सुरुचिपूर्णता की दृष्टि से भी वड़े सुन्दर हैं। प्लेटफार्म पर खड़े होकर बिजली के सुहावने प्रकाश और सम-शीतोष्ण वायु में ऐसा प्रतीत होता है, मानों किसी कला-भवन में पहुंच गये हैं। ऊपर से हवा आने की व्यवस्था होने के कारण ऐसा नहीं लगता कि किसी तहखाने में जा पहुंचे हैं। हर स्टेशन की अपनी अलग कला है। सबमें संगमरमर की दीवारें और स्तम्भ हैं और उनकी सजावट निकट के क्षेत्र की विशेषता के आधार पर की गई है। उदाहरण के लिए प्लोश्चद स्वर्डलोवा स्टेशन को लीजिये। चूंकि वह नगर के विशिष्ट थियेटर-भवनों के निकट है, इसलिए उस स्टेशन पर थियेटर से सम्बन्धित अलंकरण दिये गए हैं। लेकिन उसके निकट का प्लोश्चद रिवोल्यूत्सी स्टेशन एकदम भिन्न है। वह बड़ा सादा है और उसकी महरावें गहरे लाल पत्थर की हैं। कुछ स्टेशन रूस के महापुरुषों की विशाल मूर्त्तियों से अलंकृत हैं तो दूसरों पर दूसरे प्रकार की कला-कृतियां उत्कीर्ण हैं। नोवोकुज्नेत्स्काया स्टेशन पर युद्ध के दृश्य दिखाये गए हैं और रूस के सुविख्यात सिपहसालारों की मूर्त्तियों से उन्हें सजाया गया है।

रेलगाड़ियां भी बड़ी साफ-सुथरी और आरामदेह हैं। नीचे यातायात की रुकावट न होने के कारण वे खूब तेज चलती हैं। एक सुरंग रेलों के आने के लिए होती है, दूसरी जाने के लिए। गाड़ियों की सीटें बड़ी आरामदेह हैं और उनमें एक ही दर्जा होता है।

मास्को में मीत्रो की तीन लम्बी लाइनें हैं और चौथी वृत्ताकार है। कुल मिलाकर उनका विस्तार ६५ किलोमीटर है।

पहली लाइन है सोकोल्निकी स्पोर्तिवनाया, जो कि नगर में उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर जाती है। उसके स्टेशन हैं—सोकोल्निकी, क्रस्नोसेल्स्काया, कोम्सोमोल्स्काया, क्रास्निये वोरोता, किरोव्स्काया, जेरजिन्स्काया कागानोविच स्टेशन, बिबलिओतेका इमेनी लेनिना, क्रोपाटकिन्स्काया, पार्क कुल्तूरी, फ्रन्ज़े-न्स्काया और स्पोर्तिवनाया।

दूसरी लाइन है पर्वोमैस्काया कीव्स्काया, जो पूर्व से पश्चिम को जाती है।

उसके स्टेशन हैं—इज़मेलोव्स्काया, स्तालिन्स्काया, इलेक्त्रा जवोदस्काया, बौमे-न्स्काया, कुर्स काया, प्लोश्चद रिवोल्युत्सी, अरबत्स्काया और स्मोलेन्स्काया।

तीसरी लाइन है सोकोल-अवतोज़्वोदस्काया, जो उत्तर-पश्चिम से दक्षिण को जाती है। उसके स्टेशन हैं—एरोपोर्त, डाइनेमो, बेलोरस्काया, मायाकोव्स्काया, प्लोश्चद स्वर्डलोवा, नोवो कुज़नेत्स्काया और पेवलेत्स्काया।

वृत्ताकार लाइन के स्टेशन हैं—पार्क कुल्तूरी, कोल्त्सेवाया, केलूज़्स्काया, सर्पू-कोव्स्काया, पेवलेस्काया, तैगन्स्काया, कुर्सकाया-कोल्त्सेवाया, कोम्सोमोल्स्काया, बेलोरस्काया-कोल्त्सेवाया, क्रेस्नोप्रेस्नन्स्काया और कीव्स्काया-कोल्त्सेवाया।

प्रत्येक लाइन की लम्बाई ११ से २० किलोमीटर (७ से १३ मील) के बीच है और उसे तय करने में १७ से ३० मिनट तक लगते हैं।

हर गाड़ी में ६ या ८ डिब्बे होते हैं और वे १ मिनट ५ या ७ सैकिन्ड के अंतर से चलती है, अर्थात् एक घंटे में तीस से लेकर चालीस गाड़ियां दौड़ती हैं। हर डिब्बे में ५२ मुसाफिरों के बैठने का स्थान होता है और १२० के खड़े होने का। लगभग ३० लाख व्यक्ति प्रतिदिन मीत्रो द्वारा आते-जाते हैं।

भाड़ा ८ कोपक प्रति किलोमीटर के हिसाब से लगता है, बस का १७, ट्राली बस का १५ और ट्राम का ६ कोपक लगता है। बहुत-से लोग एक साथ टिकटों की कापियां खरीद लेते हैं, जिनसे कुछ किफायत हो जाती है। महीनेदारी पासों की भी व्यवस्था है।

अभी तीन और लाइनें तैयार हो रही हैं। इन तीनों के तैयार होने पर शहर के बहुत बड़े भाग में मीत्रो का जाल बिछ जायगा।

यात्रियों के चढ़ने-उतरने के लिए रेल, ट्राम, बस आदि में दो दरवाज़े होते हैं। कंडक्टर के संकेत करते ही ड्राइवर अपने स्थान पर बैठा हुआ पुर्जे को घुमाकर उन्हें बन्द कर देता है। जल्दी में बन्द होने के कारण किसी यात्री का हाथ-पैर फंसकर चोट न खा जाय, इसलिए दो ओर से आनेवाली किवाड़ों के बीच में रबर लगी रहती है। इस प्रसंग में मुझे एक घटना याद आ रही है। एक दिन मैं कहीं जा रहा था। मेरे साथ नीना नाम की परिचारिका थी। हम लोग बस पर सवार हुए, लेकिन नीना ने अचानक कन्डक्टर से पूछा तो पता चला कि हम गलत गाड़ी में सवार हो गये हैं। नीना ने मुझसे कहा, "जल्दी से उतरो।" मैं उतरा और बाहर पहुंच गया। मेरे पीछे नीना उतरी। संयोग से, उसका एक पैर गाड़ी के अन्दर था कि दरवाजा

बन्द हो गया । बेचारी हाथों के बल नीचे गिरी । ज़रा कल्पना कीजिये उसकी हालत की । एक पैर किवाड़ों के बीच अटका था, जिसे वह गिरी हुई हालत में खींचने का असफल प्रयास कर रही थी। यात्रियों ने यह देखा तो एकदम चिल्लाये। ड्राइवर ने झट द्वार खोल दिया। पैर बाहर निकल आया। उसके कोई खास चोट तो नहीं आई, लेकिन किवाड़ों के बीच दब जाने से टांग में दर्द तो हो ही गया। उसने दबे हुए स्थान को खूब मला, फिर भी बेचारी कुछ दूर तक लंगड़ाकर चलती रही। ऐसी घटनाएं सामान्यतया कम ही होती हैं।

नगर के यातायात के इन साधनों के अलावा मास्को में ६ रेल्वे स्टेशन हैं, जहां से विभिन्न स्थानों को गाड़ियां जाती हैं । लेनिनग्राड, व्लाडीवोस्तक, कजान, स्टालिनग्राड, अजरबेजान, जार्जिया, गोर्की, उक्रेन आदि-आदि सभीके लिए रेल की सुविधा है। रेल के अलावा बसें भी विभिन्न नगरों को जाती हैं । सड़कें और बसें अच्छी होने के कारण बहुत-से लोग बसों से जाना पसंद करते हैं।

माल ढोने में मास्को-नहर तथा वोल्गा-दोन नहर बड़ी सहायक हैं। उन्होंने मास्को नगरी को श्वेत, बाल्टिक, केस्पियन, आजोव तथा काला सागरों से जोड़ दिया है। इन नहरों में स्टीमर बड़े आराम से चलते हैं और उनके द्वारा विभिन्न नगरों के साथ माल का आयात-निर्यात होता रहता है । नगर में तीन बंदरगाह हैं, उत्तरी, पश्चिमी और दक्षिणी । सामान लादने, उतारने आदि की आधुनिक सुविधाओं से ये तीनों ही बंदरगाह सुसज्जित हैं।

इतना बड़ा देश बिना हवाई यातायात के कैसे काम चला सकता है ? मास्को से अपने देश के विभिन्न नगरों को ही नहीं, अन्य देशों को भी हवाईजहाज आते-जाते हैं। शहर में दो हवाई अड्डे हैं। वाईकोवो, जो नगर से दक्षिण-पूर्व में ३२ किलोमीटर पर है। व्नूकोवो, जो दक्षिण-पश्चिम में २४ किलोमीटर पर है। मास्को से बुखारेस्ट, सोफिया, तिराना, बर्लिन, बेल्ग्रेड, बुडापेस्ट, वारसा, प्राग्, वियना, हेलसिंकी, कापनहेगन, स्टाकहोम, काबुल, उलान-बेटर, पीकिंग तथा फ्योंग्यांग के लिए सीधी लाइनें हैं। पेरिस जाने के लिए प्राग् पर विमान बदलना पड़ता है। अब तो दिल्ली और मास्को के बीच भी सीधी हवाई सर्विस की व्यवस्था हो गई है। जेट विमानों का भी उपयोग होने लगा है। मास्को से चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग् में जेट से ही गया था और मास्को से लौटते समय ताशकंद तक की यात्रा जेट विमान से ही की।

: २७ :

सर्वोच्च सम्मान और पुरस्कार

अपने देश के चतुर्मुखी निर्माण के लिए रूस का शासन बड़ा ही सजग है। वह अपने नागरिकों को राष्ट्र की अभिवृद्धि के लिए न केवल आवश्यक साधन प्रदान करता है, अपितु उनकी सेवाओं को सार्वजनिक रूप से सम्मानित भी करता है। जो कोई व्यक्ति अथवा संस्था लोक-कल्याण का महत्वपूर्ण कार्य करती है, राज्य उसे राष्ट्रीय सम्मान, जैसे उपाधि, पदक, पुरस्कार आदि से विभूषित करता है। वैसे प्रत्येक स्वाधीन-चेता राष्ट्र अपना कर्तव्य मानता है कि वह अपने देश के उन्नायकों एवं महान् सेवकों को उचित सम्मान और गौरव से मंडित करे। कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे कृतज्ञता-प्रकाशन का तो अवसर प्राप्त होता ही है, दूसरे लोगों को भी सेवा की प्रेरणा मिलती है। यह ठीक है कि सेवा का बदला नहीं चुकाया जा सकता, लेकिन यह भी सही है कि अपने महान् सेवकों को मान देकर कोई भी राष्ट्र अपनेको ही गौरवान्वित करता है।

छोटे-बड़े प्रायः सभी स्वतन्त्र देशों में पुरस्कार तथा उपाधियां देने की परिपाटी प्रचलित है। हमारे अपने देश में भी ऐसा होता है। अंग्रेजों के जमाने में लोगों को खिताब मिलते थे, देश के स्वतन्त्र होने के बाद नई उपाधियां चालू की गई हैं और वे विभिन्न क्षेत्रों में की गई महत्वपूर्ण सेवाओं के उपलक्ष में दी जाती हैं।

रूस में पदक, पुरस्कार तथा उपाधियां देने का खूब प्रचलन है। वहां के शासकों के सामने दो चीजें मुख्य रूप से रहती हैं। एक तो यह कि उनके देश के हर क्षेत्र—आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक आदि-आदि—में काम करनेवालों का हौसला बढ़ता रहे, उन्हें अधिकाधिक सेवा करने की प्रेरणा मिलती रहे, दूसरी यह कि उनका शांति का संदेश सारे संसार में फैले और उस दृष्टि से जिस व्यक्ति की उल्लेखयोग्य सेवाएं हों, उसे सम्मानित किया जाय। इस तरह रूस में दो प्रकार के सम्मान हैं—राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय। सबसे पहले

हम राष्ट्रीय सम्मानों अर्थात् रूस के नागरिकों अथवा संस्थाओं को दिये जानेवाले पुरस्कारों और उपाधियों की चर्चा करेंगे।

सोवियत राज्य की स्थापना के प्रारम्भिक काल में दो आर्डर स्थापित किये गये थे। सैनिक कौशल के लिए 'आर्डर ऑव रैड बैनर' और श्रम-संबंधी उपलब्धियों के लिए 'आर्डर ऑव दी रेड बैनर ऑव लेबर'। तत्पश्चात 'आर्डर ऑव लेनिन' प्रारंभ किया गया और आज रूस की वही सर्वोच्च उपाधि है। इनके अलावा और भी कई उपाधियां रूस के अध्यक्ष-मण्डल के ऐलानों द्वारा प्रदान की जाती हैं।

उपाधियों के अतिरिक्त २७ विभिन्न प्रकार के पदक रक्खे गये हैं, जो श्रम, युद्ध तथा वीरता आदि की दृष्टि से की गई सेवाओं के उपलक्ष्य में दिये जाते हैं।

पिछले पच्चीस वर्षों में उद्योग, कृषि, परिवहन, संस्कृति, विज्ञान आदि के क्षेत्रों में २० लाख व्यक्तियों एवं संस्थाओं को ये आर्डर अथवा पदक मिल चुके हैं। हमने कई ऐसी संस्थाएं देखीं, जिन्हें 'आर्डर ऑव लेनिन' प्राप्त हो चुका था। उन संस्थाओं को अपनी उपाधियों को पूरा आदर और गौरव देते देखकर हमें बड़ी खुशी हुई और हमने अनुभव किया कि उपाधियां वहां सचमुच प्रेरणा देती हैं।

इन सम्मानों के अतिरिक्त विज्ञान, इंजीनियरिंग, कृषि, चिकित्सा-विज्ञान और समाज-विज्ञान के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सेवाओं के लिए सन् १९२५ में 'वी० आई० लेनिन पुरस्कार' प्रारंभ किये गए थे, जो दस वर्ष तक चालू रहे। सन् १९५६ से उन्हें फिर से देना शुरू कर दिया। ये पुरस्कार विज्ञान, इंजीनियरिंग, कला, साहित्य आदि पर वर्ष में एक बार २२ अप्रैल को, लेनिन के जन्म-दिवस पर, दिये जाते हैं।

रूस के जिस पुरस्कार से सारी दुनिया परिचित है, वह है 'अन्तर्राष्ट्रीय लेनिन शान्ति पुरस्कार'। पहले इस पुरस्कार का नाम स्टालिन के नाम के साथ जुड़ा हुआ था, लेकिन ८ सितम्बर १९५६ को रूस के अध्यक्ष-मण्डल ने एक ऐलान द्वारा उसका नाम बदलकर लेनिन के नाम पर रख दिया। ऐसे दस पुरस्कार हर साल दिये जाते हैं। शान्ति की रक्षा और दृढ़ता के लिए चलनेवाले संघर्षों में महत्वपूर्ण योगदान देने के उपलक्ष में किसी भी देश के नागरिक को ये पुरस्कार दिये जा सकते हैं। पुरस्कार प्राप्त करनेवाले को एक स्वर्णपदक तथा एक लाख रूबल नक़द दिये जाते हैं। पुरस्कारों का निर्णय करने के लिए एक विशेष समिति है।

सन् १९५० से लेकर अबतक फ्रांस, चीन, इटली, ब्रिटेन, जापान, स्विट्ज़रलैण्ड, इंडोनेशिया, फिनलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, जर्मनी, सीरिया, अमरीका आदि-आदि

बीसियों देशों के निवासियों को ये पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। भारत में भी सन् १९५२ में यह पुरस्कार डा० सैफुद्दीन किचलू और सन् १९५३ में श्री नवावसिंह सोखी को मिला था। अन्य देशों के पुरस्कृत सम्माननीय व्यक्तियों में मेडम सनयात सेन, इकुओ ओयामा, इलिया एहरनबुर्ग प्रभृति के नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य हैं।

जहांतक आंतरिक सम्मानों की बात है, इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी उपयोगिता है और उनके द्वारा रूस के निवासियों तथा संस्थाओं को पर्याप्त प्रोत्साहन भी मिल रहा है; लेकिन अंतर्राष्ट्रीय शांति-पुरस्कार के संबंध में इस स्पष्ट घोषणा के बावजूद कि वह बिना किसी राजनैतिक मान्यता एवं जाति तथा विश्वास के भेद-भाव के किसी भी देश के नागरिक को प्रदान किया जा सकता है, उसके चुनाव के पीछे साम्यवादी विचार-धारा का रंग रहता है। यदि ऐसा न होता तो अबतक इस पुरस्कार का क्षेत्र और लोकप्रियता बहुत व्यापक हो गई होती। प्रेम और शांति के आधार पर सारे संसार के राष्ट्रों को एक-दूसरे के निकट लाने में गांधीजी से बढ़कर किसकी सेवाएं होंगी? लेकिन इस पुरस्कार के लिए उन्हें योग्य नहीं समझा गया। इसके राजनैतिक कारणों में हम नहीं जाना चाहते, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि पुरस्कार के घोषित उद्देश्यों को देखते हुए उसके लिए उपयुक्त व्यक्तियों की सूची में गांधीजी का नाम सबसे ऊपर होना चाहिए था। किसी भी पुरस्कार से गांधीजी का गौरव तो भला क्या बढ़ना था, वह पुरस्कारों से बहुत ऊंचे थे, लेकिन फिर भी इस पुरस्कार को उचित दर्जा दिलाने में इससे बड़ी सहायता मिल सकती थी। यह तो रही हमारे देश की बात। अन्य देशों में भी ऐसे अनेक व्यक्ति हुए हैं और हैं, जिनकी सेवाएं मानव-जाति के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगी। उनको पुरस्कार देकर रूस न केवल अपनी उदारता का परिचय देता, अपितु इस पुरस्कार की ओर अंतर्राष्ट्रीय जगत में कहीं अधिक आदर और आकर्षण बढ़ जाता। हम आशा करें कि अन्य देशों के साथ सम्पर्कों में वृद्धि होने से रूस की संकीर्ण दीवारें टूटेंगी और अन्य विचार-धाराओं तथा विश्वासों के प्रति वहां के निवासियों का दृष्टिकोण अधिक व्यापक बनेगा?

: २८ :

स्त्री-बच्चों का संरक्षण

रूस के पास सबसे बड़ी दौलत उसके इंसान हैं और इसमें संदेह नहीं कि वहां का शासन अपनी इस निधि का संरक्षण बहुत ही सावधानी से करता है। हम पहले ही बता चुके हैं कि द्वितीय महायुद्ध में वहां के ढाई करोड़ आदमी मारे गये थे। अतः आज मारे देश में स्त्रियां की बहुतायत है। प्रायः सभी विभागों में स्त्रियां ही काम करती दिखाई देती हैं। राज्य की ओर से पुरुषों और स्त्रियों के बीच कोई भेद-भाव नहीं किया जाता—न नौकरियों में, न वेतन में, न और किसी चीज़ में। इतना ही नहीं, बल्कि कुछ मामलों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक सुविधाएं दी जाती हैं।

गर्भवती स्त्रियों की समय-समय पर जांच करने और उन्हें आवश्यक परामर्श देने के लिए अनेक केन्द्र हैं। प्रसूति के लिए प्रसूति-गृह हैं। बच्चा होने के ५६ दिन पहले से स्त्रियों को काम से छुट्टी मिल जाती है, जो ५६ दिन बाद तक चलती है। जरूरत पड़ने पर वह छुट्टी बढ़ाई भी जा सकती है। कहने का तात्पर्य यह कि जब-तक स्त्री काम करने योग्य नहीं हो जाती तबतक काम पर जाने के लिए वह विवश नहीं होती।

गर्भवती माताओं के नाम सरकारी सलाह-केन्द्रों में दर्ज कर लिये जाते हैं। ये केन्द्र उनकी और बाद में उनके बच्चों की डाक्टरी देखभाल करते रहते हैं। ९५ फीसदी के लगभग बच्चे प्रसूति-गृहों में पैदा होते हैं। मेरे मेजबान भाई मेवालाल की पत्नी को जापे के लिए प्रसूति-गृह में भरती कराया गया था। मेवालालजी रोज शाम को उनके समाचार लेने तथा उनकी जरूरत की चीजें पहुंचाने जाते थे। कई दिन मैं भी उनके साथ गया। प्रसूति-गृह की सफाई आदि देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पूछने पर मालूम हुआ कि वहांपर एक पैसा भी खर्च नहीं आता, बल्कि तीसरी सन्तान से शासन उल्टे बच्चे की मां को कुछ पैसा देता है। चौथे बच्चे के होने के

बाद से कुछ मासिक भत्ता भी मिलता है । हमें बताया गया कि युद्ध के बाद पांच वर्षों में सरकार की ओर से इस प्रकार के भत्ते के रूप में १४८० करोड़ रूबल दिये गए थे।

स्त्री-बच्चों के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखखा जाता है। यहां मुझे एक प्रसंग याद आता है। मास्को-स्थित भारतीय दूतावास के एक अधिकारी महोदय के यहां कोई रूसी लड़की काम करती थी। किसीने दूतावास के निकट के चिकित्सा-केन्द्र को सूचना दी कि उस लड़की का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है और वह बहुत दुबली हो गई है। परिणाम यह हुआ कि अधिकारी महोदय के पास सूचना आई कि उस लड़की को अमुक दिन केन्द्र में आकर अपनी जांच करानी चाहिए। लड़की घर का छोटा-मोटा काम, जैसे सफ़ाई आदि करती थी। वह केन्द्र में गई, वहां उसकी जांच हुई और उसे वास्तव में अस्वस्थ पाने पर उसकी चिकित्सा की गई। जब वह पूर्णतया स्वस्थ हो गई तो उसे स्वस्थता का प्रमाण-पत्र देकर पुनः काम पर भेज दिया गया। उसने काम शुरू कर दिया। उसके कुछ ही दिन बाद जिस इलाके में वह रहती थी, वहां के चिकित्सा-केन्द्र की सूचना आई कि उन्हें मालूम हुआ है, वह लड़की बीमार है और उसे अमुक तारीख को केन्द्र में उपस्थित होना चाहिए। घरेलू कर्मचारी का रोज-रोज गैरहाजिर होना किसी भी व्यक्ति को भारी पड़ सकता है। फलतः अधिकारी महोदय, विशेषकर उनकी पत्नी बड़ी झुंझलाईं। उनका कहना था कि जब उस लड़की को उसकी शारीरिक योग्यता का एक चिकित्सा-केन्द्र ने प्रमाण-पत्र दे दिया है तो दूसरे केन्द्र में उसके जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। केन्द्रवाले कहते थे कि चूंकि वह उनके क्षेत्र में रहती है, इसलिए जबतक वे स्वयं उसे नहीं देख लेंगे, तबतक वे नहीं मानेंगे। बात काफी बढ़ गई, पर अन्त में उस लड़की को जाना पड़ा। संभवतः उसे वहां रहने की जरूरत नहीं पड़ी, पर अधिकारी लोग अपने कर्त्तव्य का पालन करके ही माने।

एक मामूली घरेलू कर्मचारी थी वह, पर शासन ने उसके मामले में भी पूरी सावधानी बरती। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि वे अपने किसी भी नागरिक को, जहांतक उनका बस चलता है, बीमार बर्दाश्त नहीं करते; दूसरे यह कि एक के बीमार होने से दूसरों का स्वास्थ्य खतरे में पड़ता है, इसे वे गंभीरता से देखते हैं। यह नहीं कि लोग वहां बीमार न पड़ते हों, यह भी नहीं कि सब ठीक ही हो जाते हों और कोई मरता न हो, लेकिन सच बात यह है कि कोई भी

व्यक्ति दवा-दारू के अभाव में यातना नहीं भोगता।

शारीरिक अथवा मानसिक क्षमता में स्त्रियां पुरुषों से पीछे नहीं हैं, बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि शरीर-श्रम के काम स्त्रियां अधिक करती हैं। सवेरे ही बाजार से साग-भाजी खरीदने का काम मुख्यत: स्त्रियों के ही जिम्मे रहता है। बोझी (पोर्टर) वहां मिलते नहीं हैं। इसलिए थैलों में ठसाठस सामान भरकर, काफी बोझ लेकर, स्त्रियां सपाटे-से घर लौटती देखी जा सकती हैं। अधिक वेतन पानेवाले व्यक्ति की घरवाली भी सामान लादकर लाने में कोई हीन भाव अनुभव नहीं करती। इसी प्रकार किसी बड़े पद पर काम करनेवाली स्त्री अपने अधीन छोटा काम करनेवाले मर्द को हेय दृष्टि से नहीं देखती। वह जानती है कि हर काम का अपना महत्व है और वह दूसरे कामों का पूरक है।

स्त्रियों की भांति बच्चों की भी देखभाल वहां बड़ी चिन्ता से की जाती है। उनके स्वास्थ्य की जांच करने के लिए पृथक चिकित्सा-केन्द्र हैं और शिक्षा के लिए शिक्षा-संस्थाएं। मां जब काम पर जाती है तो वह अपने तीन वर्ष तक के बच्चे को शिशु-पालन-गृह में छोड़ जाती है। ३ साल से ७ साल तक की उम्र का बच्चा किंडरगार्टन में जाता है। दोनों ही में अध्यापन की शिक्षा प्राप्त नर्सें बच्चों की देखभाल करती हैं। उनके स्वास्थ्य और शारीरिक विकास का विशेष रूप से ध्यान रक्खा जाता है।

शिशु-गृह तथा किंडरगार्टन में बच्चों पर जो खर्च आता है, उसका अधिकांश भाग सरकार उठाती है। इस प्रकार न केवल मां निश्चिन्त होकर अपने काम पर चली जाती हैं, अपितु बच्चों को भी स्वस्थ वायु-मण्डल में विकास का अवसर मिल जाता है। इन संस्थाओं में लाखों छोटे-बड़े बालक पालन-पोषण तथा शिक्षा की सुविधा का लाभ लेते हैं।

बच्चों को और अधिक सुविधाएं किस प्रकार मिल सकती हैं, उनके स्वास्थ्य और शारीरिक विकास की गति को कैसे बढ़ाया जा सकता है, उनकी शिक्षा और अधिक उपयोगी किस प्रकार हो सकती है, आदि-आदि बातों पर बराबर अनुसंधान होते रहते हैं।

बालकों की दृष्टि से रूस का 'यंग पायोनियर' आंदोलन बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ है। 'यंग पायोनियर' उन स्कूली बच्चों को कहा जाता है, जो 'लेनिन यंग पायोनियर्स' नामक संस्था के सदस्य होते हैं। यह संस्था किशोरों का जन-संगठन

है और उनमें ९ से १४ वर्ष तक की आयु के बालक-बालिकाएं शामिल हो सकते हैं। वे अपने आचरण से और अपने अध्ययन से स्कूल के अन्य बच्चों के सामने आदर्श उपस्थित करते हैं। 'यंग पायोनियर्स' के विभिन्न क्लब हैं, भवन हैं, पार्क है और फार्म हैं।

गरमियों के दिनों में उनके लिए स्थान-स्थान पर शिविरों का आयोजन किया जाता है। इन शिविरों के कारण बच्चों को अपना पूरा देश देखने का अवसर मिल जाता है, साथ ही बहुत-सी चीजों की व्यावहारिक शिक्षा भी। शिविरों में बच्चे साथ-साथ रहते हैं तो सामूहिक रूप से रहने और काम करने की शिक्षा उन्हें अनायास मिल जाती है।

१४ से २६ वर्ष तक की आयु के लिए 'यंग कम्यूनिस्ट लीग' है, जिसका संक्षिप्त नाम 'कोम्सोमोल' है। यह संगठन युवकों के अनुशासन और विकास की दृष्टि से बड़े काम का है। उसका जाल सारे देश में फैला हुआ है। फैक्टरियों, स्कूलों, सामूहिक खेतों आदि सबमें इस संगठन के केन्द्र हैं। लगभग १ करोड़ ८० लाख से अधिक इसके सदस्य हैं।

युवकों में सेवा की भावना उत्पन्न और विकसित करना, श्रम के प्रति प्रेम पैदा करना, उन्नत विज्ञान, इंजीनियरिंग आदि की जानकारी और राष्ट्रीय अर्थ-तंत्र तथा संस्कृति के सभी क्षेत्रों में उस जानकारी का व्यावहारिक अमल, ये तथा अन्य ऐसी ही बातें हैं, जिनपर 'कोम्सोमोल' का विशेष ध्यान रहता है।

इस संगठन की वहां के राष्ट्रीय जीवन में बड़ी प्रतिष्ठा है। उसके अपने क्लब हैं, पुस्तकालय हैं, प्रकाशन-गृह हैं और अपनी पत्र-पत्रिकाएं हैं। यह संस्था जहां युवकों के हितों का संरक्षण करती है, वहां उन्हें देश के अभ्युदय में अपनी सर्वोत्तम देन देने की प्रेरणा भी देती है।

कहा जाता है कि बच्चों के लालन-पालन तथा उनके शारीरिक विकास की सर्वोत्तम व्यवस्था रूस में है। इसमें कोई शक नहीं कि मुझे रूस के बच्चों के समान स्वस्थ बच्चे किसी भी अन्य देश के, जहां-जहां मैं गया, नहीं दिखाई दिये। उनके चेहरे गुलाब के फूल जैसे खिले रहते हैं और गालों की स्वाभाविक लाली उनके स्वास्थ्य का परिचय देती है। सुबह-शाम हजारों बच्चों को आप घरों के कृत्रिम तापमान के बाहर खुले मैदानों और पार्कों में खेलते पावेंगे। शीत अधिक होता है तो उन्हें खूब कपड़े पहना दिये जाते हैं। बंदर-टोपी, जिसे वे 'शापका' कहते हैं,

पहनाने का वहां बहुत रिवाज है। उससे सिर, कान और गर्दन तक की रक्षा हो जाती है। उस काली टोपी के पहन लेने के बाद बच्चों के गोरे चेहरे और भी आकर्षक लगते हैं। बड़े-बड़ों का उनके साथ खेलने और उन्हें प्यार करने को जी मचल उठता है।

बच्चों के मनोरंजन तथा मानसिक विकास के लिए अनेक सांस्कृतिक केन्द्र हैं। उनके सिनेमा-घर हैं, थियेटर हैं, अनुसंधान-शालाएं हैं। शासकों की बराबर कोशिश रहती है कि बालकों का, जिनके ऊपर देश का भविष्य निर्भर करता है, सर्वांगीण विकास हो और वे अच्छी तरह से शारीरिक तथा मानसिक क्षमता प्राप्त करके राष्ट्र के सुयोग्य नागरिक बनें।

यह ठीक है कि वहां की शिक्षा एकांगी है और वह बचपन से ही लोगों को एक खास सांचे में ढालती है, फिर भी मानना होगा कि वहां के बच्चे बड़े ही तन्दुरुस्त, लगनवाले और मेहनती हैं।

: २९ :

लेनिनग्राड में

मास्को में एक महीने रहने के उपरान्त मैं यूरोप के अन्य देश देखने चला गया। चैकोस्लोवाकिया, स्विट्जरलैण्ड, इटली, फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी और डेनमार्क होकर अंत में मैं फिनलैण्ड पहुंचा। मास्को से विमान का वापसी टिकट ले गया था और ऐसा कार्यक्रम बनाया था कि फिनलैण्ड की राजधानी हेलसिन्की होता हुआ लेनिनग्राड पहुंच जाऊं और वहां दो-तीन दिन रहकर मास्को आऊं। इस प्रकार यूरोप के उपरोक्त देशों में घूमकर[1] मैं आखिरी पड़ाव हेलसिन्की से पुनः रूस की ओर रवाना हुआ।

जिस विमान से मैं हेलसिंकी से चला वह रूसी था—एरोफ्लोट। जितना वह आरामदेह था, व्यवस्था उतनी ही खराब। न खाने को कोई चीज मिली, न पीने को चाय-काफी। उसकी परिचारिका बड़ी ही स्थूलकाय थी। विमान के उड़ान भरते समय कुर्सी पर जमी तो बराबर जमी ही रही। सभी कम्पनियों का नियम है कि विमान रवाना होता है तब, जी न मिचलाये इसलिए, लेमनचूस या पिपरमेंट की गोलियां अथवा वैसी ही कोई चीज यात्रियों को दी जाती है और जब जहाज उतरता है, उस समय भी ऐसा ही किया जाता है। लेकिन इस विमान में ऐसा कोई इन्तजाम न था। जब विमान ऊपर आकर समगति से चलने लगा तो मैंने परिचारिका से कहा, "एक प्याला कॉफी दे सकोगी ?" उसने सिर हिलाकर कहा, "नियत।"—अर्थात् नहीं। पता नहीं, क्या बात थी कि जो वह सारे सफर में मुंह फुलाये बैठी रही।

एक बार फिर सागर की बहार देखने को मिली। बाल्टिक सागर उमंग से हिलोरें ले रहा था। सूर्य के प्रकाश में उसके बदलते रूप बड़े सुन्दर लगते थे।

[1] उस प्रवास का विस्तृत वृत्तान्त लेखक की शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'यूरोप की परिक्रमा' में पढ़िये।

जिस समय विमान लेनिनग्राड के हवाई अड्डे पर उतरा, शाम के ६ बजकर ५५ मिनट हुए थे। वहां का समय हेलसिंकी के समय से आगे था, यानी मेरी घड़ी में उस समय ४ बजकर ५५ मिनट हुए थे। मैंने घड़ी आगे बढ़ाई। एक बार मैं फिर रूस में पहुंच गया था। मुझे इसकी प्रसन्नता थी, कारण कि इतने देश देख लेने के बाद में इस निर्णय पर पहुंचा था कि रूस का-सा प्रेम, सेवा-भाव तथा भारत के प्रति आत्मीयता अन्य किसी भी देश में दिखाई नहीं देती।

लेनिनग्राड देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी, क्योंकि मैं जानता था कि रूस के इतिहास में उस नगर का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। पहले रूस की राजधानी वहीं थी और वह किसी समय अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर था। द्वितीय महायुद्ध में वह नाजियों का कोप-भाजन बना और उसे भूमिसात कर दिया गया, लेकिन उसका गौरव कहां जानेवाला था! नाजियों के पराभूत होने पर उसका पुनर्निर्माण हुआ और आज जो शान लेनिनग्राड की है, वह मास्को या रूस के अन्य किसी नगर की नहीं है। ऐसे नगर को देखने का लोभ संवरण करना मुश्किल था। जाते समय मैंने प्राग् को कार्यक्रम में रक्खा था, लौटते समय लेनिनग्राड को।

हवाई अड्डे पर पासपोर्ट तथा वीसा आदि की जांच में एक घंटे से अधिक लग गया। अच्छा हुआ कि हवाई अड्डे पर एक रूसी सज्जन मिल गये, जो अंग्रेजी जानते थे। उन्होंने बड़ी मदद की। हवाई अड्डे के अधिकारी लोग इस शंका का समाधान करना चाहते थे कि मैं इतना घूमकर दूसरी बार रूस क्यों आया हूं। मैंने उनसे कहा कि मैं तो लन्दन से सीधा स्वदेश लौट जाना चाहता था; लेकिन आपके यहां के ही लोग नहीं माने। टूरिस्ट ब्यूरो के अधिकारियों ने कह दिया कि मास्को से तरमेज और तरमेज से दिल्ली तक के मेरे वापसी टिकट को वे बदल नहीं सकते। इसलिए उन्होंने मुझे सलाह दी कि आप घूम-घामकर मास्को लौट आओ और फिर अपने पास के टिकट का उपयोग करके दिल्ली चले जाना। उनकी इस सलाह को मानकर ही मुझे इधर आना पड़ा। खैर, जैसे-तैसे जान छूटी।

लेनिनग्राड का हवाई अड्डा बहुत शानदार न होने पर भी काफी अच्छा है। बड़ा भी खूब है। पर उसमें वह सफाई नहीं है, जो मुझे ज्यूरिक के हवाई अड्डे में दिखाई दी। पासपोर्ट की जांच हो जाने पर, मेरी सहायता करनेवाले रूसी सज्जन ने पूछा कि शहर में कहां ठहरोगे? मैंने कहा, "मुझे पता नहीं। आप जहां कहेंगे, ठहर जाऊंगा।" उन्होंने बस में मेरा सामान रखवाया और बस का भाड़ा

भी अपने पास से चुका दिया। रास्तेभर वह भाई नाजियों की बर्बरता के किस्से सुनाते रहे। हवाई अड्डे से शहर काफी दूर है, पर उनकी हृदय-स्पर्शी कहानियों के कारण रास्ता मालूम भी न पड़ा। शहर में घूमते हुए हम लोग एक जगह उतर पड़े। वहां से सामान उठाकर आस्तोरिया होटल पहुंचे। लेनिनग्राड के बड़े होटलों में से वह एक है। बड़ी लम्बी-चौड़ी इमारत है उसकी। बहुत-ही साफ-सुथरा। नीचे सामान रखकर वह मुझे सूचना-विभाग में, जो कि उसी होटल में है, ले गये। एक बहन ने मेरा पासपोर्ट और वीसा देखकर पूछा कि आप किसके निमंत्रण पर यहां आये हैं? मैंने कहा, "किसीके भी नहीं। मैं तो लेखक और पत्रकार हूं। इस जिज्ञासा से स्वतः ही आया हूं कि इस नगर को देखूं, जो रूस के इतिहास में इतना प्रसिद्ध रहा है और जिसने रूस की क्रांति में महत्त्वपूर्ण भाग लिया है।" वह बहन कुछ देर तक सोचती रहीं। अनन्तर वह किसी ऊंचे अधिकारी के पास गईं। थोड़ी देर बाद वह लौटकर आईं। मुझे मालूम नहीं कि अधिकारी के साथ उनकी क्या बातचीत हुई; लेकिन लौटते ही उन्होंने ऊपर की मंजिल के एक बड़े कमरे में मेरे ठहरने की व्यवस्था करादी। उन बहन की द्विविधा और बाद में अधिकारी के पास जाने से एक बात साफ हो गई और वह यह कि वहांपर उन्हीं व्यक्तियों के ठहरने की व्यवस्था की जाती है, जो किसी रूसी संस्था के या सरकार के निमंत्रण पर आते हैं। पता नहीं, मेरे लिए उन्होंने किस तरह रास्ता निकाला होगा। संभवतः उन्हें इस बात से आसानी हुई होगी और ठहराने का निर्णय करने में सुभीता हुआ होगा कि मैं एक महीने मास्को में रह चुका था।

पाकिस्तान का एक शिष्टमण्डल उस होटल में ठहरा हुआ था। कमरे में सामान जमाकर जब मैं नीचे रेस्ट्रां में भोजन करने आया तो शिष्टमण्डल के कुछ लोग वहां मिल गये। मालूम हुआ कि वे रूसी सरकार के निमंत्रण पर व्यापार-सम्बन्धी बातचीत करने आये थे। अगले दिन वे मास्को लौट जानेवाले थे।

रेस्ट्रां में जाकर जब मैंने खाना मांगा तो कोई भी व्यक्ति मेरी बात नहीं समझ पाया। मैं आलू और टमाटर विशेष रूप से चाहता था, पर मेरे बार-बार कहने, इशारे से समझाने और अन्त में कागज पर चीजों की आकृतियां बनाने पर भी वे नहीं समझ पाये! हारकर मैं सूचना-विभाग की बहन के पास गया और उन्हें सारा हाल कह सुनाया। वह बड़ी हँसी। फिर मेरे साथ आकर उन्होंने रेस्ट्रां के आदमी को सब चीजें बतादीं। समझने पर वे लोग भी हँसने लगे।

खाने में ५ रूबल लगे, पर चीजें अच्छी मिलीं। खाकर बाहर आया। पाकिस्तानी शिष्टमण्डल के कुछ व्यक्ति फिर मिल गये। बैठकर बातें करने लगे। उनमें से एक ने कहा, "आप तो हिन्दुस्तानी हैं ?" मैंने कहा, "जीहां।" वह बोले, "यह बताइये कि ये रूसवाले हिन्दी के लिए इतना कर रहे हैं, पर उर्दू के लिए कुछ क्यों नहीं करते ?"

उनके इस प्रश्न पर मुझे मन-ही-मन बड़ी हँसी आई, पर मैंने उसे रोककर कहा, "इसका जवाब या तो रूस की सरकार दे सकती है या आप ? मैं क्या बताऊं ?"

उन्होंने आग्रह करते हुए कहा, "आप इतने दिन से इस मुल्क में घूम रहे हैं। कुछ तो बताइये।"

मैंने कहा, "सच बात तो यह है कि आपका सवाल ही गलत है । रूस उर्दू के लिए भी बहुत-कुछ कर रहा है । उर्दू की कई किताबों के तरजुमे उसने रूसी में निकाले हैं और अपनी बहुत-सी किताबों को उर्दू में छापा है।"

उन्होंने कहा, "नहीं साहब, हिन्दी के लिए जितना काम हो रहा है, उसे देखते उर्दू के लिए कुछ भी नहीं हो रहा है।"

मुझे उनकी बातचीत का ढंग कुछ अजीब-सा लगा। मैंने कहा, "आप इसकी कैफियत रूसी सरकार से तलब कीजिये।"

विषय बदलकर थोड़ी देर इधर-उधर की और बातें करके मैं अपने कमरे में चला आया। इस बीच एक परिचारिका कांच की सुराही में पानी भरकर रख गई और कांच का एक गिलास। पिछली दो रातों में अच्छी नींद नहीं आई थी। बिस्तर पर पड़ते ही गहरी नींद में सो गया।

सबेरे उठा तो घड़ी में पौने नौ बजे थे। निवृत्त होकर हजामत बनाई और गरम पानी से अच्छी तरह से स्नान किया। बहुत दिनों बाद इस तरह आराम से नहाने का अवसर मिला था। बड़ा आनन्द आया।

तैयार होकर नीचे गया। नाश्ता किया। सूचना-विभाग की बहन ने मेरे साथ के लिए एक परिवाचिका की व्यवस्था कर दी। परिवाचिका का नाम था वेलन्टीना सेविस्तकोय। वह तरुणी विश्वविद्यालय से स्नातिका होकर पहले अध्यापिका बनी, पर बाद में उसे लगा कि उस काम में विकास की अधिक गुंजाइश नहीं है और परिवाचिका का काम उसे अधिक सन्तोष प्रदान करेगा तथा उन्नति का मौका देगा तो वह इस क्षेत्र में आ गई। बड़ी भली और स्नेहशील थी। उसने मुझसे पूछा, "आप

कितने दिन लेनिनग्राड में रहेंगे और क्या-क्या देखना पसन्द करेंगे ?" मैंने कहा, "मेरे पास सिर्फ दो दिन हैं और यहां की लगभग सभी खास-खास चीजें देखना चाहूंगा।" इसपर वह मुस्कराकर बोली, "इतने कम समय में यह कैसे संभव होगा ? मैं पूछती हूं, आखिर आपको जाने की ऐसी जल्दी क्या है ? यहां कुछ दिन ठहरिये और मजे-मजे में सब चीजें देखकर जाइये।"

मैंने कहा, "मैं अपने देश से बहुत दिनों का निकला हूं और घूमते-घूमते थक गया हूं। इसलिए जल्दी में हूं।"

वह बोली, "अच्छी बात है, चलिये, अभी तो दो-चार आस-पास की चीजें देख आवें। आज शाम या कल सवेरे से कार की व्यवस्था कर लेंगे, तब जल्दी हो जायगी।"

मैंने उस बहन का आभार माना और हम लोग घूमने निकल पड़े।

: ३० :

हरमिताज

होटल से रवाना हुए उस समय थोड़ा-थोड़ा पानी पड़ रहा था । उसकी चिन्ता न करके वेलन्टीना मुझे 'हरमिताज' की ओर लेकर चली । 'हरमिताज' के नाम से ऐसा बोध होता है, मानो कि वह कोई धर्म-स्थान हो, पर वास्तव में वह कोई देवालय नहीं है, संग्रहालय है । वहां पहुंचने से पहले ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि देने के विचार से वेलन्टीना ने बताया कि सन् १७०३ से लेकर १९१७ तक लेनिनग्राड का नाम सेंट पीटर के नाम पर सेंट-पीटर्सबर्ग रहा । बाद में सन् १९२४ तक पीट्रोग्राड और फिर रूस के महान् नेता लेनिन के नाम पर लेनिनग्राड पड़ा । सन् १७१२ से सन् १९१८ तक वह रूस की राजधानी रहा, लेकिन रूस के शासकों ने यह अनुभव करके कि वह रूस के उत्तर में पड़ता है, केन्द्र में नहीं है, राजधानी वहां से हटा ली और मास्को में ले आये । नगर का क्षेत्रफल ३२५ वर्ग किलोमीटर है । उसमें आज ५८ पार्क, १८ थियेटर, ५८ सिनेमाघर, ३६० पुल, १०० छोटे-छोटे द्वीप और ४७ नदियां और नहरें हैं । ये सब बातें बताने के बाद उसने किंचित भावुकता से कहा, "आप देखेंगे कि यह नगर कितना प्राचीन है और कितना सुन्दर। हम जिस नदी के किनारे चल रहे हैं, उसका नाम निवा है । देखते हैं, किस शान से यह नदी बहती है और अपनी गरिमा से नगर की शोभा को कितना बढ़ा देती है ! लेकिन"...

इतना कहकर वेलन्टीना चुप हो गई । कुछ ठहरकर फिर बोली, "आप जो कुछ देख रहे हैं, सब नया बना है । बड़ी दुखभरी कहानी है इसके पीछे । नाजी सेनाओं ने तीन महीने तक इस नगर का घेरा डाले रक्खा और किसीको भी अन्दर नहीं आने दिया । रसद न मिलने से लाखों आदमी भूखों मर गये । चारों ओर लाशों के ढेर लग गये ।"

वेलन्टीना का चेहरा उदास हो गया, किन्तु उसी क्षण संभलकर वह बोली,

"यह सब हुआ, पर किसी भी जीवित राष्ट्र की आत्मा कभी नहीं मरती। नाजियों के पराजित होकर हट जाने के पांच वर्ष के भीतर लेनिनग्राड फिर लहलहा उठा। आप ही बताइये, आपको ऐसा लगता है कि कभी यहां बमबारी हुई थी ?"

यह बात चल ही रही थी कि हम 'हरमिताज' पहुंच गये। निवा नदी के तट पर खड़े भव्य भवन की ओर संकेत करके बेलन्टीना ने कहा, "यही है हरमिताज। किसी जमाने में यह जार का शीतकालीन प्रासाद था। कैथराइन द्वितीय ने इसका सन् १७६२ में निर्माण कराया था। इसके बनानेवाले का नाम है रास्ट्रेली, जो इटली का निवासी था। १९१७ की क्रांति के बाद से इसे संग्रहालय बना दिया गया और अब यह कला का एक विशाल केन्द्र है। इसके पांच मुख्य विभाग हैं—१. प्राचीन, २. रूसी, ३. पूर्वी, ४. पश्चिमी और ५. इटालियन तथा ग्रीस। हमारे पास समय कम है, फिर भी जितना देख सकते हैं, देखने की कोशिश करेंगे।"

कला-भवन में प्रवेश करते ही कई कमरे ऐसे मिले, जिनमें रूस की विजय की वस्तुएं, जनरलों की पोशाकें आदि रक्खी थीं। उनके बाद वह कमरा आया, जिसमें रूस का एक विशाल नक्शा है। उस नक्शे पर किसी विदेशी प्रदर्शिनी में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। उसकी विशेषता यह है कि विभिन्न रंगों के पत्थरों को जोड़कर उसका निर्माण किया गया है। वर्तमान सोवियत संघ की पन्द्रह रिपब्लिकें और उनकी राजधानियां उसमें दिखाई गई हैं। अपने ढंग की वह बहुत ही आकर्षक चीज़ है।

बाद के एक कमरे में एक घड़ी दर्शकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करती है। जब उसमें घंटा बजता है तो उसपर बना मोर पंख फैलाता है, मुर्गा बांग देता है और उल्लू खट-खट करता है। घड़ी बड़ी विचित्र-सी है। उसके ऊपर मोर है, दाईं ओर मुर्गा और बाईं ओर उल्लू। यह घड़ी सन् १८७४ में कुक्स नामक अंग्रेज ने बनाई थी और काउण्ट पोटमकिम ने उसे केथराइन द्वितीय को भेंट किया था। घड़ी के ऊपर सोने का काम हो रहा है।

इटली का संग्रहालय बड़ा मूल्यवान तथा सुन्दर लगा। उसकी सामग्री ३२ कक्षों में है। १५वीं शताब्दी के फ्रेंजलिका नामक कलाविद की 'मेडोना तथा शिशु' बड़ी ही भावपूर्ण कृति है। लिनार्डो ड विंसी की मौलिक कृतियां 'मेडोना विद चाइल्ड' (मेडोना तथा शिशु) और 'मेडोना विद फ्लावर' (मेडोना पुष्पोंसहित) इतनी सुन्दर हैं कि कोई भी व्यक्ति उन्हें बिना देखे आगे नहीं बढ़ सकता। सत्तरह वर्ष के

युवक कलाकार रफेलो की दो रचनाएं 'मेडोना तथा शिशु' और 'बेदाढ़ी का जोसेफ' अत्यन्त भावपूर्ण हैं। उन्हींके बीच माइकेल एंजिलो की 'क्राउचिंग बॉय' अद्भुत मूर्त्ति है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों वह बालक अभी बोल उठेगा।

टिशियन, वेरोनेज, टियपोलो, मोरेलियो आदि कलाकारों के पृथक्-पृथक् कक्ष हैं। टियपोलो के चित्र बहुत बड़े आकार के हैं। एल ग्रेको का 'अपोसिल्स—पीटर एन्ड पाल' बड़ी ही मूल्यवान कृति है।

डच कलाकार रेमब्रेंड्ट के, जो फ्रांस में रहे थे, २५ मौलिक चित्र हैं। उनकी अपनी पत्नी का चित्र तो सुन्दर है ही, 'सलीब से यीशु का अवतरण' अपने ढंग की अनोखी रचना है। दो और कृतियां बड़ी ही हृदयस्पर्शी हैं। एक है 'एन ओल्ड मेन इन दी रेड' और दूसरी है 'दी रिटर्न ऑव दी प्रॉडीगल सन'। दूसरे चित्र में दिखाया गया है कि एक लड़का, जो कि घर से निकल गया था, बहुत दिनों बाद लौटकर घर आता है तो देखता क्या है कि उसका बाप उसके पीछे अन्धा हो गया है। वह पिता के पैरों के पास बड़े संतप्त हृदय से बैठ जाता है और पिता प्यार और ममता से उसकी पीठ पर हाथ फिराता है। निकट ही परिवार के अन्य सदस्य खड़े हैं।

*फ्रांस होल्स के चित्र भी देखने योग्य हैं। डच चित्रकार हेडा के जलपान-*सम्बन्धी चित्र बहुत ही मनोरंजक हैं। उससे आगे के कक्ष में रूबन्स की ५० कृतियां हैं। वान डिक का अपना स्वतन्त्र कमरा है। उसमें पशु-पक्षियों से लेकर कीड़े-मकोड़े, सांप आदि सब दिखाये गए हैं। कोई-कोई चित्र तो बड़ा ही भयंकर और बीभत्स है।

फ्रांसीसी चित्रों तथा स्थापत्य-कला के प्रदर्शन में ४५ कमरों का उपयोग हुआ है। वैसे तो बहुत-सी चीजें हैं, जो इन कक्षों की ओर पर्यटक का ध्यान खींचती हैं, लेकिन लैनन की यथार्थवादी कला, पुस्सेन के नीले रंग तथा क्लाड लौरन के प्राकृतिक दृश्य विशेष रूप से देखने योग्य हैं। क्लाड महोदय ने तो अपने चित्रों को केवल रात और दिन से ही संबंधित रक्खा है। प्रभात, मध्याह्न, संध्या और अर्द्धरात्रि के ऐसे-ऐसे सुन्दर दृश्य दिखाये हैं कि निगाह उनपर से हटाये नहीं हटती। रंगों की योजना आंखों को बड़ी सुहावनी लगती है। प्रकृति के साथ यदि उन्होंने पुरुष को न जोड़ा होता तो शायद उनकी कला एकांगी रह जाती और उसका प्रभाव मानव-मन पर कुछ और ही प्रकार का पड़ता। अतः प्रत्येक चित्र के अग्र भाग में पुरुषों की आकृतियां अंकित करके उन्होंने मानव और प्रकृति का

नाता जोड़ दिया है और इस प्रकार अपनी कृतियों को बड़ा ही भावपूर्ण और सजीव बना दिया है।

एक कक्ष में फ्रांसीसी कलाविद गुदोन द्वारा निर्मित वाल्तेयर की मूर्ति बड़ी प्यारी है। संगमरमर की है। उसकी खूबी उसके अंगों की सूक्ष्म अभिव्यंजना में तो है ही, चेहरे की भाव-भंगिमा को बारीकी से दिखाने में शिल्पी को गजब की सफलता मिली है।

जिसका प्रभाव फ्रांस के इतिहास पर वर्षों तक रहा और जिसने संसार को अपनी प्रतिभा, साहस और शौर्य से चमत्कृत कर दिया, उस नेपोलियन का चित्र फ्रांस के इस संग्रह में न होता, यह कैसे सम्भव था। ग्रो द्वारा निर्मित नेपोलियन का और जैरार द्वारा अंकित नेपोलियन की पत्नी जोजेफाइन का चित्र फ्रांसीसी कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

क्लॉड मोने चित्रकला को नया मोड़ देनेवाला कलाकार माना जाता है। उसने आकृतियों के बाह्य रूप की सुडौलता तथा सुनिश्चितता पर अत्यधिक जोर दिये जाने की परम्परा को तोड़कर भावप्रधान चित्रों का निर्माण किया। उसके कई चित्र उस संग्रह में विद्यमान हैं। उनमें आकृतियां स्पष्ट नहीं हैं, न उनकी रेखाओं में कोई अनुपात दिखाई देता है, लेकिन उन मोटी-पतली, आड़ी-तिरछी, बेहिसाब रेखाओं तथा रंगों से कुल मिलाकर जो चित्र बनता है, उसकी प्रभावोत्पादकता दर्शक को चकित कर देती है। क्लॉड मोने के अतिरिक्त वान गाग तथा पाल गागन के कई चित्र भी इस कोटि की कला के सुन्दर नमूने हैं।

फ्रांस के आधुनिक कलाकारों में पिकासो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के चित्रकार हैं। उनकी कला ने अपने देश को ही सुशोभित नहीं किया, अन्य देशों की भी शोभा बढ़ाई है। उनका 'तीन नग्न' शीर्षक चित्र वास्तव में इस संग्रह का अद्भुत चित्र है।

फ्रांस की चित्रकला तथा मूर्ति-कला के साथ-साथ वहां की दस्तकारी की चुनी हुई वस्तुओं के भी अनेक नमूने रक्खे गये हैं। उन्हें देखने से पता चलता है कि फ्रांस के लोग केवल कल्पना-कानन अथवा कला के नन्दन-वन में ही विचरण करना नहीं जानते, जीवन की ठोस वास्तविकताओं के प्रति भी सजग रहते हैं। दस्तकारी की कई चीजें उनके हस्तकौशल और व्यावहारिक बुद्धि के अच्छे नमूने हैं।

रूसी कला-कक्षों में पुश्किन का संग्रह सूक्ष्म अध्ययन की अपेक्षा रखता है। चित्रों के अतिरिक्त उनकी अन्य अनेक वस्तुएं उनके संग्रह में रक्खी गई हैं। पुश्किन

की स्त्री बड़ी रूपवती थी। उनके दो चित्र वहां विद्यमान हैं। उन्हें देखकर लगता है कि पति के साथ उस स्त्री को आइने में अपनी छवि देखने पर निश्चय ही अपने रूप पर गर्व अनुभव होता होगा।

चीनी कला का संग्रह अपने देश के गौरव के अनुरूप ही कहा जा सकता है। उसमें सुरुचिपूर्ण चित्र तो है ही, विविध प्रकार के चीनी वर्तन भी हैं। रेशम पर तूलिका का चमत्कार चीनी कला की अपनी देन है। बड़े ही संयत रंगों से वनस्पति (विशेषकर वेणु-कुंजों), पक्षियों तथा पुष्पों को वाणी प्रदान करने में चीन अन्य देशों से प्राय: बाजी मार ले जाता है।

इस कला-भवन का सबसे दरिद्र संग्रह है भारत का। हमारे देश के विभिन्न भागों में कला तथा दस्तकारी की बड़ी ही सुन्दर वस्तुएं मिलती हैं, लेकिन उनका प्रदर्शन वहां देखने में नहीं आता। जो चित्र वहां लगे हैं, उनसे कहीं अधिक आकर्षक और सुन्दर चित्र हमारे किसी भी संग्रहालय में पाये जा सकते हैं। काश्मीर की लकड़ी की, मैसूर के चंदन और हाथी-दांत की, उड़ीसा के चांदी के तार की वस्तुओं के बिना कोई भी संग्रह कैसे पूर्ण हो सकता है? भारतीय कला में अजंता के चित्रों को स्थान न दें तो कला अपंग दिखाई देगी। काश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य की सारे संसार में ख्याति है। स्वभावत: कोई भी भारत-प्रेमी दर्शक काश्मीर की सुषमा का दर्शन करानेवाले चित्रों को खोजेगा। संग्रहालय का मौजूदा भण्डार बड़ा ही असन्तोषजनक है। कुछ मामूली-से चित्र तथा विभिन्न भागों से बेहिसाब इकट्ठी की हुई चीजें भारत की कला, कारीगरी एवं संस्कृति के साथ न्याय नहीं करतीं।

जिस समय मैं भारतीय कला-कक्ष को देख रहा था, बहुत-से विदेशी दर्शक वहां एकत्र हो गये और मुझसे भांति-भांति के सवाल करने लगे। उनमें कुछ ऐसे रूसी भा थे, जो भारतीय विभाग में रखी गांधीजी की मूर्त्ति को नहीं पहचानते थे। कुछको उनके जीवन के बारे में तनिक भी जानकारी नहीं थी। वेलन्टीना की सहायता से मैंने उन लोगों का समाधान करने का प्रयत्न किया। बाद में वेलन्टीना कहने लगी, "आपके साथ आने का सबसे अधिक लाभ तो मुझे हुआ। भारत के बारे में बहुत-सी नई बातें मालूम हो गईं।"

कला-भवन को देखने में चार घंटे लग गये। वास्तव में वह इतना विशाल है कि बारीकी से उसका निरीक्षण करने के लिए कई दिन चाहिए। विभिन्न देशों की उत्कृष्ट कला का इतना विस्तृत और मूल्यवान संग्रह अधिकारियों के कला-प्रेम

का द्योतक है।

कला-भवन के पिछवाड़े पैलेस-चौक है । जिस प्रकार मास्को में लाल-चौक का महत्व और उपयोग है, उसी प्रकार इस चौक का यहां है। सार्वजनिक समारोह इसी चौक में होते हैं। काफी लम्बा-चौड़ा है। उसके बीच में ४७ मीटर ऊंचा और ६ सौ टन भारी एक स्तम्भ है, जिसका निर्माण नेपोलियन पर विजय प्राप्त करने की स्मृति में सन् १८१२ में हुआ था। वह 'एलेक्जेंडर-स्तम्भ' के नाम से पुकारा जाता है। उसके एक ओर चहारदीवारी पर एक रथ तथा 'विजयी गुंबद' बनी हुई है। वैसे तो इस चौक के साथ रूस की अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं जुड़ी हुई हैं, लेकिन उसे देखते ही विशेष रूप से स्मरण होता है सन् १९०५ के रक्तरंजित रविवार का और १९१७ की महान् अक्तूबर-क्रांति का। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों ही क्रांतियों ने रूस के इतिहास को नया मोड़ दिया।

: ३१ :

अन्य दर्शनीय स्थल

संत इसाक का गिरजाघर

कला-भवन और पैलेस चौक को देखकर संत इसाक का गिरजा देखने गये। उस समय आकाश में बादल आंख-मिचौनी कर रहे थे। प्रकृति की इस छटा के बीच गिरजे का भवन बड़ा मोहक लग रहा था। वेलन्टीना ने बताया कि इस गिरजे का निर्माण मोफरान नामक शिल्पी ने किया था और उसके बनाने में चालीस वर्ष लगे। उसमें दीवारों पर विभिन्न रंगों से चित्र बनाये गए थे; लेकिन अब जब कि वहां प्राचीन स्थानों का पुनर्निर्माण हो रहा है, इस गिरजे का भी रूस के कलाविदों ने कायाकल्प कर डाला। रंगों का स्थान हरे मलकाइट ने ले लिया। आज उसकी शान ही निराली है। लेकिन अब उस गिरजे से प्रार्थना के स्वर नहीं उठते। अब तो वह संग्रहालय है। उसकी वेदिका और द्वार बड़े ही कलापूर्ण हैं। द्वार के ऊपर अनेक धर्माचार्यों के चित्र हैं। गिरजे की ऊंचाई १०२ मीटर है और उसमें एक ही पत्थर के बने ११२ विशाल स्तम्भ हैं, जिनमें से प्रत्येक का वजन १२० टन है। मुख्य द्वार कारीगरी की दृष्टि से बड़ा समृद्ध है। उसकी किवाड़ों का वजन ४६ टन है।

गिरजे का सबसे बड़ा आकर्षण उसकी छत की चित्रकारी है, जो अत्यन्त सुरुचिपूर्ण है। कहते हैं, गिरजे के निर्माण में ४६ लाख मजदूरों ने योग दिया।

जब हम बाहर आने लगे तो वेलन्टीना बोली, "आप बड़े अच्छे मौके पर आये हैं। पुनरुद्धार होने के कारण यह गिरजा अबतक दर्शकों के लिए बन्द था। दो महीने पहले आप आये होते तो इसे देखने से वंचित रह जाते।"

पीटर की मूर्ति

गिरजे के सामने जार पीटर प्रथम की विशाल मूर्त्ति है। वह एक तेजस्वी घोड़े पर सवार हैं। घोड़ा आगे के दो पैरों को उठाये, पिछले दो पैरों के सुमों पर टिका

है। उसके और पीटर के चेहरों पर कभी न भूलनेवाले भाव झलकते हैं। वेलन्टीना कहने लगी, "नाजी आक्रमण के दिनों में बड़ी मुश्किल से इस मूर्त्ति की रक्षा की जा सकी। जिस समय नगर पर बम गिर रहे थे, अन्य कला-कृतियों की भांति इस मूर्त्ति को रेत के बोरों और लकड़ी के तख्तों से ढक दिया गया। यदि ऐसा न किया गया होता तो यह मूर्त्ति सदा के लिए नष्ट हो जाती। ऐसी कलापूर्ण चीजें रोज-रोज थोड़ी तैयार हो पाती हैं!"

मूर्त्ति का सारा भार घोड़े के पिछले दो पैरों के सिरे पर है। देखकर आश्चर्य होता है कि इतना वजन जरा-से सहारे से कैसे टिका है!

प्रकाश-स्तंभ

अगले दिन वेलन्टीना ने मोटर की व्यवस्था कर ली और हम लोग नाश्ता करके सबेरे ही निकल पड़े। सारे शहर का चक्कर लगाया। पूरा नगर वास्तव में ऐतिहासिक स्मृतियों और स्मारकों से भरा पड़ा है। सबसे पहले निवा नदी के तट पर वह स्थान देखा, जो किसी जमाने में प्रकाश-स्तम्भ का काम देता था। इमारत अब भी वही है, पर उसका प्रयोजन बदल गया है। अब वह संग्रहालय है।

दिसम्बर चौक

उसे देखते हुए दिसम्बर-चौक में गये। जार के विरुद्ध सबसे पहला सैनिक विद्रोह इसी चौक में हुआ था। विद्रोह असफल रहा और सारे नेता सूली पर लटका दिये गए।

अरोरा जहाज

चौक से चलकर निवा नदी में खड़े अरोरा जहाज पर पहुंचे। १९१७ की क्रांति के साथ इस जहाज का बड़ा घनिष्ठ संबंध रहा है। जार के प्रासाद पर गोले फेंककर समाजवादी क्रांति का श्रीगणेश इसी जहाज ने किया था।

संत पीटर और पाल का किला

लेनिनग्राड का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है सन्त पीटर और पॉल का किला। निवा नदी के दूसरे तट से जब उसके गिरजे की पीली शिखरें देखी थीं तो वह बड़ा छोटा और मामूली-सा लगा था, लेकिन उसके अन्दर गये तो देखा कि अपने-आप में वह एक बहुत बड़ी वस्ती है। इस किले का निर्माण पीटर महान् की अभिलाषा के फलस्वरूप हुआ था। बड़ी पुरानी इमारत है वह। निकोलस द्वितीय को छोड़कर शेष सब जारों की उसके गिरजे में समाधियां हैं। क्रांति का स्वर फूटा तो यह

विदाई

प्रस्थान

काबुल नगरी

अमानुल्ला की कोठी

काबुल में

पगमान

का

एक कलापूर्ण भवन

मीनार यादगार
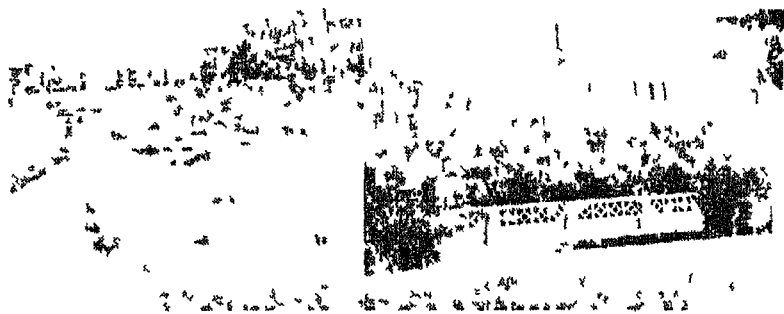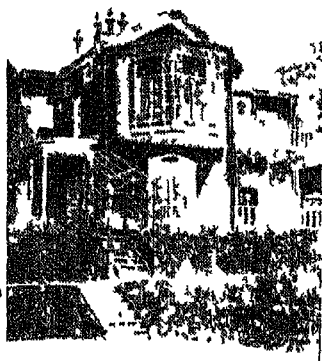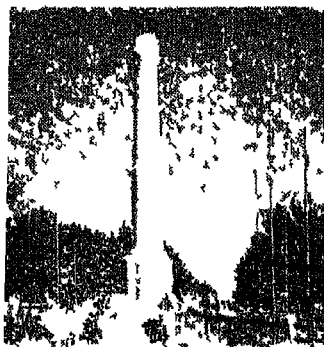
शाही उद्यान

ताशकंद में

नगर

का

एक प्रसिद्ध चौक

कपास के मौसम की बहार

उज़बेक

कला

आशखाबाद तुर्कमान नाटक-भवन

स्तालिनग्राद का एक दृश्य

लेनिन की समाधि

मास्को में

क्रेमलिन
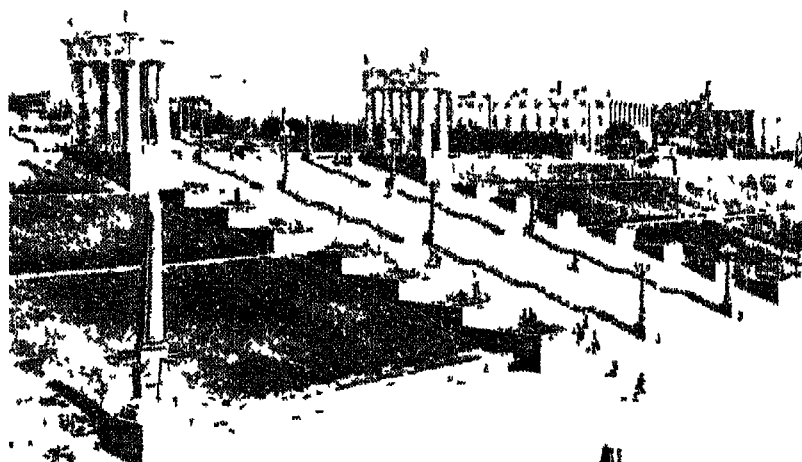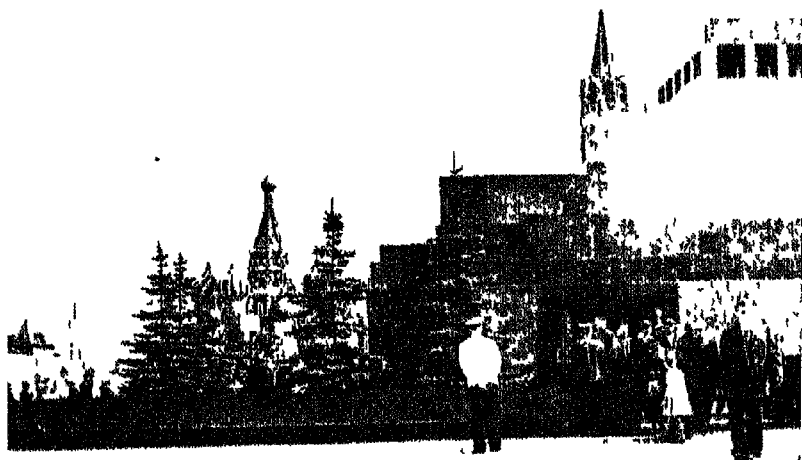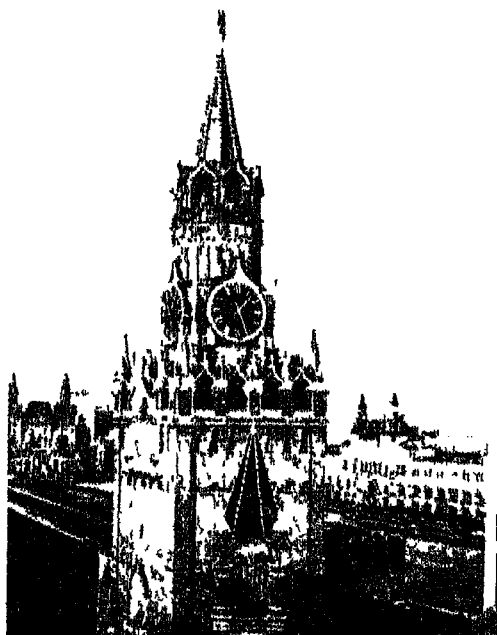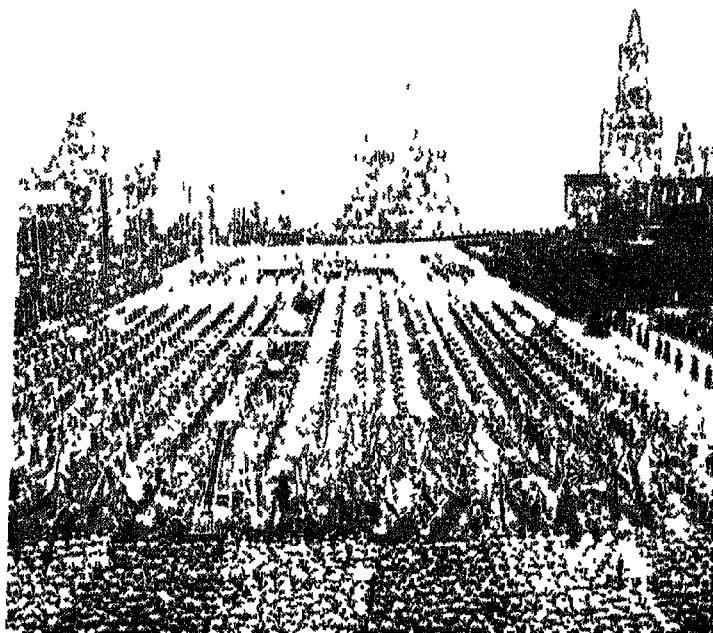
रेड स्क्वायर
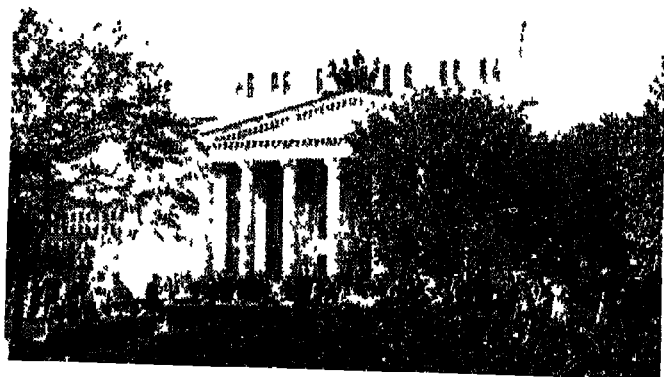
बोल्शाई थियेटर
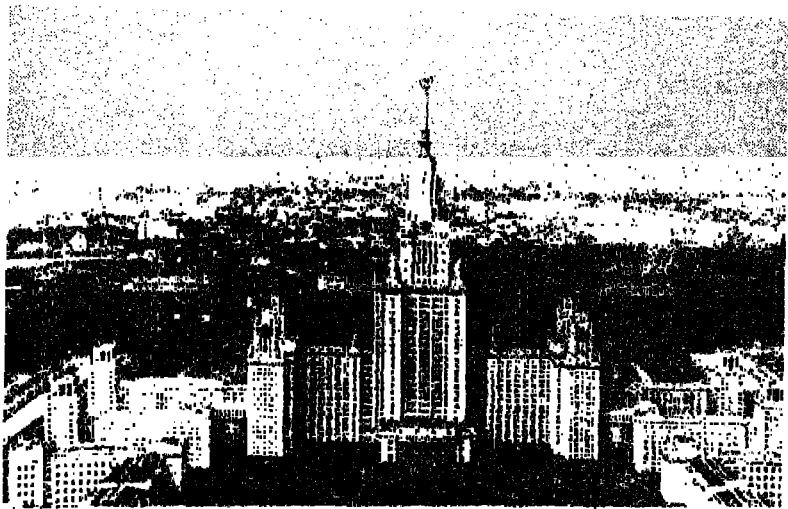
मास्को-विश्वविद्यालय

लेनिन पुस्तकालय
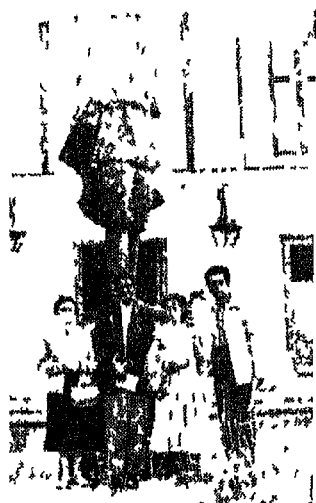
गोर्की-संग्रहालय
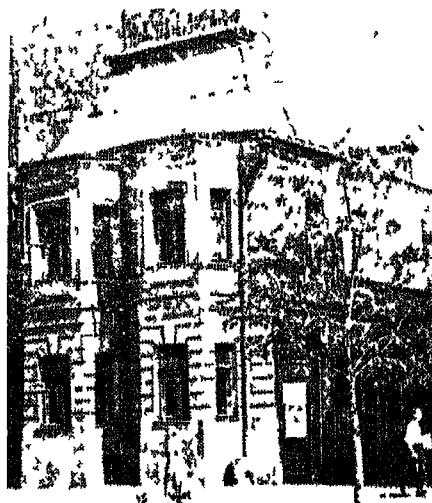
साहित्य-संग्रहालय

[illegible]
कला-भवन
का
एक महान् चित्र
(ईसा का आगमन)

पुश्किन-संग्रहालय

प्राच्य-संग्रहालय
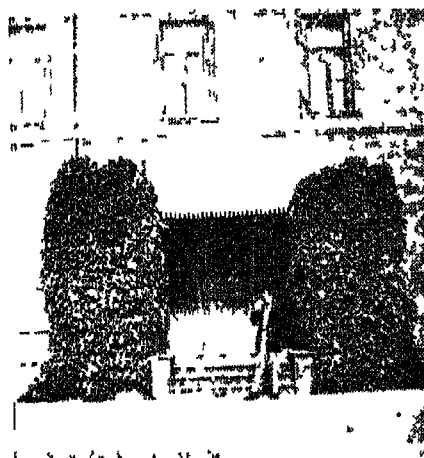
कृषि तथा उद्योग प्रदर्शिनी

एक सामूहिक फार्म का क्लब

प्रदर्शिनी का शोभा-स्थल

भारतीय दूतावास में स्वाधीनता-दिवस-महोत्सव
(राजदूत श्री मेनन भाषण करते हुए)
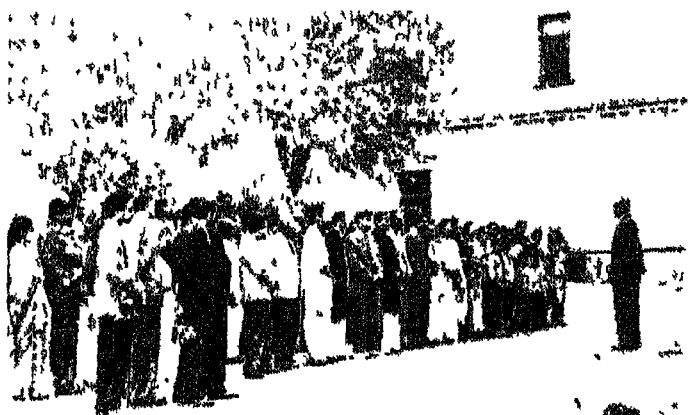
युवक-समारोह में कुछ भारतीय प्रतिनिधि

समारोह के अवसर पर नृत्य के दो दृश्य
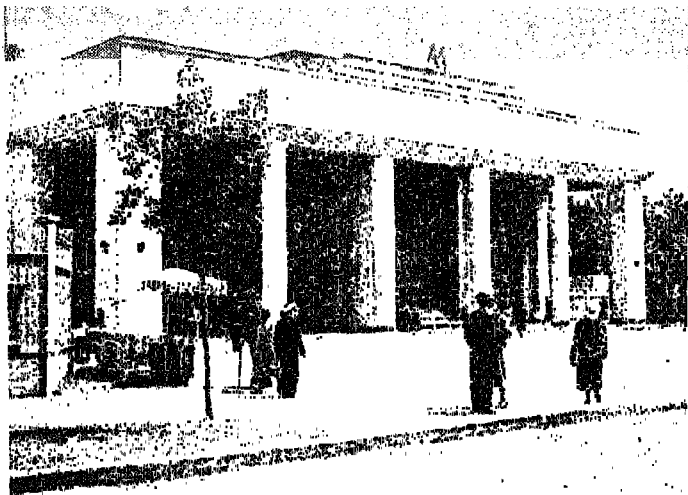
सुरंग की रेल 'मीत्रो' का स्टेशन

जमीन के अंदर रेल का प्लेटफार्म
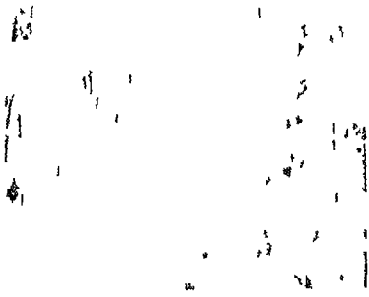
किंडरगार्टन में भोजनोपरांत बाल-विश्राम

देहात के घर में खेलकूद

प्रतियोगिता

पढ़ाई

पिकनिक

टाल्स्टाय की समाधि
(यास्नाया पोलियाना में)
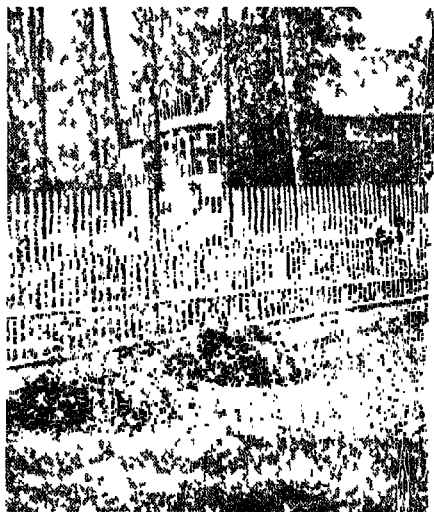
कलाकारों की बस्ती
(मास्को से कुछ दूर सुरम्य स्थान पर)

इस्त्रा में
(बाईं ओर से)
लेखक,
इलिया एहरनबुर्ग,
श्रीमती कमला रत्नम्
तथा
श्री रत्नम्
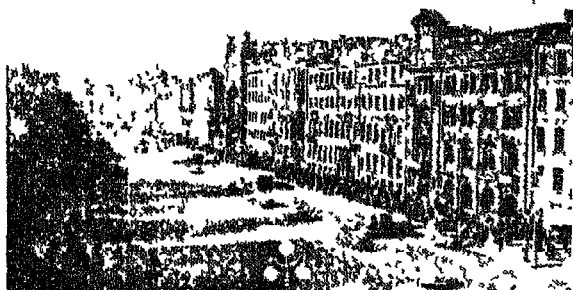
हरमिताज
(निवा नदी के तट पर
ज़ार का
शीतकालीन प्रासाद)

अक्तूबर-क्रांति
का
केन्द्र

दिसम्बर-चौक

सन्त इसाक
का
गिरजाघर
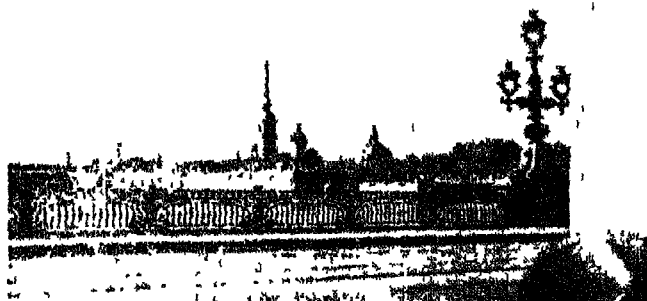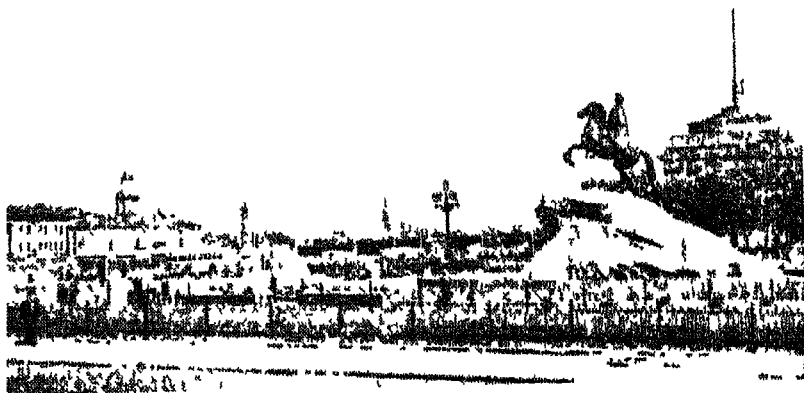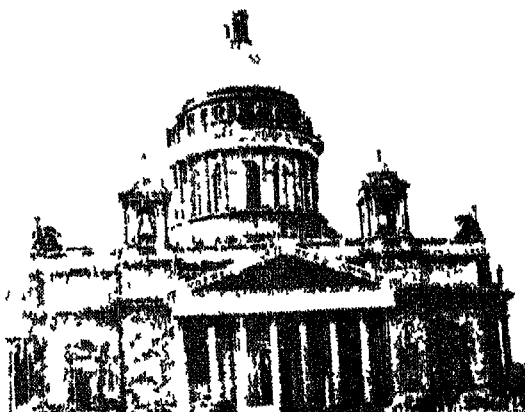
किला बन्दीगृह बना दिया गया और सारे प्रगतिशील नेता तथा अन्य व्यक्ति उसीमें बन्द करके रक्खे गए। रूस के सुप्रसिद्ध अराजकतावादी क्रोपाटकिन भी यहां बंदी रहे थे। सन् १८७४ में क्रोपाटकिन ने इस जेल में प्रवेश करते समय का बड़ा ही रोमांचकारी वर्णन करते हुए अपने आत्म-चरित में लिखा है :

"मैं एक अन्धकारमय रास्ते में से जाया गया। हथियारबन्द सन्तरी वहां टहल रहे थे। मैं एक कोठरी में बन्द कर दिया गया और उसका जबरदस्त फाटक लगाकर उसपर ताला डाल दिया गया। यह वही किलारूपी जेल थी, जिसमें पिछले दोसौ वर्ष से रूस की सर्वोत्तम शक्ति का विनाश किया गया था और जिसका नाम सेण्ट-पीटर्सबर्ग में डर के मारे दबी जबान से लिया जाता है। इसी कारागार में रूसी जार प्रथम पीटर ने अपने लड़के एलेक्सिस को घोर यातनाएं दी थीं और फिर उसे अपने हाथ से मार डाला था। यहीं राजकुमारी ताराकानोवा एक कोठरी में रक्खी गई थी और जब उसमें पानी भर आया तो, उसके चूहे अपनी जान बचाने के लिए उस राजकुमारी के शरीर पर चढ़ गये थे। यहींपर भयंकर मिनिच ने अपने शत्रुओं पर अत्याचार किये थे। यहीं द्वितीय कैथेराइन ने अपने दुश्मनों को जिन्दा गड़वा दिया था — उन लोगों को, जिन्होंने उसके अपने पति की हत्या का विरोध किया था। प्रथम पीटर के शासन-काल से १७० वर्ष तक यह जेलखाना हत्या और अत्याचारों का अड्डा बना रहा था। यहां कितने ही आदमी जिन्दा दफना दिये गए थे या धीरे-धीरे मृत्यु के घाट उतार दिये गए थे, अथवा नमी और अन्धकार से परिपूर्ण इन कालकोठरियों में वे पागल हो गये थे। यहींपर दिसम्बरिस्ट लोगों को, जिन्होंने रूस में सर्वप्रथम प्रजातंत्र का झण्डा फहराने का प्रयत्न किया था, पहले-पहल शहादत का मजा चखाया गया था। यहीं डोस्टोवस्की, बाकूनिन, पिसारेव आदि को कारागार का दण्ड भोगना पड़ा था। इसी जेल में तत्कालीन सर्वोत्तम साहित्य-सेवी ठूंसे गए थे। यहींपर काराकोजोफ पर जुल्म किये गए थे और उन्हें फांसी का दण्ड दिया गया था।"

आगे फिर वह कहते हैं, "इन सभीकी मूर्तियां मेरी कल्पना के चित्रपट पर खिंच गई। लेकिन मेरा ध्यान खासतौर पर अटका रहा बाकूनिन के चरित्र पर, जो आस्ट्रिया की एक जेल में दो वर्ष तक दीवार से जंजीर बांधकर रक्खे गए थे और फिर आस्ट्रियन सरकार ने जिन्हें रूस के जार निकोलस को सौंप दिया गया था और जिन्हें उसने ६ वर्ष तक इसी जेल में डाले रक्खा था। जार के मरने के बाद ही वह छूट

सके। लेकिन बाकूनिन ने धैर्य और साहस के साथ इन यातनाओं को सहा और जब वह जेल से बाहर निकले तब अपने स्वतन्त्र साथियों से अधिक शक्तिशाली और ताजे दिखाई दिये। मैंने सोचा कि जब बाकूनिन ने अपने कठोर जीवन के ६ वर्ष यहां सफलतापूर्वक काट दिये, तब मैं भी काट दूंगा। मैं यहां मरूंगा नहीं।"

रूस के सुविख्यात लेखक गोर्की ने यहीं अपना बंदी जीवन व्यतीत किया। लेनिन के बड़े भाई भी इसीमें रहे।

किले में बहुत-से भवन हैं, लेकिन उनमें गिरजे की इमारत सबसे अधिक शानदार है। कला और स्थापत्य का वह सुन्दर नमूना है। उसके अन्दर दायें पार्श्व में पीटर महान् की समाधि है, उसके बाद अन्य जारों तथा जारीनाओं की। गिरजे की ऊंचाई १२२ मीटर है। उसकी अब फिर से मरम्मत हो गई है। उसके चित्र बड़े ही सुन्दर हैं। वेदिका तो बहुत ही भव्य है। उसपर मनोहारी चित्रकारी हो रही है।

मस्जिद

किला देखकर बाहर आये तो घूमते हुए एक इमारत ने अचानक मेरा ध्यान आकर्षित कर लिया। वह मस्जिद थी। वेलन्टीना ने बताया कि लेनिनग्राड में १४ रूसी गिरजे हैं, १ सिनेगाग, १ मस्जिद, १ बेप्टिस्ट और १ कैथोलिक गिरजा। रविवार के दिन गिरजों में खूब भीड़ होती है और जुमे के दिन मस्जिद में बड़ी चहल-पहल रहती है।

स्टेडियम

नगर का खेल-कूद का मैदान शहर से ५-७ मील दूर है। उसे देखने की बहुत उत्सुकता नहीं थी। पर वेलन्टीना नहीं मानी। रास्ते में एक विशाल जलराशि की ओर संकेत करके वेलन्टीना ने कहा, "यह फिनलैण्ड की खाड़ी है। हेलसिंकी यहां से कुल ३७० किलोमीटर है।" स्टेडियम पहुंचें कि उससे पहले ही हमारी कार रोक दी गई। मैंने पूछा, क्या बात है?" वेलन्टीना ने जवाब दिया, "यहां पास दिखाना होता है। बिना पास के स्टेडियम नहीं जा सकते।" वेलन्टीना पहले ही पास बनवा लाई थी, इसलिए हमें कोई कठिनाई नहीं हुई। आगे जाकर कार से उतर पड़े और पैदल स्टेडियम में प्रविष्ट हुए। उसके अंदर के लम्बे-चौड़े घेरे को देखकर अनुमान हुआ कि रूस के निवासी खेल-कूद के बहुत ही शौकीन हैं। बैठने की व्यवस्था सुविधा-जनक है। इस स्टेडियम का निर्माण सन् १९५१ में हुआ था। वेलन्टीना ने बताया कि कई लाख व्यक्तियों के बैठने का इसमें स्थान है। रूस के महान् क्रांतिकारी कीरोव

के नाम पर उसका नामकरण किया गया है। आये-दिन उसमें खेल होते रहते हैं। मुझे देखकर अचरज हुआ। इन लोगों के अत्यधिक व्यस्त जीवन में लोग खेल-कूद के लिए इतनी रुचि और इतना समय कैसे निकाल पाते हैं! इसका कारण शायद यह है कि वे 'काम के समय काम' और 'खेल के समय खेल' के सिद्धान्त को मानते हैं। जब काम के घंटे होते हैं तो वे काम में इतने जुटते हैं कि और सबकुछ भूल जाते हैं। खेल का समय आता है तो वे उसमें ऐसे लीन हो जाते हैं, मानो काम से उनको कोई सरोकार ही नहीं है। इससे काम को किसी प्रकार की हानि पहुंचती हो, ऐसा नहीं है, बल्कि उल्टे उनकी कार्य-क्षमता में वृद्धि होती है।

विश्वविद्यालय

लेनिनग्राड का विश्वविद्यालय रूस के अच्छे विश्वविद्यालयों में से है। उसमें १३ फैकल्टी हैं और १४००० छात्र-छात्राएं पढ़ते हैं। ४४ इंस्टीट्यूट, यानी कालेज इसके अलावा हैं, जिनमें लगभग १२ लाख विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं। विश्वविद्यालय में उच्च वर्गों की तो पढ़ाई होती ही है, अन्य भाषाओं का भी अध्ययन कराया जाता है। विदेशी भाषाओं में हिन्दी को प्रमुख स्थान है, जो स्वाभाविक है। भारत के साथ रूस के संबंधों को स्थायित्व देने के लिए भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिन्दी का ज्ञान आवश्यक है। यही कारण है कि लेनिनग्राड में ही नहीं, रूस के अन्य नगरों में भी हिन्दी के अध्ययन को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया जा रहा है। दूसरे, हमें यह भी लगा कि जर्मन विद्वानों की भांति रूस में भी ऐसे बहुत-से स्त्री-पुरुष हैं, जो अनुसंधान में विशेष रुचि रखते हैं। वे विभिन्न भाषाओं का ज्ञान इसलिए अर्जित करते हैं कि उन भाषाओं के साहित्य का मूल रूप में रसास्वादन कर सकें। उनकी इस जिज्ञासा को विश्वविद्यालय तथा कालेज और अधिक प्रोत्साहन देते हैं। लेनिनग्राड विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापन का कार्य वहां के निवासियों द्वारा होता है।

विश्वविद्यालय की शानदार इमारतें निवा नदी के पार बाईं ओर को हैं। लेनिन इसी विश्वविद्यालय के छात्र रहे थे।

नगर की प्राकृतिक शोभा

सारे शहर का चक्कर लगाने पर लगा कि लेनिनग्राड नगरी भले ही मास्को जैसी विशाल न हो, पर उसकी प्राकृतिक शोभा निराली है। निवा नदी और फिनलैण्ड की खाड़ी ने उसे ऐसा सुन्दर रूप दिया है कि दर्शक का मन उसपर

मुग्ध हुए बिना नहीं रहता। यदि आपको नगर की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि मालूम हो जाय तब तो 'सोने में सुहागे' की कहावत चरितार्थ हो जाती है। वस्तुतः लेनिन-ग्राड में प्राकृतिक सुषमा और ऐतिहासिकता का बड़ा सुन्दर समन्वय हुआ है।

नगर बड़ा ही साफ-सुथरा है और वहां के निवासी बहुत ही स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई दिये। वहां के नागरिकों को अपने उस शहर पर गर्व करने का पूरा अवसर है। नाजी सेनाओं के भयंकर आक्रमण का वहां के वीर नागरिकों ने अपनी पूरी शक्ति से मुकाबला किया और उन्हें नगर में पैर नहीं रखने दिया।

एक रोचक प्रसंग

पिछली शाम को जोर की वर्षा होने के कारण मैं बाहर न जाकर होटल में घूमता रहा। वेलन्टीना साथ थी। उसने बताया कि यह होटल पहले ब्रिटिश होटल था और इसमें धनिक व्यवसायी और राजदूत ठहरा करते थे, लेकिन अब यह लेनिनग्राड सोवियत के हाथ में है। इसकी साज-सज्जा आज भी पहले जैसी है और बाहर से आनेवाले खास-खास लोग ही यहां पर ठहराये जाते हैं। पानी थोड़ा थम जाने पर वेलन्टीना तो चली गई। मैंने सोचा, लाओ, मास्को सोमसुन्दरम से बात कर लूं। यह सोचकर मैं नीचे आफिस में गया और मास्को फोन मिलाने को कहा। यह भी कह दिया कि अगर सोमसुंदरम से वहां से कोई उत्तर न मिले तो मेवालाल जायसवाल से मिला दें। दोनों फोन नम्बर देकर अपने कमरे में चला गया। पांच मिनट हुए होंगे कि घंटी बजी। मेरे रिसीवर उठाते ही किसीने कहा—मास्को बात कीजिये। सोमसुन्दरम से बात हुई। उसके बाद जैसे ही मैंने रिसीवर रक्खा कि फिर घंटी बजी। रिसीवर उठाया, इस बार जायसवाल बोल रहे थे। उनसे बातें करके मैंने फोन देनेवाली बहन से कहा, "यह तुमने क्या किया? मैंने दोनों नम्बर नहीं मांगे थे। मैंने तो यह कहा था कि अगर पहला न मिले तो दूसरा दें।" वह बहन सहम गई। बाद में जब मैं फोन का बिल चुकाने गया तो वह बोलीं, "आप एक कॉल का दें। मेरी गलती थी, इसलिए एक का मैं अपने पास से भरूंगी।" मैंने आग्रह करके पूरा बिल चुका दिया, पर वह सदाशयी बहन इस घटना को भूली नहीं और उसका एवज दूसरे रूप में देकर ही मानीं। जब मैं लेनिनग्राड से जाने को था, उन्होंने हवाई अड्डे तक कार की व्यवस्था करादी। उनकी जरा-सी चूक से मेरे कोई ७-७॥ रूबल अधिक लगे थे, लेकिन उन्होंने ३५-४० रूबल का मुझे फायदा करा दिया।

: ३२ :

ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट

मास्को में मेरे मित्रों ने, विशेषकर श्रीमती कमला रत्नम् ने, बड़ा आग्रह किया था कि लेनिनग्राड में दो चीजें जरूर देखना। एक तो हरमिताज, दूसरी ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट। हरमिताज देख चुकने के बाद मैंने ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट को देखने की व्यवस्था करने के लिए होटल के सूचना-विभाग से कहा। उन्होंने अधिकारियों को फोन करके समय निश्चित करा दिया। वेलन्टीना के साथ कार से मैं वहां पहुंचा। इन्स्टीट्यूट हरमिताज (कला-भवन) के निकट ही है। अन्दर सूचना भिजवाने पर थोड़ी देर में एक युवक बाहर आये और भारतीय पद्धति से हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए बोले, "नमस्कार, यशपालजी। आइये। मेरा नाम जोग्राफ़ है। मुझे बड़ी खुशी है कि आप हमारे यहां पधारे।"

युवक ने यह सब हिन्दी में कहा। मैंने देखा कि न केवल उनका उच्चारण ही साफ और शुद्ध है, अपितु उनके बोलने में आत्म-विश्वास भी है। मैंने प्रत्युत्तर में नमस्कार करते हुए कहा, "आप तो हिन्दी खूब बोल लेते हैं!"

मेरे इतना कहते ही उनके चेहरे पर मुस्कराहट दौड़ गई। शिष्टाचार दिखाते हुए बोले, "जीहां, थोड़ी-थोड़ी बोल तो लेता हूं। पर हिन्दी से ज्यादा उर्दू बोलने का मुझे अभ्यास है।"

बात करते हुए हम लोग अन्दर पहुंचे। एक बड़ा-सा हॉल था, जिसमें थोड़े-थोड़े फासले पर कई मेजें और उनके इर्द-गिर्द कुर्सियां पड़ी थीं। जोग्राफ़ मुझे और वेलन्टीना को अपनी मेज पर ले गये और बड़े आदर से बिठाते हुए बोले, "आपको शायद पता होगा कि इस संस्था में भारतीय भाषाओं का काम होता है। हम सब इसी हॉल में बैठते हैं। पर इस संस्था का जो रूप आज आप देखते हैं, वह पहले नहीं था। इसकी स्थापना सन् १८१८ में पूर्वी देशों की पांडुलिपियों के संग्रहालय (म्यूजियम ऑव ओरियण्टल मैनस्क्रिप्ट्स) के रूप में हुई थी और शुरू में सिर्फ

अरबी और फारसी की पाण्डुलिपियां इकट्ठी की गई थीं। इस समय उनकी संख्या कोई छः-सातसौ होगी।"

"लेकिन यह तो संस्कृत के अध्ययन का भी एक महान केन्द्र है।" मैंने कहा।

"जीहां, आगे चलकर संस्कृत को भी शामिल कर लिया गया। आज आपको यहां संस्कृत के अनेक दुर्लभ ग्रन्थ मिल जायंगे।"

इतना कहकर वह उठे और उन्होंने संस्कृत-जर्मन-कोश की सात जिल्दें लाकर मेरे सामने रख दीं। बोले, "संस्कृत को शामिल करने के बाद उसका बहुत-सा साहित्य इकट्ठा किया गया। सन् १९३४ में काम का और विस्तार हुआ। हिन्दी, उर्दू, बंगला, पंजाबी, मराठी, तेलगू आदि भाषाओं का भी काम हाथ में लिया गया। संस्कृत और पाली का चल ही रहा था। आपने अकादमीशियन ए० पी० बारान्निकोव का नाम सुना होगा। भारत की आधुनिक भाषाओं के विभाग के वह संस्थापक थे।"

मैंने कहा, "दिल्ली में उनके सुपुत्र पी० ए० बारान्निकोव से प्रायः भेंट होती रहती है। सचमुच प्रो० बारान्निकोव बड़े ही प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। 'रामचरित-मानस' का रूसी में पद्यानुवाद करके उन्होंने बड़ी दूरदर्शिता दिखाई।"

जोग्राफ़ बोले, "आपने यहां से प्रकाशित हिन्दी-रूसी-शब्द-कोश तथा उर्दू-रूसी-शब्द-कोश तो देखे होंगे ?"

दो मोटी-मोटी जिल्दें मेरे सम्मुख रखते हुए वह बोले, "इनका निर्माण और सम्पादन प्रो० बेस्कोवनी ने किया है। और यह देखिये, उर्दू के लेखक मीर अम्मान के 'बाग-बहार' का रूसी अनुवाद। यह अभी-अभी निकला है।"

"इसका अनुवाद किसने किया है ?"

"मैंने।"

उनकी मेज पर 'ग्रंथ-साहब' की प्रति खुली हुई रक्खी थी। उसकी ओर संकेत करते हुए मैंने पूछा, "आप पंजाबी भी जानते हैं ?"

उन्होंने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया, "जी, मैं अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, मराठी और पंजाबी, ये भाषाएं जानता हूं। रूसी तो मेरी मातृभाषा है ही। अब मैं अनुवाद करने के लिए 'ग्रन्थ साहब' का अध्ययन कर रहा हूं।"

मैं जोग्राफ़ के चेहरे की ओर देखता रह गया। कितनी भाषाएं उस युवक ने सीख ली हैं! सीख ही नहीं लीं, उनमें इतनी दक्षता भी प्राप्त कर ली है कि मूल

भाषा के ग्रन्थों का अपनी भाषा में अनुवाद कर सकें !

मैं यह सब सोच ही रहा था कि इतने में एक सज्जन आये। कद उनका मझोला था। सूट पहने हुए थे। असाधारण स्फूर्ति थी उनमें। चेहरे के गाम्भीर्य से लगता था कि वह कोई विद्वान् पुरुष हैं। जोग्राफ़ ने खड़े होकर उनका स्वागत किया और परिचय कराते हुए बोले, "आप प्रो० वी० आई० कल्यानोव हैं।"

उनका विस्तृत परिचय मुझे श्रीमती कमला रत्नम् ने मास्को में दी थी। यह भी बताया था कि वह बड़ी सुन्दर संस्कृत लिखते हैं और धाराप्रवाह बोलते हैं। मैंने उन्हें प्रणाम किया और कहा, "मैंने यहां आते ही आपके विषय में पूछा था, लेकिन मालूम हुआ कि आज छुट्टी है। आप विश्वविद्यालय में नहीं होंगे और यहां भी आने की सम्भावना नहीं है। श्री जोग्राफ़ ने बताया कि घर पर छुट्टी के दिन भला आप कहां मिलेंगे ! मैं तो निराश हो गया था। अकस्मात् आपके दर्शन से मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है।"

पास ही एक कुर्सी पर वह बैठ गये। मुझे मालूम था कि वह महाभारत के 'आदि पर्व' का अनुवाद रूसी में कर चुके हैं, जो प्रकाशित हो गया है और अब वह 'सभापर्व' का अनुवाद प्रारम्भ करनेवाले हैं। बैठने पर इधर-उधर की चर्चा के बीच मैंने उनसे पूछा, "आपको महाभारत का अनुवाद करने की प्रेरणा क्यों हुई ?"

उन्होंने उत्तर दिया, "इसलिए कि वह भारतीय संस्कृति का विश्वकोश है।"

ये शब्द उन्होंने इतनी आत्मीयता से कहे कि मुझे कमलाजी की कही बात याद आगई। उन्होंने कहा था, "कल्यानोव भारतीय संस्कृति से इतने प्रभावित हैं कि उन्होंने अपना नाम 'कल्याणमित्र' रख लिया है।"

"आप तो भारत हो आये हैं ?" मैंने पूछा।

"जीहां, मैं भारत हो आया हूं और वहां काफी घूमा हूं। कलकत्ते में सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या से मिला। पूना में कई विद्वानों से भेंट हुई। मद्रास और बंगलौर भी गया था। दिल्ली तो जाना ही था। वहां अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क हुआ, पर साहित्यकारों से अधिक मिलना-जुलना नहीं हो सका।"

मैंने कहा, "अब आप दिल्ली पधारिये। वहां के सभी साहित्यकारों से आपका परिचय हो जायगा।"

उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "लेकिन मैं कोई साहित्यकार थोड़े हूं।"

मैंने कहा, "आप साहित्यकार तो हैं ही, साथ ही आपने दो देशों के बीच प्रगाढ़

सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सेतुबन्ध-निर्माण का भी कार्य किया है और कर रहे हैं। रामायण और महाभारत के रूसी-संस्करण उपलब्ध कराकर आप लोगों ने करोड़ों भारतवासियों के हृदय में अपना स्थान बनाने की दिशा में कदम उठाया है।"

इसके उपरान्त हम पुनः इन्स्टीट्यूट की प्रवृत्तियों की चर्चा करने लगे। जोग्राफ़ ने बताया कि बेस्कोवनी अब हिन्दी-साहित्य की चुनी हुई पुस्तकों का अनुवाद कर रहे हैं। उन्होंने प्रेमचन्दजी के 'प्रेमाश्रम' का अनुवाद किया है, और भी बहुत-सी किताबों का कर रहे हैं। सीनियर प्रो० वी० एस० वोरोब्योव-देस्यातोवस्की ने कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' का अनुवाद किया है, जो अगले वर्ष के मध्य तक छप जायगा।"

उन्होंने बताया कि इस समय निम्नलिखित व्यक्ति भारतीय भाषाओं के कार्य में संलग्न हैं :

१. जी० ए० जोग्राफ़ (पंजाबी) २. कुमारी टी० कातेनिना (हिन्दी-मराठी) ३. एस० रूदिन (हिन्दी-बंगला-तेलगू) ४. वी० बालिन (हिन्दी-बंगला) ५. श्रीमती आर० होलेवा (हिन्दी-उर्दू) ६. कुमारी स्वेतेविदोवा (बंगला) ७. श्रीमती नोविकोवा (बंगला)—लेनिनग्राड विश्वविद्यालय में भारतीय विभाग की अध्यक्ष भी यही हैं—८. एरमन (संस्कृत-पाली) ९. श्रीमती तोल्स्ताया (पंजाबी)।

जोग्राफ़ ने बताया कि इस कार्य को गति प्रदान करने में जिन तीन व्यक्तियों के नाम मुख्य रूप से लिये जा सकते हैं, वे हैं, १. स्व० प्रो० बारान्निकोव २. प्रो० बेस्कोवनी और ३. प्रो० काल्यानोव।

इसके उपरान्त विभागीय व्यक्तियों का परिचय कराने के लिए जोग्राफ़ ने उन सबको बुला लिया। जब बंगला-विभाग की संचालिका कुमारी स्वेतेविदोवा का परिचय कराया गया तो प्रो० कल्यानोव ने मुस्कराते हुए कहा, "इनके नाम का, जानते हैं, रूसी में क्या अर्थ है?" मैंने कहा, "नहीं।" वह हँसते हुए बोले, "उसका अर्थ है श्वेतदर्शन। क्यों, यदि इनका नाम श्वेतदर्शना रख दिया जाय तो कितना उपयुक्त होगा!" उनके इस विनोद में हम सबने भाग लिया।

कल्यानोव ने बताया कि हमारे प्रो० श्चेर्बेत्स्कि ने, जो सोवियत संघ की एकादमी ऑव साइंसेज के सदस्य हैं, बौद्ध धर्म का विशेष रूप से अध्ययन किया है और तीन पुस्तकें लिखी हैं, जो 'थ्री सिस्टर्स' (तीन सहोदराएं) के नाम से विख्यात हैं और रूस में बहुत ही लोकप्रिय हैं, १. कन्सेप्ट ऑव बुद्धिज्म। यह पुस्तक

लंदन मे सन् १६२३ मे निकली, २. कन्सेप्ट ऑव बुद्धिस्ट निर्वाण (लेनिनग्राड से १६२७ मे प्रकाशित) ३ बुद्धिस्ट लॉजिक (इसका पहला खड सन् १६३० मे और दूसरा १६३२ मे लेनिनग्राड से निकला)।

कल्यानोव ने जब अपने प्रोफेसर का नाम लिया तो मैं उसे ठीक से समझ नही पाया। मैने कहा, "उसे आप मेरी डायरी मे लिख दीजिये।" उन्होने देवनागरी लिपि मे बड़े सुन्दर और स्पष्ट अक्षरो मे लिखा—"श्रीमदाचार्य श्चेर्बेत्स्कि।" मैने कहा, "श्रीमदाचार्य तो भारतीय संस्कृति का शब्द है।" बोले, "अपने यहा के 'थियोडोर' के लिए मुझे यही शब्द उपयुक्त लगता है और मै इसीका प्रयोग करना पसन्द करता हू।"

ज़ोग्राफ ने फिर संस्था के परिचय का सूत्र जोड़ा। बोले, " 'मुद्राराक्षस' तथा 'मृच्छकटिक' के भी अनुवाद हमारे यहा तैयार है और जल्दी ही प्रकाशित हो जायगे।

कुमारी स्वेतेचिदोवा मेरी बराबर की कुर्सी पर बैठी थी। मैने उनसे पूछा, "आपने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की किन किन रचनाओ का अनुवाद किया है?"

वह बोली, "कुछ कहानियो और कविताओ का। उनका संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। उसमे उनकी वह कविता भी आ गई है, जो उन्होने मृत्यु के सम्बन्ध मे लिखी थी।"

मैने कहा, "वह तो शायद उनकी अन्तिम कविता थी।"

"नही", वह बोली, "उसके बाद उन्होने और भी कविताए लिखी है।"

कहने को यह इतना कह तो गई, लेकिन तभी उन्हें लगा कि अपने अतिथि की बात को उन्हें काटना नही चाहिए था, सो झट बोली, "क्यो, आप आश्वस्त है कि वह उनकी अन्तिम कविता थी?"

मैने कहा, "नही, आपकी बात सही हो सकती है। हमारी भारतीय भाषाए बहुत ही विकसित है और उनमे इतना विपुल साहित्य है कि किसकी कौन-सी रचना कब प्रकाशित हुई, यह जानना बड़ा कठिन है।"

कह नहीं सकता कि मेरे इतना कहने से उनका समाधान हुआ या नही, पर एक बात मेरे मन मे घर कर गई कि हमें पूरी तैयारी करके विदेश जाना चाहिए और कोई भी बात मुह से ऐसी नही निकालनी चाहिए, जिससे अपने देश के सम्बन्ध मे हमारी अजानकारी या अज्ञान प्रदर्शित हो।

काफ़ी देर तक चर्चा करने के बाद हम लोग ऊपर की मंजिल में एक बड़े हॉल में गये, जहां शीशे की अलमारियों में संस्कृत, पाली, अरबी, तुर्की, पंजाबी, चीनी तथा अन्य अनेक भाषाओं की पांडुलिपियां रक्खी हुई हैं। उन्हें देखकर मुझे लगा कि ये लोग कितने जिज्ञासु और परिश्रमशील हैं कि दूर-दूर से प्राचीन पांडु-लिपियों को लाकर एक मूल्यवान निधि अपने यहां संचित कर ली है।

प्रो० कल्यानोव ने बड़ी सावधानी से कई पांडुलिपियां निकालीं और मुझे दिखाईं। साथ ही वे पुस्तकें भी दिखाईं, जो विभिन्न भारतीय भाषाओं से रूसी में अनूदित होकर उनके यहां से प्रकाशित हुई थीं।

काफ़ी समय हो गया था। मैंने इच्छा प्रकट की कि एक चित्र ले लूं। मौसम साफ नहीं था, पर मेरे मुंह से बात निकालते ही सब तैयार हो गये और सड़क की ओर के उस छज्जे पर जा खड़े हुए, जहां से कुछ ही कदम पर मंथर गति से बहती निवा नदी की शोभा देखते ही बनती थी। चित्र खिंच जाने पर प्रो० कल्यानोव बोले, "देखिये, कैसे संयोग की बात है। आपके देश से डा० रघुवीर जब यहां आये थे तो उन्होंने भी इसी स्थान से हम लोगों का चित्र खींचा था।"

पूछने पर जब मैंने बताया कि मैं उसी संध्या को मास्को जा रहा हूं तो प्रो० कल्यानोव ने बड़ी हार्दिकता से कहा, "आपकी यात्रा शुभ हो और आप शतं-जीवी हों!"

मैंने उनका आभार माना और उनके लिए मंगल-कामनाएं कीं। सब लोग मुझे द्वार तक पहुंचाने आये और बड़े भावना-भरे हृदय से उन्होंने मुझे विदा किया।

हमारी सारी बातचीत हिन्दी में हुई थी। लौटते में वेलन्टीना कहने लगी, "वाह, आज तो बड़ा मजा आया। मैं आपके साथ परिवाचन का कार्य करने आई थी, लेकिन वह करना पड़ा आप लोगों को।"

असल में हुआ यह कि वेलन्टीना हिन्दी नहीं जानती थी, इसलिए बीच-बीच में अपनी चर्चा का सार हमें उसे बताना पड़ा था। इसीकी ओर उसका संकेत था।

: ३३ :

फिर मास्को में

लेनिनग्राड में देखने और अध्ययन के लिए बहुत-सी सामग्री है, लेकिन एक तो मौसम बड़ा खराब था और सर्दी बहुत अधिक थी, दूसरे मुझे बार-बार लगता था कि अब जल्दी-से-जल्दी अपने देश लौट चलना चाहिए। इसलिए जितना देख सकता था, देखा और तीसरे दिन दोपहर बाद चलने की तैयारी की। सामान बांधने के उपरान्त वेलन्टीना से विदा मांगी तो वह कुछ द्रवित-सी हो गई। बोली, "अब आप कब आवेंगे ? जब भी मौका मिले, जरूर आइये। हम और हमारे देशवासी आपका स्वागत करने के लिए सदा उद्यत रहेंगे।" मैंने उसका आभार माना और कहा, "मैं यहां आने के लिए बराबर उत्सुक रहूंगा। इस देश में मुझे जितना स्नेह और आत्मीयता मिली है, उतनी और कहीं नहीं मिली।"

मुझे ध्यान आया, पिछले दिन वेलन्टीना ने बताया था कि दो दिन पहले ही उसके पति कहीं से बदलकर लेनिनग्राड आये हैं। स्वाभाविक था कि वह अपना समय बचाकर घर पर उनके साथ बिताने की इच्छा रखती और तदर्थ प्रयत्न करती; लेकिन भावना से अधिक उसने कर्तव्य को महत्व दिया और जबतक मैंने उसे जाने के लिए बाध्य नहीं कर दिया, वह मेरे साथ बनी रही।

सूचना-विभाग की जिन बहनों ने मेरी मदद की थी, उनसे भी मिला और उन्हें धन्यवाद दिया। अपने परिवार से बिछुड़ने पर जैसी मनःस्थिति होती है, वैसी हुई। बार-बार सोचता था कि कौन जाने, हम लोग जीवन में फिर कभी मिलेंगे या नहीं। मुझ जैसे व्यक्ति से प्रतिफल की वे क्या अपेक्षा कर सकती थीं, इतने पर भी उन्होंने बड़े आत्मीयभाव से मुझे हर प्रकार की सुविधा देने में कोई कसर न उठा रक्खी।

साढ़े चार बजे कार द्वारा हवाई अड्डे के लिए रवाना हुआ। रास्ता साफ और अच्छा था। समय से काफी पहले वहां पहुंच गया। पासपोर्ट आदि नहीं देखे गये।

इसलिए सारे समय हवाई अड्डे पर घूमता रहा। ५ बजकर १० मिनट पर विमान रवाना हुआ। रास्तेभर बादल छाये रहे और विमान नीचे-ऊपर होता रहा। तबीयत हैरान रही। विमान में व्यवस्था भी अच्छी नहीं थी। पीने को एक प्याला कॉफी तक न मिली, न कुछ खाने को मिला। धीरे-धीरे चारों ओर अंधेरे का आवरण फैल गया। इसलिए बाहर कुछ भी दिखाई नहीं देता था। हम लोग अपने में सिमटे बैठे रहे। हिचकोलों के कारण नींद तो भला कहां आनी थी! मेरे बाएं हाथ की दो सीटों पर एक रूसी महिला और उसका बच्चा बैठे थे। शायद बच्चे की तबीयत ठीक नहीं थी। उसने मां को परेशान करना शुरू किया। मां ने उसे गोद में ले लिया। थोड़ी देर में उस महिला की स्वयं की तबीयत बिगड़ने लगी, उसे बड़े जोर की उलटी हुई और उसका सिर चकराने लगा। उसने सिर पीछे सीट पर टिका लिया। परिचारिका ने बच्चे को अपनी गोद में ले लिया। सारे रास्ते वह महिला बेचैन रही।

कहीं-कहीं बादल बिखर जाते थे, पर नीचे-ऊपर, इधर-उधर फैले हुए गहन अंधकार में यत्रतत्र बिजली की तारों जैसी टिमटिमाती रोशनी के अलावा और कुछ नहीं दीखता था। ढाई घंटे का वह रास्ता राम-राम करके कटा। आखिर झिल-मिल करती बिजली की अगणित रोशनियों को देखकर पता चला कि मास्को आ गया। विमान ने नगर की प्रदक्षिणा की और हवाई अड्डे पर नीचे उतर गया। उस समय ७॥ बजे थे, पर ऐसा लगता था, मानों आधी रात हो गई हो।

हवाई अड्डे पर सोमसुन्दरम और जायसवाल मिल गये। मैंने उन्हें मास्को से जाने के बाद कोई पत्र नहीं लिखा था, इसलिए वे बड़े चिंतित रहे और इसकी उन्होंने शिकायत की। पर उन्हें खुशी थी कि उनकी प्रेरणा और आग्रह पर मैं निकल गया तो इतने देश देख ही आया।

छब्बीस दिन की भाग-दौड़ और हवाई यात्रा से थक गया था। मास्को पहुंच-कर राहत मिली।

भाई वीरेन्द्रकुमार शुक्ल के, जिनके साथ मैं पिछली बार ठहरा था, घरवाले आ गये थे, इसलिए इस बार भाई मेवालाल जायसवाल के यहां ठहरने की व्यवस्था की गई। उनकी पत्नी प्रसूति-गृह में जानेवाली थीं। घर में काफी जगह थी। हवाई अड्डे से सीधे उन्हींके यहां पहुंचे। सोमसुन्दरम् और जायसवाल बड़ी देर-तक प्रवास की बातें पूछते रहे। अंत में बोले, "हम लोग यहां इतने दिन से रहते

हुए भी कहीं नहीं जा पाये और संयोग देखो, आप थोड़े ही दिनों में इतना घूम आये!"

मैंने कहा, "अक्सर ऐसा होता है कि जिस नगर में हम रहते हैं, उसकी बहुत-सी चीजें नहीं देख पाते। सोचते रहते हैं कि किसी भी दिन देख आवेंगे और इस तरह दिन टलते जाते हैं। यही बात आप लोगों के साथ है।"

मास्को पहुंचने के अगले दिन से ही मुझे स्वदेश लौटने की उतावली हुई। दो महीने हो गये थे। वैसे भी मैं मास्को और उसके आसपास काफी घूम चुका था। फिर भी देखने के लिए बहुत-कुछ शेष था और ठहरने में मुझे कोई रस न हो, ऐसी बात भी न थी, फिर भी मन घर लौटने को व्याकुल हो रहा था। सो सबसे पहले मैं अपनी सीट सुरक्षित कराने के लिए ट्रेविल ब्यूरो गया। वहां पहुंचने पर मालूम हुआ कि जल्दी-से-जल्दी मुझे १६ अक्तूबर को स्थान मिल सकता है। तबतक की सारी सीटें घिरी थीं। बड़ा अजीब-सा लगा। ग्यारह दिन वहां क्या करूंगा? लेकिन कोई चारा भी तो नहीं था। विवश होकर १६ तारीख के जेट में सीट बुक कराके लौट आया।

नगर में पहले की अपेक्षा अब बड़ी उदासी-सी छाई थी। पतझड़ का मौसम प्रारंभ हो गया था। पेड़-पौधे पत्तों से विहीन नंगे खड़े थे और फूलों की बहार समाप्त हो चुकी थी। मैंने जाते समय एक रंगीन फिल्म खरीदी थी; लेकिन फूलों की तस्वीरें उस समय खींचने की सुविधा नहीं हुई थी। सोचा था कि लौटकर खींच लूंगा, लेकिन अब तो हालत ही बदल गई थी। नगर का रूप ही कुछ और हो गया था। युवक-समारोह के दिनों के मास्को से अबका मास्को एकदम भिन्न था, यहां-तक कि उसे पहचानना भी मुश्किल होता था।

मौसम में भी बड़ा परिवर्तन हो गया था। जाते समय गुलाबी जाड़ा था, पर अब तो सर्दी के मारे दांत बजते थे। शाम को सड़क पर कहीं पानी रह जाता तो सबेरे जमा हुआ मिलता। एक दिन मैं भारतीय दूतावास से लौट रहा था। अचानक बर्फ गिरने लगी। केदारनाथ तथा एक-दो अन्य स्थानों पर मैं हिमपात के दृश्य पहले देख चुका था। बड़ा मजा आया। बर्फ गिरते में मैं बराबर घूमता रहा। टोपी और ओवरकोट पर बर्फ इकट्ठी हो जाती थी, उसे बार-बार झाड़ देता था। लोगों ने बताया कि मास्को में असली आनंद तो जनवरी-फरवरी में आता है, जबकि सड़कों पर बर्फ-ही-बर्फ दिखाई देती है। उसे साफ करने पर ही ट्रामें

तथा अन्य सवारियां चल पाती हैं । मास्को नदी का पानी जम जाता है और वह स्केटिंग तथा दूसरे खेलों का मजेदार मैदान बन जाता है ।

मानना होगा कि नगरवासियों का फूलों का प्रेम अद्भुत है । मौसम के दिनों में नाना रंगों के सुन्दर पुष्पों से शहर सुशोभित रहता है । सड़क की पटरियों पर तथा दूसरी जगहों पर बढ़िया फूल बिकते दिखाई देते हैं । सामान्य स्थिति का व्यक्ति भी घर को सजाने के लिए दो-चार रूबल के फूल खरीद ले जाता है । अब असली फूलों की ऋतु समाप्त हो जाने पर कागज के बहुत ही बढ़िया फूल बाजार में आ गये थे और लोग उन्हींको खरीदकर ले जा रहे थे । नगरवासियों की सुरुचि तथा कलाप्रेम को देखकर बड़ी प्रसन्नता होती थी ।

मेरे आने की खबर जैसे ही भारतीय मित्रों को लगी कि वे आये और तरह-तरह के सवाल पूछने लगे । 'हिन्दुस्तानी समाज' की बैठक बुलाई गई । सर्कारी हवाई सर्विस द्वारा आयोजित प्रवास में कुछ भारतीय लोग वहां आये हुए थे। वे भी थोड़ी देर तक बैठक में सम्मिलित हुए । 'परदेशी' फिल्म के सिलसिले में उपस्थित भारतीय मित्रों में से अनिल विश्वास तथा प्रेम धवन ने भी बैठक में भाग लिया । अनिल विश्वास ने एक कविता सुनाई । रचना सामान्य थी, पर उनके मधुर कण्ठ ने उसमें जान डाल दी । 'समाज' की बैठकों में सारी चर्चाएं और भाषण प्रायः अंग्रेजी में होते हैं । मुझसे जब प्रवास के अनुभव सुनाने को कहा गया और अंग्रेजी में बोलने का आग्रह किया गया तो मैंने कह दिया—"मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि हम यहां परदेश में अपनी चर्चाओं और भाषणों में विदेशी भाषा का इस्तेमाल करें, विशेषकर अपनी ही बैठकों में । इसपर एक सज्जन बोल उठे—"हममें एक-दो भारतीय ऐसे हैं, जो हिन्दी नहीं जानते ।" मैंने कहा, "एक-दो की खातिर हम अपनी भाषा की अवमानना क्यों करें ?" मैं हिन्दी में ही बोला । मैंने विस्तार से अपने संस्मरण सुनाये । कई मित्र घूमने का कार्यक्रम बना रहे थे, उन्होंने बहुत-से सवाल किये और विभिन्न देशों में ठहरने तथा खर्चे आदि के बारे में जानकारी ली ।

मास्को-निवास के इन ग्यारह दिनों का मैंने पूरा उपयोग किया । जो स्थान देखने से रह गये थे, वे देखे और जिन चीजों को मैं पहले जल्दी में सरसरी निगाह से देख गया था, उनमें से खास-खास को अब फुरसत से अच्छी तरह देखा । दो चीजों को देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी । बोल्शाई थियेटर में कोई बैले (नृत्य-

नाट्य) देखने के लिए तो मैं बहुत ही आतुर था। पिछली बार एक महीने रहा था, पर टिकट ही नहीं मिला। फिर कुछ समय के लिए छुट्टियों में वह थियेटर बंद हो गया। अब वह खुल गया था और उसमें रूस का बड़ा ही लोकप्रिय बैले 'फाउंटेन' चल रहा था। जायसवाल ने टिकटों की व्यवस्था कर ली और इस तरह मेरी इच्छा पूरी हो गई।

दूसरी उत्सुकता थी महर्षि टाल्स्टाय की जन्म-भूमि—यास्नाया पोलियाना के दर्शन करने की। उसकी व्यवस्था 'सोवियत लेखक संघ' ने पहले करने का प्रयत्न किया था, पर सफलता नहीं मिली थी। एक दिन तो जाने का बिल्कुल निश्चय हो गया; लेकिन ऐन मौके पर कोई बाधा आ गई और जाना रुक गया। असल में वह स्थान मास्को से कोई २०० किलोमीटर पर है और जबतक पूरी सवारियां न हों, तबतक उन्हें कार भेजने में कठिनाई होती है। संयोग से इस बार तीन चीनी लेखक आ गये और हम लोग वहां हो आये।

मास्को में बच्चों के सामान की एक बहुत बड़ी दुकान है, जिसे 'दोत्स्की मीर' कहते हैं। उसका अर्थ होता है 'बच्चों की दुनिया'। वास्तव में वह है भी ऐसी ही। पूरा बाजार समझिये। कई मंजिल की इमारत है और ऊपर आने-जाने के लिए ऐस्कलेटर—चलती सीढ़ियों—की व्यवस्था है। इस केन्द्र में बच्चों से सम्बन्धित हर तरह का सामान मिल जाता है। बच्चों की रुचियों को आकर्षित और परिष्कृत करने के लिए नई-नई चीजों का आविष्कार होता रहता है। बड़ी भीड़ रहती है वहां। लोग नई-नई चीजों की खोज में रहते हैं। मुझे यह प्रयोग बहुत ही अनुकरणीय लगा। एक तो इसलिए कि उसके द्वारा बच्चों के व्यक्तित्व और अस्तित्व को पृथक् स्वीकार करके उसे उचित महत्व दिया गया है। दूसरे, उससे बाल-मनोविज्ञान के अध्ययन और विकास का अवसर मिलता है। तीसरे, बच्चों से सम्बन्ध रखनेवाली सब चीजें एक ही जगह पर मिल जाती हैं। दुकान इतनी बड़ी है कि पूरी देखना तो असंभव था, लेकिन जितनी मैंने देखी, उससे पता चला कि वहां के औसत बच्चों का स्तर काफी ऊंचा है और अपनी विशेषता रखता है। उनकी रुचि में मुझे वैचित्र्य भी खूब दिखाई दिया।

बाल-साहित्य के उच्चकोटि के लोकप्रिय लेखक कार्नेचकोव्स्की ने बड़ा आग्रह किया था कि मैं उनके घर, जो शहर से कोई तीस-चालीस किलोमीटर पर था, अवश्य आऊं। पर उसका सुयोग इस बार भी न मिला। 'सोवियत लेखक संघ' ने

वहां जाने की व्यवस्था कर दी; लेकिन जाने से पहले फोन किया तो पता चला कि चकोव्स्की शहर आये हुए हैं। बाल-साहित्य के इस महान् प्रणेता की आत्मीयता और सजीवता की स्मृति आज भी हृदय को गद्गद् कर देती है। एक दिन बड़ी मजेदार बात हुई। 'सोवियत लेखक संघ' के कार्यालय में अचानक उनसे भेंट हो गई। वह अंग्रेजी जानते हैं। मुझे देखते ही बोले—"हम लोग पहले मिल चुके हैं। बोलो, कहां मिले थे?" मुझे एकाएक ध्यान नहीं आया। मैंने कहा, "आपका चेहरा तो परिचित मालूम होता है, पर याद नहीं पड़ता कि हम कहां मिले थे।" उन्होंने हंसकर कहा, "अच्छा, मैं बताता हूं। हम लोग ओरियंटल इंस्टीट्यूट में मिले थे। क्यों, ठीक है न?" मुझे स्मरण हो आया। मैंने कहा, "आपकी बात सही है।" इसके बाद उन्होंने मुस्कराकर कहा, "आपको भूख लगी है?" मैंने कहा, "नहीं, मैं अभी खाना खाकर आ रहा हूं।" उनकी मुस्कराहट और फैल गई। बोले, "भूखे कैसे नहीं हो! मेरी स्त्री ने पहले ही जान लिया था कि मुझे एक भूखे भारतीय मिलेंगे। इसलिए उसने खाने की बहुत-सी चीजें मेरे साथ रख दी हैं। आओ, बाहर कार में चलें।"

इतना कहकर वह मुझे आग्रहपूर्वक बाहर ले गये। असल में बात यह थी कि उनकी पत्नी ने उनके खाने के लिए बहुत-सी चीजें रक्खी थीं और वह अकेले खाना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने यह नाटक किया। हम लोग कार में जा बैठे। उन्होंने अटैची खोली और एक-एक चीज निकालकर देने लगे। बोले, "देखा, तुम्हारा ख्याल करके मेरी स्त्री ने ताजे टमाटर और खीरे भी रख दिये हैं।" हम दोनों ने खाना शुरू किया। वह मुझे आग्रह कर-करके चीजें देने लगे तो मैंने कहा, "आप तो बाबा की तरह प्यार और ममता से खिला रहे हैं।" वह हँस पड़े। बोले, "एक भेद की बात बताऊं? मैं परबाबा बन चुका हूं।" उनकी हँसी में देने को योग तो मैंने भी दिया, पर मैं चकित होकर उनकी ओर देखता रह गया। वास्तव में इतनी उम्र में इतना विनोदी, इतना प्राणवान और इतना फुर्तीला बना रहना हर किसी के लिए संभव नहीं है।

उन्होंने एक बड़ी विचित्र-सी बात कही। जब हम लोग खा-पी रहे थे, वह बोले, "आप बुरा न मानें, हमारे देश में एक मजेदार कहावत प्रचलित है। बच्चे जब भूखे होते हैं तो कहते हैं—'मां, मुझे जल्दी से खाना दो। मुझे ऐसे जोर की भूख लगी है, जैसी हिन्दुस्तानी को लगती है।'"

उनके स्वर मे किसी प्रकार की दुर्भावना नही थी, इसलिए मुझे बुरा तो नही लगा, लेकिन मै सोच में पड़ गया कि आखिर यह कहावत वहां किस तरह चालू हुई होगी। शायद किसी रूसी बालक ने हमारे देश मे किसीको भूख से चिल्लाते देखा होगा। यह भी सभव है कि कोई भोजन-भट्ट भारतीय रूस गये हो और वहा अपने देश की नेकनामी कर आये हो! जो हो, मैने चकोव्स्की को बताया कि यह कहावत गलत है। हमारे देश मे भूख से कोई नही चिल्लाता। वह मुस्कराकर बोले, "आप सफाई क्यो दे रहे हो? उसकी जरूरत नही। मै स्वय जानता हू।"

चकोव्स्की ने बच्चों के लिए बहुत-सी पुस्तके लिखी है और अब भी उनका साहित्य-सृजन का कार्य बराबर चल रहा है। एक दिन फिर उनसे 'चिलड्रन्स हाऊस आंव बुक्स' मे भेंट हुई तो उन्होंने बताया, "मै अपनी एक पुस्तक के प्रूफ देखने यहा आया हूं।" हमारे देश में बड़े लेखक बच्चो के लिए लिखने में अपनी हेठी समझते है। जो लिखते भी है, उनमे इतना उत्साह और धैर्य कहां होता है कि वे स्वयं परिश्रम करके पुस्तक को साफ और शुद्ध छपवाने में सहायक हो। इसके विपरीत, श्वेत केशोंवाले युवा-वृद्ध चकोव्स्की मीलों दूर से आकर बड़े ही मनोयोगपूर्वक प्रूफ देखने में लगे थे, ताकि उनकी पुस्तक मे एक भी अशुद्धि न रहने पावे!

चकोव्स्की का ध्यान अब गांधीजी की ओर गया है। कहते थे कि यदि सामग्री मिल जाय तो मै गांधीजी के जीवन और उनकी विचार-धारा पर सरल-सुबोध ढग से अपने देश के बच्चो को कुछ देना चाहूगा।

'डाक्टर जिवागो' के लेखक बौरिस पास्तरनक से मिलने का सवाल ही नहीं था। उन दिनों कहीं भी इस लेखक का नाम नही लिया गया। 'सोवियत लेखक संघ' तथा मित्रों ने वहां के जिन लेखकों से मिलने की प्रेरणा दी, उनमे इस लेखक का नाम नहीं था।

: ३४ :

रूस में मैंने क्या नहीं देखा

६ अगस्त को मैंने रूस में प्रवेश किया था, १० सितम्बर तक उस देश में रहा। तत्पश्चात अन्य देशों में घूमकर लौटने पर बारह दिन और रहने का अवसर मिला। इस अरसे में मैंने जो कुछ देखा, उस सबका उल्लेख कर सकना संभव नहीं है। बहुत-कुछ देखने से रह भी गया। कई ऐतिहासिक नगर छूट गये। पर उसका मुझे खेद नहीं है, क्योंकि समय अधिक हो तब भी कोई आदमी दुनिया में सबकुछ नहीं देख सकता। इस अध्याय में मैं कुछ ऐसी चीजों का उल्लेख करूंगा, जिनसे रूस के निवासियों को समझने में मदद मिलती है, साथ ही यह भी पता चलता है कि द्वितीय महायुद्ध की अपार क्षति के बाद विभिन्न क्षेत्रों में उस राष्ट्र ने जो प्रगति की, उसका रहस्य क्या है।

पीछे के अध्यायों में पाठक पढ़ चुके हैं कि रूस को कितने आंतरिक तथा बाह्य संकटों का सामना करना पड़ा। वहां के निवासियों ने न केवल जार-शाही का खात्मा किया, अपितु नाजी उपद्रवों एवं अत्याचारों का भी बड़ी बहादुरी से मुकाबला किया। इसमें धन-जन की जो क्षति हुई, वह तो हुई ही, शासन-व्यवस्था बदल जाने और किसान-मजदूरों की सत्ता स्थापित हो जाने के कारण लोगों के रहन-सहन में भी बड़ा परिवर्तन हो गया। जिनके पास बड़े-बड़े भवन थे, वे अब छोटे-से एक या दो कमरों के फ्लैट में अपनी गुजर-बसर करते हैं। अपने लम्बे निवास में मैं प्रत्येक क्षेत्र के लोगों से मिला, उनसे बातें कीं, लेकिन एक भी व्यक्ति मुझे ऐसा नहीं मिला, जो खुले आम एकांत में अपने नेताओं, अथवा शासकों को कोसता हो या अपने भाग्य को दोष देता हो। प्रायः सभी परिवारों में से कोई-न-कोई आदमी द्वितीय महायुद्ध में मारा गया, लेकिन इसका दुःख होते हुए भी वे लोग व्यर्थ के विलाप अथवा दोषारोपण में अपनी शक्ति एवं समय की बरबादी नहीं करते। जहां-जहां इस सम्बन्ध में बात चली, घर की स्त्रियों ने कहा, "हमें अपने

आदमी के मारे जाने का दुःख जरूर है, पर मलाल नहीं, क्योंकि देश पर मर-मिटना प्रत्येक देशवासी का सबसे पहला कर्त्तव्य है।"

राजनीति पर निजी या सामूहिक रूप में लम्बी-चौड़ी बहसें मुझे सुनने को नहीं मिलीं। बड़ी-बड़ी मीटिंगें सामान्यतया वहां नहीं होतीं और न राजनीति की वर्णमाला से भी अनभिज्ञ लोग ऐसे बहस-मुबाहिसे करते हैं या राय देते हैं, मानों वे राजनीति के पंडित हों।

इससे भी बड़ी बात यह है कि मैंने वहां किसीको भी अपने देश की शान में बट्टा लगाते या धोखा देते नहीं देखा। बाहर से बहुत-से लोग वहां आते हैं, लेकिन क्या मजाल कि कोई भी रूसी अपने देश अथवा देशवासियों की बुराई उनसे करे! वे अक्सर अपने मेहमानों से कहते हैं, "आप हमारे देश में आये हैं। यहां बहुत-सी चीजें आपको पसंद आवेंगी। आप खूब घूमिये और सब कुछ अपनी आंखों से देखिये।" मैंने एक भी व्यक्ति को यह कहते नहीं सुना कि हमारे देश में बड़ी तबाही है, हम मरे जा रहे हैं। यह नहीं कि वे पूर्णतया सुखी हैं और उन्हें कोई कष्ट नहीं है, लेकिन वे जानते हैं कि अपने देश को दूसरों की निगाह में गिराकर वे न अपना भला कर सकते हैं, न दूसरों का।

मामूली-सी बात है। बस, ट्राम या रेल में मैंने किसी भी व्यक्ति को बिना टिकट सफर करते नहीं देखा। लोग अक्सर टिकटों की कापियां खरीद लेते हैं। जो ऐसा नहीं करते, वे सबसे पहले टिकट-घर पर जाकर या ट्राम-बस पर कंडक्टर के पास जाकर टिकट ले लेते हैं। उनमें यह वृत्ति नहीं है कि कंडक्टर की निगाह बचाकर निकल जायं और पैसे बचा लें। ऐसा करने से उन्हें थोड़ा-बहुत आर्थिक लाभ हो सकता है, लेकिन वे यह भी जानते हैं कि आज की छोटी-सी बेईमानी कल बड़ी बेईमानी करने की प्रेरणा बन सकती है।

अपने काम में ढिलाई करते या काम से जी चुराते लोगों को मैंने नहीं पाया। काम किसी भी प्रकार का हो, सड़क बनाने का या दफ्तर का, फैक्टरी का या दुकान पर सामान बेचने का, हर व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को पहचानता है। यह नहीं कि दो व्यक्ति बैठे-बैठे गप्पें लड़ा रहे हैं और उधर काम का नुकसान हो रहा है। मास्को रेडियो में मेरी चार वार्त्ताएं रिकार्ड हुईं। रिकार्ड करनेवाली बहन मुझसे पूछती कि मेरी वार्त्ता कितने मिनट की होगी और मेरे बता देने पर वह मशीन चालू कर देती। जबतक मेरी वार्त्ता रिकार्ड होती, वह दूसरा काम निबटा लेती।

आफिस के के घंटों में दोस्ती निभाने अथवा समय गंवाने की मनोवृत्ति मुझे उनमें नहीं दिखाई दी। वे लोग बातें न करते हों, सो नहीं, लेकिन काम के घंटों का उपयोग वे काम में ही करते हैं। विश्राम या अवकाश के समय के वे स्वयं मालिक हैं, जो चाहें, करें।

अपने अज्ञान को वे नहीं छिपाते। जो काम उनके हाथ में है, उसके बारे में आप चाहे जितने सवाल पूछ लीजिये। वे अपनी योग्यतानुसार आपको अवश्य उत्तर दे देंगे; लेकिन जिस बात को वे नहीं जानते हैं, उसकी गलत जानकारी देने के बजाय वे कह देंगे, "मुझे खेद है कि मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता।" एक बार मैं एक प्रकाशन-गृह में गया। बहुत देर तक बातें होती रहीं। मैंने अधिकारी से पूछा कि आप पुस्तक की लागत तथा मूल्य में क्या अनुपात रखते हैं? उन्होंने तत्काल उत्तर दिया—"हमें पता नहीं। पुस्तकों का मूल्य ऊपर के अधिकारियों द्वारा निर्धारित होता है।" बहुत-सी चीजों में वे टांग नहीं अड़ाते। अपने अंगीकृत कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने की तत्परता उनमें रहती है।

अपने घर की गंदगी दूसरों के घरों के सामने फेंकते मैंने किसीको नहीं देखा। कई-कई मंजिलों के मकान वहां होते हैं। हर फ्लैट के बाहर एक या दो बाल्टियां रहती हैं। घर के लोग उनमें कूड़ा-कचरा डालते रहते हैं। सवेरे एक निश्चित समय पर घर का कोई आदमी उन बाल्टियों को उठाकर नीचे सड़क पर रख आता है। म्युनिसिपैलिटी की बस आती है, उन बाल्टियों को उठा ले जाती है और उनके स्थान पर साफ-धुली बाल्टियां रख जाती है।

यह तो हुई घरों की बात, सड़क पर भी जगह-जगह पीकदान तथा कूड़ेदान रक्खे हैं। वहां कोई भी व्यक्ति इतनी मनमानी नहीं बरतता कि जहां चाहे थूक दे, जहां चाहे छिलके पटक दे। इतना ही नहीं, लोग बस, ट्राम या रेल की टिकट भी कूड़ेदानों में ही डालते हैं, सड़क पर फेंकते हुए नहीं चलते। यही कारण है कि वहां की सड़कें बहुत साफ-सुथरी रहती हैं।

बाहर के लोगों की वे उपेक्षा नहीं करते, उनका बड़ा मान करते हैं और उनकी सब तरह से सहायता करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। मैं अनेक बार रास्ता भूल जाता था। मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जिससे मैंने कुछ पूछा हो और इंग्लैंड के निवासी की भांति वह कलाई पर बंधी घड़ी पर निगाह डालकर यह कहता आगे बढ़ गया हो—"मुझे खेद है कि मेरे पास वक्त नहीं है।" दूसरों की

सहायता के हर अवसर का वे स्वागत करते हैं और यथासंभव मदद करते हैं। कई बार तो ऐसा हुआ कि मेरे भटक जाने पर कोई रूसी भाई या बहन मुझे रास्ता ही नहीं बता गये, या बस में ही नहीं बिठा गये, बल्कि मेरे निवास पर मुझे पहुंचा गये। मेरा टिकट भी उन्होंने मेरे मना करते-करते अपने पास से खरीद लिया।

किसी भी काम को छोटा या बड़ा मानकर उसे उसी हिसाब से महत्त्व देते मैंने उन्हें नहीं देखा। ईसा के कथनानुसार प्रत्येक कार्य गौरवशाली है और इसी भावना से वे उसे करते हैं। जूतों पर पालिश करनेवाला बूढ़ा आदमी किसी छोटी उम्र के बालक या बालिका के जूते पर पालिश करते हुए यह अनुभव नहीं करता कि वह कोई हेय कार्य कर रहा है और न लज्जित ही होता है। सड़क पर झाड़ू लगाने-वाली वयोवृद्धा अपने काम को बड़े गौरव से करती है। सामान बेचनेवाली बहन यह नहीं सोचती कि वह एक मामूली लड़की है और कारखाने में कल-पुरजों की सफाई में मैले-कुचैले कपड़े पहने खड़ी बहन यह ख्याल करके सिर नहीं झुका लेती कि उसके भाग्य में कोई ओछा काम बदा है। अपने मैले हाथों पर जैसे उसे गर्व होता है, क्योंकि वह काम भी तो उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कोई दूसरा काम।

धक्का-मुक्की के नज्जारे वहां देखने को नहीं मिलते। सिनेमाघरों, दुकानों, ट्रामों, बसों, रेलों आदि पर लम्बी कतारें लग जाती हैं और हर व्यक्ति अपनी बारी की प्रतीक्षा करता है। आगे के आदमी या स्त्री को धकेलकर स्वयं आगे बढ़ जाना अथवा रोकते-रोकते अन्दर घुस जाना उनके स्वभाव के विपरीत है। वे जानते हैं कि एक की आजादी तभी सुरक्षित रह सकती है, जबकि वह दूसरे की आजादी का ध्यान रखे। सब अपनी-अपनी आजादी को ही देखेंगे तो उसका परिणाम अरा-जकता होगी और उसमें हर किसीकी आजादी खतरे में पड़ जायगी।

शराब का प्रचलन वहां खूब है, पर दारू के नशे में उच्छृंखलता दिखाते हुए मैंने किसीको नहीं पाया। दो-एक अवसरों पर नशे में डूबा कोई आदमी भूले-भटके भले ही मिल गया और वह भी रात को ११-१२ बजे, लेकिन दिन में उनका जीवन मैंने अत्यन्त मर्यादित पाया। शराब पीकर सड़क की नाली में गिर जाना, ऊल-जलूल बकना, दूसरों को छेड़ना या हैरान करना, भद्दे प्रदर्शन करना, ऐसी बातों को वे बड़ा ही अशोभनीय मानते हैं।

मर्द-औरतों के रहन-सहन में मुझे तड़क-भड़क दिखाई नहीं दी। उनके घर सादे, कपड़े सादे, रहन-सहन सादा। अपने निवास-काल में शायद ही किसी स्त्री

या लड़की को मैंने सिगरेट का धुआं उड़ाते देखा हो। लाली अथवा पाउडर का प्रचलन वहां नहीं के बराबर है। मुश्किल से हजारों पीछे एक स्त्री ऐसी मिलेगी, जो इनका उपयोग करती हो। उनकी पोशाक उनकी शालीनता को व्यक्त करती है। लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करनेवाली चटकीली पोशाकें धारण किये महिलाएं मेरे देखने में नहीं आईं।

रूसी सैनिक जाति के हैं। इसलिए स्त्री-पुरुषों के शरीर बड़े ही स्वस्थ और पुष्ट हैं। उनमें लोच दिखाई नहीं देता और न वाणी में कोमलता। वे बड़ी तेजी से चलते हैं। उनमें शैथिल्य नहीं होता। उनकी वाणी में कड़क है। जब कोई फोन पर बात करता है तो ऐसा लगता है, मानो वह किसी भीड़ के सामने भाषण दे रहा हो।

वहां के लोगों में मैंने लालच नहीं पाया। वे जो कमाते हैं, खर्च कर डालते हैं। भविष्य की चिन्ता में वे अपने वर्त्तमान को नहीं बिगाड़ते। खाने-पीने आदि के खर्चे से यदि कुछ पैसा बच रहता है तो वे उसे तिजोरी में बंद करके नहीं रख देते, बल्कि बाल-बच्चों के साथ सिनेमा या थियेटर आदि में खर्च कर आते हैं अथवा कहीं यात्रा पर चले जाते हैं।

पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष या वैमनस्य से लोगों को सार्वजनिक स्थानों पर गाली-गलौज या मार-पिटाई करते मैंने कहीं नहीं पाया। इससे यह न समझा जाय कि वहां के लोगों में ऐसा कोई दुर्गुण नहीं है। इसका अर्थ यह है कि इस प्रकार के भद्दे प्रदर्शनों को वे सार्वजनिक रूप नहीं देते।

ऐसी और भी बहुत-सी बातें हैं। उनके विस्तार में न जाकर मैं इतना ही कहूंगा कि छोटी होते हुए भी ये बातें बड़ी महत्वपूर्ण हैं और उन्हींके जोर पर रूस ने संसार के दो सबसे शक्तिशाली राष्ट्रों में अपना स्थान बना लिया है।

: ३५ :

मास्को से विदाई

१६ अक्तूबर को सवेरे ३ बजकर २० मिनट पर जेट-विमान से मुझे मास्को से रवाना होना था, इसलिए मैंने सोचा कि अपने सारे काम १७ तारीख तक निबटा लूंगा और १८ का दिन मित्रों से विदा लेने और यात्रा की तैयारी के लिए रक्खूंगा। लेकिन संयोग से यास्नाया पोलियाना जाने के लिए १८ तारीख निश्चित हुई। बहुत जल्दी करते-करते उस दिन रात को सवा आठ बजे लौटा। रात का खाना भाई मदनलाल 'मधु' के यहां था। उस भोज में अनिल विश्वास, उनकी पत्नी तथा प्रेम धवन आदि भी सम्मिलित हुए। श्रीमती अनिल विश्वास ने वह लोरी सुनाई, जो उन्होंने 'परदेशी' फिल्म में गाई थी। बातचीत का ऐसा सिलसिला चला कि ११॥ बज गये। मुझे अपना सामान ठीक करना था। इसलिए मित्रों से माफ़ी मांगकर और विदा लेकर घर आया। सोमजी, उनकी पत्नी तथा अन्य भारतीय मित्रों ने सामान बांधने में मदद की।

इस विचार से कि अब मैं मास्को छोड़ रहा हूं, जी कुछ उदास हो रहा था। इतने दिनों के निवास में वहां बहुत-से नये मित्र बन गये थे और पुरानों से घनिष्ठता हो गई थी। अनेक चित्र मानस-पटल पर उभरने लगे। कितनी आत्मीयता मिली थी मुझे वहां। एक भी अवसर ऐसा याद नहीं आ रहा था, जबकि सहायता की आवश्यकता हुई हो और वह वहां के भाई-बहनों से प्राप्त न हुई हो। उन लोगों की मिलनसारिता, सेवा-परायणता और कर्त्तव्यपालन के प्रति सजगता की अनेक मधुर स्मृतियां मन में उठ रही थीं। मास्को नदी के साथ बहुत निकट का नाता जुड़ गया था। अखण्ड गति से प्रवाहित वहां के लोकजीवन को हर शाम को देखते-देखते मन उसकी ओर बहुत ही आकृष्ट हो गया था। पता नहीं, अब फिर वहां कब आना होगा, और आना होगा भी या नहीं—ये तथा ऐसे ही बहुत-से विचार दिमाग में उठ रहे थे। विशेषकर याद आते थे वे भोले चेहरे, जो बार-बार मुझसे पूछते थे, "कहिये,

आपको हमारा देश कैसा लगा ? यहां के लोगों की आपपर कैसी छाप पड़ी ?" देश-प्रेम से ओत-प्रोत उनकी आंखों को और उनमें झलकती इस व्यग्रता को कि कहीं परदेशियों पर उनके देश और देशवासियों की खराब छाप न पड़ जाय, कैसे भुलाया जा सकता था !

सोमजी और उनकी पत्नी सामान ठीक कराकर थोड़ी देर के लिए अपने घर चले गये और कह गये कि १ बजे टैक्सी लेकर आ जायंगे। उनके जाने पर शंकर गौड़ आ गये और कुछ देर बैठकर और अपने भारतीय मित्रों के लिए चिट्ठियां देकर चले गये।

भाई जायसवाल की पत्नी प्रसूति-गृह से अपनी नवजात कन्या के साथ सकुशल घर आ गई थीं। उनसे विदा लेने उनके कमरे में गया तो उनकी आंखें डबडबा आईं। बोलीं, "आपकी वजह से घर में बड़ी चहल-पहल रही। आपके जाने से बड़ा बुरा लग रहा है। अब कब आयेंगे ?"

मैंने कहा, "आप लोगों का स्नेह कभी-न-कभी खींच ही ले आयेगा। मैं आप सबका बहुत ही आभारी हूं कि आपने घड़ीभर को भी मुझे यह नहीं लगने दिया कि मै परदेश में हूं।"

एक बजते-बजते टैक्सी आ गई। उसमें सामान रखवाया। मना करते-करते सोमजी, उनकी पत्नी और जायसवाल पहुंचाने साथ चले। यद्यपि आधी रात से अधिक हो चुकी थी, तथापि मास्को नगरी एकदम खामोश नहीं थी। सड़कों पर उस समय भी लोग और सवारियां आ-जा रही थीं।

सवा दो बजे के लगभग हवाई अड्डे पर पहुंच गये। वहां सामान तुला, टिकट जांचे गये। मिनटों में ये दोनों काम हो गये। सोमजी ने कहा, "अभी बहुत समय है। चलो, ऊपर रेस्त्रां में एक-एक प्याला कॉफी पी लें।" हम लोग रेस्त्रां में चले गये और गपशप करने लगे। मजे-मजे में कॉफी पी। श्रीमती सोमसुन्दरम् ने कहा कि यात्रियों के लिए विमान में बैठने की सूचना दी जायगी, तभी हम लोग नीचे चले चलेंगे। अतः हम सब निश्चिन्त थे। अचानक मेरी निगाह सामने घड़ी पर गई तो तीन बजे थे। मैंने कहा, "अब हम नीचे चलें। तीन बज गये हैं।"

श्रीमती सोमसुन्दरम् बोलीं, "अभी घोषणा कहां हुई है ? आप जल्दी न करें।"

मैंने कहा, "पिछली बार जब मैं जेट से प्राग् गया था तो हम लोगों को कोई

आधा घंटा पहले विमान में बिठा दिया गया था।

खैर, पांच मिनट और निकल गये, फिर भी घोषणा सुनाई न दी तो हम लोग वहां से उठे। सब अपने-अपने ओवरकोट रेस्त्रां के बाहर के कमरे में टांग गये थे, वे पहने। उसमें कम-से-कम पांच मिनट और लग गये। करीब ३-१० पर नीचे आये। कुछ लोग अब भी इधर-उधर घूम रहे थे। कुछ मुसाफिरखाने में बेंचों पर बैठे ऊंघ रहे थे। सोमजी और उनकी पत्नी ने कहा, "हम लोग इन्क्वायरी में जाकर पता लगा आवें कि अभी कितनी देर है।"

उनका जाना था कि एक रूसी लड़की बहुत ही घबराई हुई मेरे पास आई और बोली, "आप काबुल जा रहे हैं?"

मैंने कहा, "जीहां।"

वेहद झुंझलाकर उसने कहा, "तो यहां खड़े-खड़े क्या कर रहे हैं? सारे मुसाफिर विमान में बैठ गये हैं। विमान अब छूटनेवाला है।"

वह काबुल जानेवाले हमारे जेट की परिचारिका थी। उसने झटपट मेरा कुछ सामान उठाया और चल पड़ी। कुछ सामान जायसवाल ने लिया और वह भी लड़की के पीछे दौड़े। मैं यह सोचकर जरा ठिठका कि सोमजी और उनकी पत्नी आ जायं तब जाऊं। लेकिन दोनों में से कोई भी आता दिखाई न दिया तो विवश होकर शेष सामान उठाकर मुझे भी भागना पड़ा।

जिस समय विमान के पास पहुंचे, सीढ़ियां हट चुकी थीं, दरवाजा बन्द हो गया था। सीढ़ियां फिर से लगाई गईं, दरवाजा खोला गया। हमारे अंदर पहुंचते ही द्वार बन्द कर दिया गया। मैंने परिचारिका से कहा, "जरा रुक जाओ, दरवाजा खोल दो। मेरे मित्र इन्क्वायरी में पूछताछ करने गये थे। मैं इधर चला आया। इतनी रात गये वे पहुंचाने आये हैं, उनको विदाई का नमस्कार नहीं करूंगा तो उन्हें और मुझे कितना बुरा लगेगा!"

बेचारी परिचारिका ने दरवाजा खोल दिया। दरवाजे का खुलना था कि किसी ने नीचे से कड़ककर रूसी में कुछ कहा। दरवाजा फौरन बंद कर दिया गया। विमान की खिड़की में से मैंने देखा कि सोमजी और उनकी पत्नी चले आ रहे हैं। विमान के निकट आकर वे क्षणभर रुके और द्वार बंद देखकर लौट गये। लाचारी यह थी कि मैं उन्हें देख सकता था, लेकिन विमान में भीतर अंधेरा होने के कारण वह मुझे नहीं देख सकते थे।

उस समय मेरी जो अवस्था हुई, उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। श्रीमती सोमसुन्दरम गर्भवती थीं, फिर भी इतनी दूर बिना आये नहीं मानीं और सारी रात उन्होंने पलकों पर निकाल दी ! उनकी मनोदशा का अनुमान कौन कर सकता था !

ठीक ३.२० पर विमान ने हलचल प्रारम्भ की, शोर मचाया, दौड़ लगाई और फिर भूमि से नाता तोड़कर अम्बर की ओर बढ़ चला। मेरे मन की घबराहट अब भी यथापूर्व बनी थी। एक तो रातभर एक क्षण को भी सो नहीं सका था, ऊपर से यह घटना घट गई। विमान के समगति से चलने पर मैंने सोचा कि थोड़ी देर सो लूं, पर दिमाग सांय-सांय कर रहा था। संभवत: ५ बजे के बाद कहीं आंख लगी। घंटे भर बाद फिर खुल गई। भोर का प्रकाश फैल रहा था। खिड़की से नीचे निगाह गई तो देखता क्या हूं कि सबकुछ सफेद-ही-सफेद है। मैंने परिचारिका से पूछा कि हम लोग कहां हैं और यह नीचे क्या है ? उसने कहा, "यहां बरफ बहुत पड़ी है। मौसम खराब है। हम लोग ताशकन्द न जाकर दूसरी ओर जा रहे हैं।"

उसकी बात सुनकर थोड़ी-बहुत नींद आने की जो संभावना थी, वह भी दूर हो गई। मैंने कहा, "हम लोग ताशकन्द कब पहुंचेंगे ?"

वह बोली, "कह नहीं सकते। यह तो मौसम पर निर्भर करेगा।"

सवा ६ बजे हम लोगों का विमान स्वेरड्लोव्स्क हवाई अड्डे पर उतरा। हिम-पात के कारण चारों ओर चांदी-जैसी बर्फ बिछी दिखाई देती थी। विमान बर्फ पर उतरा और हवाई अड्डे के भीतर जाने के लिए हमें भी बर्फ के ऊपर होकर आना पड़ा। मन में चिंता थी कि पता नहीं, कबतक यहां रुकना पड़ेगा। पर दृश्य बड़ा ही मनोरम लगता था। पेड़ों की टहनियां बर्फ से सफेद हो रही थीं। सर्दी खूब थी। परिचारिका ने हमें ऊपर की मंजिल में ले जाकर एक कमरे में बिठाल दिया। उसके जाने पर मैं नीचे आया और हवाई अड्डे की इमारत के चारों ओर चक्कर लगाया। दिन का प्रकाश काफी फैल गया था। सूर्य की सुनहरी किरणें बर्फ पर पड़ रही थीं। मैंने कुछ चित्र लिये। लौटकर फिर कमरे में आ गया। थोड़ी देर बाद परि-चारिका आई और बोली, "मौसम का कुछ ठिकाना नहीं है कि कबतक साफ होगा। अब आप विश्राम-गृह में चलिये और आराम कीजिये।"

वह हमें अपने साथ ले गई और विश्राम-घर के एक कमरे में पहुंचाकर जाते-जाते बोली, "आप बेफिक्र होकर सोइये। विमान जाने को होगा तो मैं आकर

आपको लिवा ले जाऊंगी।"

मैं बड़ी थकान अनुभव कर रहा था। सो कम्बल ओढ़कर बिस्तर पर लेट गया। आंख बंद करते ही नींद आ गई। लगभग साढ़े आठ बजे दरवाजे पर खट-खट सुनकर उठा। किवाड़ खोले। परिचारिका खड़ी थी। बोली, "चलिये, मौसम ठीक हो गया है और अब हम रवाना होनेवाले हैं।"

सवा नौ पर विमान चला। रास्तेभर हिम के सुहावने दृश्य दिखाई देते रहे। बीच-बीच में हरे-हरे वृक्ष उस प्राकृतिक सुषमा को नूतन आकर्षण प्रदान कर रहे थे। ऐसे में आंख कहां झपनी थी! उजबिकिस्तान का अपना सौंदर्य है और उसकी राजधानी ताशकन्द तो नैसर्गिक हरीतिमा का भण्डार माना जाता है।

मास्को से तीन घंटे में हमें सीधे बिना कहीं रुके ताशकंद पहुंच जाना था, लेकिन बीच के स्वेरडलोव्स्क पड़ाव को शामिल करके पहुंचे कोई नौ घंटे में। उस समय मास्को के समय के अनुसार सवा बारह बजे थे, लेकिन ताशकंद की घड़ी सवा तीन बजा रही थी।

विमान से उतरते ही हमारी पूर्व-परिचित माशा ने हम लोगों का स्वागत किया। मास्को में हमें बताया गया था कि ताशकंद पहुंचते ही काबुल के लिए विमान मिल जायगा; लेकिन माशा से मालूम हुआ कि मौसम अनुकूल न होने के कारण उस दिन कोई भी विमान काबुल नहीं जायगा। यदि मौसम साफ हुआ तो अगले दिन जा सकता है। मैंने कहा, "मैं तो दिल्ली अपने पहुंचने की सूचना दे चुका हूं। घर के लोग हवाई अड्डे पर आयंगे और हैरान होंगे।"

माशा बोली, "तो बताइये, इसके लिए हम क्या कर सकते हैं?"

लखनऊवाले मेरे नामराशी की पत्नी प्रकाशवती भी उसी विमान से दिल्ली लौट रही थीं। उन्होंने कहा, "मैं तो लखनऊ लिख चुकी हूं और मेरे पति दिल्ली आ गये होंगे।"

कुछ देर तक चर्चा के बाद निश्चय हुआ कि दिल्ली दो केबिल किये जायं। माशा ने कहा, "यह काम तो आसानी से हो जायगा। आप लोग तार लिखकर दे दें।"

२२ अक्तूबर की दिवाली थी। प्रकाशवतीजी ने हिसाब लगाया तो उन्हें आशंका हुई कि त्यौहार पर शायद ही लखनऊ पहुंच सकें। बोलीं, "यदि कल सवेरे हम काबुल चले जायं और वहां से तत्काल आगे के लिए विमान मिल जाय तो यह

संभव हो सकता है।"

जी हां, ऐसी लाचारी थी कि हम या अधिकारी लोग कुछ कर नहीं सकते थे। तार लिखकर दिये और माशा ने उसी घड़ी उन्हें तार-विभाग को सौंप दिया। फिर वह बोली, "आप लोग भूखे होंगे। चलिये, कुछ खा लीजिये।"

प्रकाशवतीजी और मैं भोजन के कमरे में पहुंचे। सवेरे से कुछ नहीं खाया था, फिर भी भूख नहीं थी। सिर बहुत भारी हो रहा था। मैंने कहा, "कोई हल्की चीज ले आओ। फल मिल जायं तो अच्छा।" थोड़ी देर में अंगूर और अनार आ गये। खाये, थोड़ी डबल रोटी ली, कॉफी पी। खाने से छुट्टी पाने के उपरांत माशा ने कहा, "अब हम लोग विश्रामगृह में चलें, जहां रात को आपके ठहरने की व्यवस्था की गई है। जो जरूरी सामान हो, साथ ले लें, बाकी यहीं छोड़ दें। वैसे कोई आशा नहीं है; फिर भी अगर शाम को जाने की सुविधा हो गई तो सामान के यहां रहने से जल्दी-जल्दी में लाने की परेशानी से आप बच जायंगे। सवेरे गये, तब भी सामान के यहां रहने से आपको सुभीता ही होगा।"

हम लोगों ने माशा की बात मान ली। जरूरी सामान एक बैग में रक्खा, कैमरा कंधे पर डाला और बाकी के सामान को वहीं छोड़ माशा के साथ बस से विश्रामगृह की ओर रवाना हो गये। उस समय पानी खूब जोर से पड़ रहा था और सर्दी के मारे दांत किटकिटा रहे थे।

प्रकृति के प्रकोप के कारण ताशकंद में रुकना उस घड़ी बड़ा अखरा, लेकिन बाद में शहर तथा उसकी बहुत-सी चीजों को देखकर लगा कि अच्छा हुआ, जो रुक गये, अन्यथा रूस के एक महत्वपूर्ण नगर को देखने और यात्रा के कुछ सुखद अनुभवों से वंचित रह जाते।

: ३६ :

ताशकंद में एक रात

हवाई अड्डे से विश्रामगृह बहुत दूर नहीं था, चाहते तो पैदल ही आ सकते थे; लेकिन वर्षा होने के कारण माशा ने बस की व्यवस्था कर ली और उससे वहां पहुंचे। अच्छी जगह थी। एक कमरे में सामान रखकर थोड़ी देर आराम किया। प्रकाशवतीजी ने कहा, "यहां पड़े-पड़े क्या करेंगे! चलो, शहर ही घूम आवें।" मैं तो यह चाहता ही था। हाथ-मुंह धोकर तैयार हुए। माशा ने बस की जानकारी पहले ही दे दी थी और यह भी बता दिया था कि शहर में देखने की क्या-क्या चीजें हैं। फिर भी विश्रामगृह की व्यवस्थापिका से, जो थोड़ी-बहुत अंग्रेजी जानती थी, विस्तार से पूछताछ करके घूमने निकल पड़े। बस का अड्डा कोई दस कदम पर था। वहां पहुंचते ही बस आ गई। प्रकाशवतीजी के पास दो-एक रूबल और कुछ रूसी सिक्के थे। मेरे पास कुछ भी नहीं था। बस में बैठने पर कण्डक्टर से टिकट मांगी और पैसे उसकी ओर बढ़ाये तो उसने मुस्कराकर हमारी ओर देखा और दाम लेने से इन्कार कर दिया। हम लोग सोच रहे थे कि कहीं हमें पैसे की तंगी न हो जाय, पर कण्डक्टर ने हमारा डर दूर कर दिया। फिर भी यह विचार बना रहा कि अगर कुछ अधिक रूसी मुद्राएं हमारे पास होतीं तो अच्छा था। कई बड़ी सुन्दर चीजें पैसे के अभाव में नहीं ले पाये।

ताशकंद वास्तव में बड़ा ही सुन्दर नगर है। प्राकृतिक सौंदर्य चारों ओर बिखरा पड़ा है। हरियाली की तो कुछ न पूछिये। वर्षा हो जाने के कारण फूल-पत्ते धुलकर साफ हो गये थे और उनका रूप और भी निखर आया था। चारों ओर बड़ी ही आकर्षक दृश्यावली दिखाई देती थी।

हम लोगों ने सबसे पहले विश्वविद्यालय जाने का निश्चय किया। प्रकाशवती-जी ने बताया कि उनके पास वहां की किसी हिन्दी जाननेवाली उजबेक बहन का पता है। वह मिल जायं तो घूमने-घामने में सुविधा होगी। शहर में घुसते ही हम

बस से उतर पड़े। सोचा कि पैदल चलेंगे तो घूमने का घूमना हो जायगा, नगर तथा नगर-वासियों को भी देख सकेंगे। संयोग से बस से उतरते ही विश्वविद्यालय के अन्वेषण-विभाग का एक छात्र मिल गया। वह साथ हो लिया। नगर में घुमाते और प्रमुख स्थानों को दिखाते हुए वह हमें विश्वविद्यालय ले गया। रास्ते में उसने बताया कि यह 'कपास का मौसम' है। इसलिए शहर की सारी शिक्षा-संस्थाओं की छुट्टी है। फिर वह बोला, "आपको शायद पता न हो, यह यहां का बड़ा ही अद्भुत अवसर है।"

विश्वविद्यालय के आ जाने से चर्चा बीच में ही रुक गई। हम लोग भीतर गये। बाहर से इमारत बहुत बड़ी नहीं दीखती थी, लेकिन अन्दर जाकर अन्दाज हुआ कि उसमें कितनी जगह है। पढ़ाई के लिए कमरे बहुत बड़े-बड़े न थे, पर संख्या में काफी थे। उनका फर्नीचर तो बहुत ही मामूली था।

भीतर जाकर हमने देखा कि मर्द-औरतों की वहां खूब भीड़ लगी है। वे छोटे-बड़े पैकेट ला रहे थे और विश्वविद्यालय की बहनें उन्हें नोट कर-करके ले रही थीं। हमारे साथ के छात्र ने वहीं एक ओर को हमें बिठाल दिया और अच्छी तरह अंग्रेजी जाननेवाली एक बहन को लिवा लाया। प्रकाशवतीजी ने उन बहन को अपने पास का पता दिखाया तो मालूम हुआ कि उन बहन का स्थान वहां से दूर नहीं है। उन्होंने कहा, "आप लोग यहीं बैठें। आधा घंटे की भीतर ही वे बहन आ जायंगी।"

बड़ी उत्सुकता और तत्परता से पार्सलों को लाते हुए स्त्री-पुरुषों को देखकर यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक था कि उनमें क्या है और वे क्यों लाई जा रही हैं? एक लड़की से पूछा तो उसने अपनी अंग्रेजी की अध्यापिका से हमारा परिचय करा दिया, जो अपने पति के साथ वहां बैठी हुई उस कार्य का निरीक्षण कर रही थीं। उन्होंने कहा, "आप बड़े अच्छे समय पर इस प्रदेश में आये हैं। इन दिनों हमारे यहां कपास तैयार होती है। हमारे स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय सब बंद हो जाते हैं और उनके छात्र-छात्राएं कपास बीनने के लिए खेतों में चले जाते हैं। हजारों लड़के-लड़कियां मिलजुलकर कितनी उमंग से इस काम को करते हैं, यह देखने की चीज है। इस प्रदेश में कपास खूब होती है।"

मैंने पूछा, "बच्चे अजानकारी में फसल को बिगाड़ तो नहीं देते?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं," उन्होंने उत्तर दिया, "हमारे यहां यह परम्परा वर्षों से चली आ रही है और इस काम में हमारे बच्चे बड़े दक्ष हैं। फिर उनके अध्या-

पर। अध्यापिकाएं भी उनके साथ रहते हैं। यह देखिये, अपने-अपने बच्चों के लिए अभिभावक पार्सलों में सामान पहुंचा रहे हैं। इन्हें ट्रकों पर लादकर हम खेतों पर पहुंचा देंगे और वहां उनका वितरण हो जायगा।"

"तो बच्चे फसल के दिनों में बराबर खेतों पर ही रहते हैं?" मैंने पूछा।

"जीहां, तभी तो मैं कहती हूं कि वह देखने की चीज है। हजारों बच्चे साथ रहते हैं, साथ खाते-पीते हैं, साथ खेलते-कूदते हैं और मिलजुलकर व्यावहारिक रूप से काम करने का शिक्षण प्राप्त करते हैं। जरा कल्पना कीजिये, खेतों में तारों जैसी कपास पौधों पर छिटकी हुई है और अनगिनत हँसते-खिलखिलाते बालक अपने कोमल पर सावधान हाथों से उन्हें बीन रहे हैं! मैं आपसे अनुरोध करूंगी कि आप उस नज्जारे को जरूर देखकर जायं।"

उजबेकिस्तान विद्या का महत्वपूर्ण केन्द्र है, यह मैं पहले ही सुन चुका था। वहां के विश्वविद्यालय की ख्याति का भी मुझे पता था, लेकिन व्यावहारिक शिक्षण की इस पद्धति और श्रम की महिमा की जानकारी प्रथम बार हो रही थी। इच्छा हुई कि घर पहुंचने में भले ही एकाध दिन का विलम्ब हो जाय, पर इस प्रयोग को देखकर ही जाना चाहिए, लेकिन तभी ख्याल आया कि दिवाली बहुत ही निकट है और एक दिन भी वहां अधिक दे देने से त्योहार पर घर नहीं पहुंच पावेंगे। अतः मन की उत्सुकता को मन में ही दबा दिया।

उन महिला ने बताया कि हिन्दी सीखने के लिए यहां उजबेकिस्तान में अच्छा प्रयत्न हो रहा है। कई कालेजों में हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य हो गया है। यह सूचना देते हुए बड़े विश्वास के साथ उन्होंने कहा, "आप देखेंगे कि कुछ ही वर्षों में यहां हिन्दी का अच्छा प्रचलन हो जायगा। आपके यहां के कई लेखकों की रचनाओं का उजबेक भाषा में अनुवाद हो चुका है और हमारे बहुत-से पाठक उन लेखकों के नामों से परिचित हो गये हैं।"

भारत से निकट सम्बन्ध स्थापित करने की रूस की उत्सुकता को मैं देख चुका था, इसलिए उन बहन ने जो कुछ बताया, उससे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ, प्रसन्नता अवश्य हुई। मैं सोचने लगा कि ये लोग हिन्दी सीखने के लिए कितना प्रयत्न कर रहे हैं। हिन्दी के अच्छे साहित्य को अपनी भाषा में अनूदित करने की कोशिश भी चल रही है। इससे हमारी जिम्मेदारी कितनी बढ़ जाती है। उसी समय मुझे याद आया लंदन का वह प्रसंग, जबकि एक सज्जन ने मुझसे पूछा था कि आपके यहां आए-

दिन राष्ट्रभाषा को लेकर इतने झगड़े क्यों होते रहते हैं ? एक रूसी भाई का यह सवाल भी स्मरण हो आया कि क्या आपके यहां कोई एक सामान्य भाषा नहीं है ? मैंने पहले को उत्तर देते हुए कहा था कि हमारे यहां की भाषाएं जड़ नहीं हैं, विकासशील हैं। राष्ट्रभाषा के साथ उनकी जो टकराहट दीखती है, वह वास्तव में झगड़ा नहीं है, बल्कि भारतीय साहित्य को और राष्ट्रभाषा को अधिक समृद्ध और सशक्त करने की उनकी चेष्टा है । दूसरे सज्जन से मैंने कहा था कि हमारे यहां चौदह राष्ट्रीय भाषाएं हैं, एक सामान्य भाषा भी है और वह है हिन्दी। देश के बीस-बाईस करोड़ लोग हिंदी बोलते हैं और उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक उसका प्रचलन है। यह सब कहा तो, पर अपनी कमजोरी को मैं अच्छी तरह से जानता था। मुझे आज भी लगता है कि भाषा-विषयक हमारे झगड़ों से आंतरिक अशांति तो उत्पन्न होती ही है, देश के बाहर उसकी बड़ी भयंकर प्रतिक्रिया होती है। इस दिशा में हमें गंभीरता से सोचना चाहिए।

प्रकाशवतीजी ने जिन बहन का पता दिया था, वे नहीं मिलीं। उनके यहां संदेश छोड़ दिया गया। थोड़ी देर बाद उस नाम की जो महिला आई थीं, वह वह नहीं थीं, जिनका पत्र प्रकाशवतीजी के पास था।

विश्वविद्यालय में पार्सलों के आने का क्रम चलता रहा । अंग्रेजी-विभाग की उन प्राध्यापिका को अपने पति के साथ सिनेमा देखने जाना था, इसीलिए वह हमारे साथ दो छात्राओं को करके, कुछ दूर हमारा साथ देकर, चली गईं।

रात हो गई थी। सारा नगर विद्युत प्रकाश से जगमगा उठा था। उन दोनों छात्राओं ने हमें बाजार में घुमाया, दो-एक छोटी-बड़ी दुकानों में ले जाकर उनका सामान और उनकी सजावट दिखाई, सिनेमाघर दिखाये और अंत में वहां के सबसे बड़े ऑपेरा में ले गईं। उसका भवन दो या तीन मंजिल का था। उसकी कला तथा चित्रकारी बड़ी सुन्दर थी। हम उसे देख रहे थे कि अचानक ऑपेरा के अधिकारी को पता चल गया। वह आकर मिले और बोले, "हमारे यहां एक विदेशी शिष्ट-मंडल आया हुआ है और उसके देखने के लिए बहुत ही अच्छे संगीत-नाट्य (ऑपेरा) की व्यवस्था की गई है। हमारा अनुरोध है कि आप उसे अवश्य देख लें।" पूछने पर मालूम हुआ कि वह रात को एक बजे खत्म होगा। "लेकिन," उन्होंने कहा, "आपकी जबतक ठहरने की इच्छा हो, ठहरें। बाद में आप जहां जाना चाहेंगे, वहां कार से भिजवाने का हम प्रबन्ध कर देंगे।" उनका इतना आग्रह देखकर हम लोग

राजी हो गये। उन्होंने अंदर ले जाकर हमें पहली पंक्ति में बिठा दिया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि मंच बड़ा ही विशाल और सुरुचिपूर्ण था। पर्दे आदि बड़े ही सादे पर आकर्षक थे। नाटक की भाषा हम नहीं समझ पाये, पर पास बैठी अंग्रेजी जाननेवाली रूसी महिला ने हमें सारी कहानी बता दी। शीरी-फरिहाद जैसा कोई कथानक था। कहानी जान लेने पर पात्रों की भाव-भंगिमा और अभिव्यक्ति से खेल बहुत-कुछ समझ में आ गया। अभिनय इतना सुन्दर था कि दिनभर के थके होने पर भी वहां से उठने को जी नहीं चाहता था।

मास्को के बोल्शाई थियेटर की भांति इसका मंच भी घूमनेवाला था। इससे यवनिका गिरने के पश्चात् जरा-सी देर में दूसरा भिन्न दृश्य सामने आ जाता था। देखकर आश्चर्य होता था कि इतनी कम देर में यह चमत्कार कैसे हो गया!

साढ़े ग्यारह बजे के लगभग हमने अधिकारी महोदय से विदा ली। वह बाहर पहुंचाने आये। जब हम अपने ओवरकोट पहन रहे थे, एक उजबेक सज्जन मिल गये, जिनसे युवक-समारोह के अवसर पर मास्को में कई बार भेंट हुई थी। वह बड़ी आत्मीयता से मिले और आग्रह करने लगे कि एक-दो दिन और ठहर जाओ। हम लोगों ने उनका आभार माना और विवशता जतलाई। वह बोले, "हमारे दिल में आपके देश और नेताओं के लिए जो प्रेम है, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। शायद आप उसपर विश्वास न करें। लेकिन हम एक-दूसरे के सम्पर्क में आयेंगे तब आपको पता चलेगा कि हमारी बात में कितनी सचाई थी।" विदा होते समय वह सज्जन अपने आत्मीयजन की भांति मिले।

कार से रवाना हुए। ड्राइवर ने सारे नगर का चक्कर लगवा दिया। एक सज्जन पहुंचाने आये। उन्होंने रास्ते में पूछा, "आपने भोजन कर लिया?" हमारे इन्कार करने पर वह हमें हवाई अड्डे ले गये। माशा वहां मौजूद थी। उसने मालूम कर लिया था कि हम भोजन करके नहीं आये हैं, इसलिए बेचारी बैठी-बैठी प्रतीक्षा कर रही थी। खाना तैयार था। हम सबने साथ-साथ खाया, माशा तथा अन्य व्यक्तियों से गपशप की, फिर विश्रामगृह लौट आये। उस समय एक बजा था।

विश्रामगृह की व्यवस्थापिका बैठी-बैठी कोई उपन्यास पढ़ रही थीं। मैंने उनसे कहा, "हम लोगों को सोने में देर हो गई है। हो सकता है, विमान सबेरे जल्दी जाय और हम लोगों की आंख न खुल पावे। आप हमें जगा दीजिये।" उनसे आश्वासन मिल जाने पर हम लोग अपने कमरे में जाकर आराम से सो गये।

: ३७ :

स्वदेश वापसी

सवेरे अचानक आंख खुली तो घड़ी देखी। ४। बजे थे। बाहर लोगों के आने-जाने की-सी आहट हो रही थी। क्या बात है? मैंने जिज्ञासावश दरवाजा खोला। देखता क्या हूं कि लोग अपना-अपना सामान लेकर तेजी से बाहर जा रहे हैं। मैंने व्यवस्थापिका के पास जाकर पूछा, "क्यों, यह क्या हो रहा है?" उसने मुस्करा-कर कहा, "मैं आपको जगाने ही आ रही थी। अब आप फौरन तैयार हो जायं। बस हवाई अड्डे जा रही है। आपका जहाज छूटने का समय हो रहा है।" मैंने सामने दीवार पर लगी घड़ी को देखा तो वह ७। बजा रही थी। अब मुझे ख्याल आया कि मैंने अपनी घड़ी को ताशकन्द के समय के हिसाब से ठीक नहीं किया था। व्यवस्थापिका पर बड़ी झुंझलाहट हुई। मैंने कहा, "रात को आपने वादा किया था कि सवेरे जल्दी जगा देंगी! वह तो अकस्मात मेरी आंख खुल गई, नहीं तो जहाज ही छूट जाता।" उसने हंसते हुए कहा, "वाह साहब, वाह, मेरे होते जहाज कैसे छूट सकता था!"

बहस करने का समय नहीं था। मैंने कमरे में आकर प्रकाशवतीजी को जगाया, फैला सामान संभाला और बस की ओर दौड़ लगाई। सारे मुसाफिर तबतक बस में बैठ चुके थे और हम लोगों की राह देख रहे थे। हमारे बैठते ही बस चल पड़ी।

हवाई अड्डे पर पहुंचे। माशा वहां उपस्थित थी। पिछले दिन हमारा सारा सामान हवाई अड्डे पर ही रह गया था। उसके बारे में पूछा तो माशा ने कहा, "आप चिंता न करें। सब चीजें जहाज पर पहुंच गई हैं। अब आप झटपट नाश्ता कर लें। देर हो रही है।"

बेक में पड़नेवाली चीजों के बारे में तो चिंता नहीं थी; क्योंकि उनपर लेबिल लगे थे; लेकिन माशा ने तो हाथ की चीजें भी वहीं छुड़वा दी थीं। उनके संबंध में आशंका हुई कि कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाय; पर किया क्या जा सकता

था ! हाथ-मुंह धोकर झटपट नाश्ता किया । इसी बीच घोषणा हुई और हम लोग विमान में जा बैठे। माशा अंदर आई और उसने टिकट मांगी । मैंने जेब से निकालकर दी । उसने देखकर कहा, "इसमें मास्को से ताशकंद की टिकट कहां है ?"

मैंने टिकट अपने हाथ में लेकर देखी तो सचमुच वह उसमें नहीं थी । ताशकंद से तरमेज की थी । मेरी परेशानी देखकर माशा बोली, "ऐसा मालूम होता है कि मास्को के हवाई अड्डे पर जल्दी में भूल से उसे फाड़ लिया गया है । आप चिन्ता न करें । एक कागज पर अपना नाम और पता लिखकर दे दें ।"

मैंने वैसा ही किया । इतनी देर में विमान का इंजन चालू हो गया । विदाई का नमस्कार करते हुए माशा बोली, "फिर आइये । अच्छा, दसविदानिया ।" उसके स्वर में बड़ी आत्मीयता थी । मैंने कहा, "माशा, अब तुम्हारी बारी है । तुम दिल्ली आना । अच्छा, नमस्कार ।"

ताशकन्द के हिसाब से ८॥ बजे विमान रवाना हुआ । थोड़ी देर उड़ने पर गिरि-शृंखलाएं प्रारंभ हो गईं । वे हिम का श्वेत किरीट धारण किये बड़ी सुहावनी लग रही थीं । उन्हें पार करने के लिए हमारे विमान को काफी ऊंचा जाना पड़ा, पर उसके प्रेशराइज्ड होने से हमें तनिक भी असुविधा नहीं हुई । मजे में अपनी सीट पर बैठे हुए प्रकृति की छटा देखते रहे । जाते समय जितनी बर्फ थी, उसकी अपेक्षा अब कहीं अधिक थी ।

लगभग डेढ़ घंटे की उड़ान के बाद पर्वत-मालाएं समाप्त हुईं, मैदान दीखने लगा । विमान निचाई पर आ गया । जरा आगे बढ़ते ही एक नगर आया। विमान की परिचारिका ने बताया, तरमेज आ गया । विमान उतरा और हम लोग हवाई अड्डे के भीतर प्रविष्ट हुए । उस समय १० बजे थे। जाते समय इस सीमावर्ती हवाई अड्डे पर बड़ी चहल-पहल थी, अब सब सुनसान था । कुछ अधिकारी लोग इधर-उधर घूम रहे थे । हम चौदह यात्री थे । हमें एक कमरे में ले जाकर एक बड़ी मेज के सहारे बिठाकर सबको एक-एक फार्म भरने को दिया गया । उसमें एक खाना था कि पास में किस देश की कितनी मुद्राएं हैं ? मैंने जेब से रुपये निकाले और गिनकर उस खाने में लिख दिये । एक अफसर ने आकर फार्म ले लिया । उसे देखकर वह बोला, "आपके इन रुपयों की रसीद कहां है ?" मैंने पूछा, "कैसी रसीद ?" उसने कहा, "जाते समय यहां आपको दी गई होगी ।" मैंने उत्तर दिया, "नहीं, मुझे कोई रसीद नहीं दी गई ।"

अफसर की आकृति गंभीर हो गई। बोला, "यह कैसे हो सकता है? आप मास्को क्यों गये थे?" मैंने जवाब दिया, "युवक समारोह के अवसर पर।"

इतना सुनते ही उसने कहा, "तब ठीक है। आप लोग जा सकते हैं।" यह कहकर उसने फार्म फाड डाला और हमें छुट्टी दे दी। मैं समझा कि अब वे लोग कुछ जल-पान करायेंगे, लेकिन सारा खेल युवक-समारोह के साथ ही समाप्त हो चुका था।

तरमज ताशकंद से कोई ७०० किलोमीटर पर है। लगभग २० हजार की बस्ती है। अफगानिस्तान और रूस की सीमा पर होने के कारण उसका बड़ा महत्व है। जाते समय वहां क्रियाव्को नामक एक इतिहास-प्रेमी सज्जन मिले थे। इस बार भी वह फिर मिले। विमान के छूटने तक बात करते रहे। उन्होंने कहा, "उजबेकिस्तान और हिंदुस्तान की बहुत सी बातें मिलती-जुलती हैं, यहां तक कि आपने देखा होगा, यहां के निवासियों का रंग भी आपके देशवासियों से बहुत मिलता-जुलता है।" फिर मंच की बात चल पड़ी। उन्होंने कहा, "मंच की दृष्टि से रूस बहुत विकसित है। हमारे देश का आपेरा (संगीत नाट्य) और बेले (नृत्य-नाट्य) सारे संसार में प्रसिद्ध है। पहले हमारे यहां पात्रों की पोशाक और दृश्यों की तड़क-भड़क पर अधिक जोर दिया जाता था, अब वह बात नहीं रही। अब तो प्रमुखता दी जाती है भावों की अभिव्यंजना को। हमारे यहां के लोग बड़े कला-प्रेमी हैं और मंच के विकास पर उन्होंने अपना ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित किया है।"

११ बजे तरमेज से रवाना हुए। आमू दरिया पार करते करते भान हुआ कि रूस की सीमा समाप्त हो रही है और अफगानिस्तान में प्रवेश कर रहे हैं। कह नहीं सकता कि उस समय मन में क्या-क्या भावनाएं उठीं, पर एक बात बड़ी तीव्रता से अनुभव हुई कि मानव-निर्मित भौगोलिक सीमाओं के बावजूद प्रकृति सब देशों में एक-सी है और उसने हर देश के इंसानों को दिल दिया है।

हिन्दूकुश की ऊंचाई आने पर परिचारिका के संकेत पर हमने आक्सीजन-मास्क पहन लिये और १२ बजे के लगभग जब पर्वत मालाएं समाप्त हुईं तब उन्हें उतार दिया। विमान निचाई पर आ गया। १५ मिनट नीलते-नीलते काबुल पहुंच गये। विमान से उतरते ही हवाई अड्डे के अधिकारियों से दिल्ली जानेवाले विमान के बारे में पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि उस दिन कोई जहाज नहीं जायगा। हां, अगले दिन सवेरे मिलने की संभावना है। उन्होंने सलाह दी कि हम

अपना अधिकांश सामान वहीं छोड़ दें और होटल चले जायं । बेकार सारे सामान को ढोने से क्या फायदा ! हमने ऐसा ही किया ।

एक बार फिर काबुल होटल का मुंह देखना पड़ा । जाते समय वहां के लोगों ने जो व्यवहार किया था, वह याद आ गया । जिन्होंने हमारे साथ बदसलूकी किया था, वे ही लोग थे, लेकिन उनके व्यवहार से लगा, मानों पिछली घटना का उन्हें ध्यान भी नहीं रहा ! जिस आदमी ने बस में चढ़कर सामान उतारने की धमकी दी थी, वही हज़रत हमारा सामान उठाकर ले गये और ऊपर के कमरे में, जहां हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी, पहुंचा आये । सामान कमरे में छोड़कर दिन के बचे घंटे हमने शहर में चक्कर लगाते हुए बिताये । जो कुछ देखने से रह गया था, देखा। वहां सर्दी अधिक नहीं थी और मौसम साफ था । घूमने में खूब आनन्द आया ।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, काबुल के विकास में एक ओर भारत बड़ी दिलचस्पी ले रहा है, दूसरी ओर रूस । शहर का नक्शा ही बदल गया है । सड़कों और बिजली, पानी आदि की दृष्टि से नगर में आश्चर्यजनक सुधार हुआ है । सारा बाजार विदेशी माल से अटा पड़ा है । जापानी, रूसी, फ्रांसीसी, इटालियन, इंगलिश चीजों की भरमार है । वे सस्ती भी काफी हैं । ८ मिलीमीटर का मूवी कैमरा एक दुकान पर पांचसौ रुपये में मिल रहा था ।

सरदा और अंगूर का मौसम पूरी बहार पर था । अंगूर बेरों की भांति जगह-जगह बिक रहे थे और फलों और सब्जियों की दुकानों पर सरदा के ढेर लगे थे । प्रकाशवतीजी के एक परिचित सज्जन ने हमारे साथ के लिए कुछ अंगूर और तीन सरदे मंगवाये । मेरे हिस्से के एक बहुत बड़े सरदे और चार सेर अंगूर के दो रुपये कुछ आने लगे । चिलगोजे मूंगफली की तरह बिकते थे । मैंने चार आने के यह सोचकर मांगे कि बाजार में घूमते-घूमते खत्म हो जायंगे, लेकिन जब दुकानदार ने कागज के लिफाफे में भरकर दिये तो मैं देखता रह गया । मैं अकेला दो दिन में भी उन्हें नहीं खा सकता था । कुछ दिनों की हवाखोरी के लिए सचमुच काबुल बड़ी अच्छी जगह है ।

आशा तो नहीं थी कि सबेरे ही विमान की व्यवस्था हो जायगी, फिर भी जल्दी उठे और तैयार होकर नाश्ता करके ७ बजते-बजते आयाना के दफ्तर में पहुंच गये । जिस विमान में हम ताशकंद से आये थे, उसमें बारह रूसियों की एक टोली भिलाई तथा अन्य स्थानों में काम करने आई थी । वे लोग भी चक्कर लगा रहे थे ।

पिछली रात को हमें सूचना दी गई थी कि व्यवस्था हो गई तो ८ बजे तक विमान चला जायगा। दफ्तर के लोग, बार-बार पूछने पर भी, कोई पक्की खबर नहीं देते थे। हवाई अड्डेवालों से फोन द्वारा बड़ी कठिनाई से सम्पर्क हुआ तो उन्होंने बताया कि उनके पास कन्दहार जानेवाला एक जहाज था। उनका अनुमान था कि पिछली रात के मौसम की खराबी से वहां जानेवाले यात्री नहीं होंगे। इसलिए उस जहाज को दिल्ली भेज देंगे। लेकिन संयोग से २८ यात्री इकट्ठे हो गये और वह जहाज ७॥ बजे चला गया। अब हम लाचार हैं।

हम लोगों को बड़ी निराशा हुई। इसके माने यह थे कि वह दिन भी काबुल में जायगा। क्या पता कि अगले दिन भी जहाज का प्रबन्ध हो पावेगा या नहीं! कोई उपाय न देखकर आखिर मन को समझाया कि इस बार दिवाली काबुल की ही सही। फिर घरवालों का विचार करके सोचा कि भारतीय दूतावास से कहना चाहिए। हो सकता है, वे कुछ करा दें। उन्हें कई बार फोन किया, घंटी बजती रही, पर किसीने रिसीवर ही नहीं उठाया।

झुंझलाते हुए कमरे में आये। पिछली रात से ही लगातार वर्षा हो रही थी, इस-लिए घूम सकते नहीं थे। दिनभर कमरे में पड़े-पड़े आशा के विपरीत प्रतीक्षा करते रहे कि शायद कोई चमत्कार हो जाय, पर चमत्कार न होना था, न हुआ। सारे दिन हवाई अड्डे के किसी अधिकारी ने कोई सूचना नहीं दी और हम लोग अनि-श्चित अवस्था में पड़े रहे। रात को जाकर एक अधिकारी आये। उन्होंने हमारे पासपोर्ट लौटाये और कहा, "आप लोग सबेरे ६ बजे तैयार रहें, ठीक साढ़े छः पर बस आवेगी।"

मैंने उन महाशय से कहा कि आप मेहरबानी करके हमारे घर एक केबिल भिजवा दीजिये कि हम लोग अमुक जहाज से पहुंच रहे हैं। अधिकारी ने सिर हिलाते हुए कहा, "जी नहीं, हम ऐसा नहीं कर सकते। तार भेजना है तो अपने पास से भेज दीजिये।"

उनसे तर्क करना फिजूल था। वह दूसरा पक्ष देखने और समझने को तैयार ही नहीं थे। हमारे अपने पैसे खत्म हो चुके थे।

सारी रात नींद नहीं आई। तरह-तरह के विचार मन में उठते रहे। जिस समय बिस्तर पर लेटे थे, आकाश कुछ-कुछ साफ था, लेकिन रात को बारह-एक बजे उठकर बाहर आया तो क्या देखता हूं कि काले-काले मेघों से आसमान घिरा

हुआ है। आशंका हुई कि अगले दिन भी काबुल की मेहमानदारी रहेगी। फिर भी पौने चार बजे उठ गये। पांच बजे नाश्ता करके पौने छः बजे सामान लेकर अर्याना के दफ्तर पर दस्तक दी। ६ बजे उठने के अभ्यस्त बेचारे रूसी लोग हमसे भी पहले वहां पहुंच गये थे। हम सब प्रतीक्षा करते करते थक गये। निर्धारित समय बीत गया, पर बस नहीं आई। हवाई अड्डे फोन किया। मालूम हुआ कि पिछले दिन बस-ड्राइवर को सूचना नहीं दी जा सकी थी। अब दी गई है।

आखिर सवा सात बजे बस आई। हवाई अड्डे पहुंचे। वहां पहुंचकर अपना सामान लिया। आठ बजकर दस मिनट पर विमान रवाना हुआ, तब कहीं जान-में-जान आई। मौसम काफी साफ हो गया था। पर उस आर्याना विमान में सुले-मान पर्वत पार करते-करते सिर फटने लगा, जैसा कि जाते समय हुआ था। कृत्रिम गर्म हवा के प्रयोग से लू-सी चलने लगी। ठंडी हवा दी गई तो बेचारे रूसी लोगों को ओवरकोट पहनने पड़े।

सुलेमान की सबसे ऊंची चोटी 'तख्ते-सुलेमान' पर इस समय भी हमेशा की तरह बादल छाये थे। हाथ-से-हाथ भी नहीं सूझता था। वास्तव में वह बड़ी खत-रनाक जगह है। मौसम की खराबी को देखकर डर लगा कि कहीं विमान को लौट न जाना पड़े, पर सौभाग्य से वैसा नहीं हुआ। धक्के लगे, और जोरों के लगे, पर सकुशल पार हो गये।

विमान के अमृतसर पर रुकने की बात थी; लेकिन वहां का कोई भी यात्री न होने से सीधे दिल्ली की ओर बढ़े। समय की उस थोड़ी-सी भी बचत से मुझे खुशी हुई।

एक बजकर पन्द्रह मिनट पर दिल्ली के सफदरजंग हवाई अड्डे पर विमान उतरा। सूचना न होने के कारण घर का कोई भी आदमी वहां नहीं आया था। चुंगी में गये। सामान उतारकर लाया गया, उसकी जांच हुई। चुंगीवालों ने प्रकाश-वतीजी को जरा हैरान किया। उन्हें जो चीजें भेंट में मिली थीं, उनका वे दाम पूछते थे। प्रकाशवतीजी क्या बतातीं! उस झिकझिक में थोड़ी और देर हो गई, जो बहुत अखरी। इस बीच हमारे साथ जो रूसी आये थे, उनमें से एक महिला को जोर का जाड़ा लगा। उन्हें कंपकंपी चढ़ आई, उनके दांत बजने लगे। मैंने अपनी बांह पर पड़े ऊनी कोट तथा मफलर को एक ओर रख दिया और काबुल से खरीदे रुई के ओवरकोट को लेजाकर उन महिला को उढ़ा दिया। सामान की जांच तथा

पासपोर्ट आदि देखने के बाद जब मैं अपना कोट लेने गया तो मेरा मफलर गायब था। प्रकाशवतीजी ने अपना पूरी बांह का स्वेटर उतारकर बेग में रख दिया था। वह भी उड़ गया।

खैर, घंटे-डेढ़ घंटे में वहां से छुट्टी पाई। घर के लोगों को आते ही फोन कर दिया था। वे राह देख रहे थे। ढाई महीने बाद घर पहुंचने पर सब बड़ी प्रसन्नता से मिले। उन्हें और मुझे भी इस बात का बड़ा सन्तोष था कि मैं त्यौहार पर घर आ गया और यात्रा सानन्द समाप्त हुई।